Sanctioned as a Text-Book for Std. XI by the Director of Education, Bombay State, Poona as per No. S-86-(a)-II-H dated 23rd April 1958.

शरीरविज्ञान

[हिन्दी]

(११ वीं कक्षा के लिये)

लेखक

डॉ. वि. ना. भावे, एम्. बी., बी. एस्.

शरीरविज्ञान और आरोग्यशास्त्र के माजी अध्यापक

मॉडर्न हायस्कूल, पूना

और

आगरकर हायस्कूल, पूना

अनुवादक

प्रोफेसर **शु. प्र. तिवारी,** एम्. ए., एल्‌एल्. बी.,

सिटी कॉलेज, नागपूर

मूल अंग्रेजी आवृत्ति की प्रस्तावना

लेफ्टनंट-कर्नल **एम्. एल्. भाटिया,** आय्. एम्. एस्.,

एम्. ए., एम्. डी., बी. सीएच्., एल्. आर्. सी. पी., एम्. आर्. सी.,

एम्. आर्. सी. पी., एफ्. सी. पी. एस्., एफ्. आर्. सी. पी.,

भूतपूर्व प्रोफेसर ऑफ् फिजिऑलजी तथा प्रिन्सिपल, ग्रँट

मेडिकल कॉलेज, बंबई; सर्जन जनरल, गव्हर्नमेंट ऑफ़ मद्रास

षष्ठम संस्करण : १९५८, प्रती ६०००

कागद स्वदेशी : २२½" × ३५" = ३६ पौंड

कर्नाटक प्रकाशन संस्था, चीराबजार, बम्बई २

मूल्य रु. २·८०

प्रथम संस्करण : १९४४
द्वितीय संस्करण : १९४९
संशोधित संस्करण : १९५१
चतुर्थ संस्करण : १९५३
पंचम संस्करण : १९५६
षष्ठम संस्करण : १९५८

Printed by B. G. DHAWALE, at the KARNATAK PRINTING PRESS, and published by him for the KARNATAK PUBLISHING HOUSE, Karnatak House, Chira Bazar, Bombay 2.

FOREWORD

Here is a small book on Physiology for the Schools which was urgently needed. Dr. V. N. Bhave has dealt with the subject matter clearly and concisely, and has covered the whole syllabus in an admirable fashion. A large number of illustrations that have been inserted will add greatly to the usefulness of the book. The subject of Physiology needs to be encouraged in our Schools. I think that the training and the discipline it imparts are of the utmost value.

I trust, that the teacher and the students alike will find this book eminently helpful. I wish it all the success it deserves.

S. L. BHATIA,
Lt.-Col. I.M.S.

8th March, 1937

भूमिका

पूना के डॉ. भावेजी ने मराठी और अंग्रेजी में शरीरविज्ञान पर सरळ भाषा में किताबें लिखीं हैं, जो बम्बई विश्वविद्यालय में मैट्रिक की परीक्षा के लिए स्वीकृत हैं। **मध्यप्रांत, ग्वाल्हेर, रजपुताना** वगैरह प्रांतों में भी हायस्कूल सर्टिफिकेट परीक्षा के लिए शरीरविज्ञान विषय रखा गया है। पर उसके लिए कोई भी ऐसी किताब उपलब्ध नहीं थी जिसमें 'सिलेबस' के अनुसार सारी बातों का समावेश हो। डॉ. भावेजी और प्रकाशक की इच्छा से मैंने डॉक्टर साहब की मराठी किताब का यह अनुवाद तैयार किया है। विज्ञान के परिभाषिक शब्द हिन्दी में अभीतक स्थिर नहीं हो पाये हैं। ऐसी दशा में मैंने अधिक प्रचलित और उचित शब्दों को ही अपनाने की चेष्टा की है। विषय को विद्यार्थियों के हृदयङ्गम बनाने की ओर भी ध्यान रखा गया है। किताब का अनुवाद पूरा होने के बाद एक बार मैंने उसे अपने एक डॉक्टर मित्र लेफ्टनंट जनार्दनजी, एम्. बी., बी. एस्., को भी पढ़कर सुना दिया था। उनके परामर्शों से मैंने यत्र-तत्र लाभ भी उठाया है। अतः मैं उनको हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। डॉ. भावेजी की किताब की विशेषता यह है कि यह किसी भी हिन्दी भाषी प्रांत के विद्यार्थियों को पहुँचा सकती है। क्योंकि इसमें शरीरविज्ञान से सम्बन्ध रखनेवाले विषयों को कोई भी आवश्यक बात नहीं छूटने पायी है।

परीक्षार्थियों के अतिरिक्त, यह किताब स्वास्थ्य-कामना करनेवाले अन्य व्यक्तियों के भी काम की सिद्ध हो सकती है।

हिन्दी जनता तक किताब पहुँचाने में कारणीभूत होने के कारण डॉक्टर साहब तथा कर्नाटक प्रकाशन गृह के व्यवस्थापक श्री. कुलकर्णीजी भी धन्यवाद के पात्र हैं। किताब का छपाई और गेट-अपको आकर्षक बनानेका श्रेय कर्नाटक प्रेस को ही है।

अनुवादक

प्रस्तावना

शरीरविज्ञान के विषय पर मैट्रिक परीक्षा के अभ्यासक्रम के मुताबिक हमने अंग्रेजी, गुजराती और मराठी भाषा में किताबें प्रसिद्ध की हैं जो बम्बई, नागपूर, पंजाब वगैरह राज्यों में इस्तेमाल की जाती हैं। हिन्दीभाषी प्रांतों में से हमारी किताब के हिन्दी संस्करण की बडी जोर से माँग आने के कारण प्रतिकूल समय में भी हम इस संस्करण को पेश कर रहे हैं। इस विषय में जो शास्त्रीय अंग्रेजी शब्द उपयोग में आते हैं उनके बराबर हिन्दी प्रतिशब्द अभी तैयार नहीं हैं। इसीलिए हिन्दी शब्दों के साथ कोष्टक में अंग्रेजी शब्द दिये जायें ऐसा सामान्य नियम रक्खा हैं। हमे आशा है कि थोडे दिन में हिन्दी परिभाषा कायम हो जायगी।

इस विषय के मेरे अध्यापक लेफ्टनंट कर्नल एस्. एल्. भाटिया, प्रोफेसर ऑफ् फिजिऑलजी एवं डीन, ग्रँट मेडिकल कॉलेज, बम्बई ने इस किताब के मूल अंग्रेजी संस्करण की छोटीसी प्रस्तावना लिखा कर और अन्य भाषाओं के संस्करण में उसका उपयोग करने की इजाजत दे कर मुझे बहुत उपकृत किया है।

२५६ सदाशिव पेठ,
पेरू गेट के नजदीक, पुणें २
१७ मई, १९५४

वि. ना. भावे

अस्थि-संस्था, संधि-संस्था, और स्नायु-संस्था, इन पिछले संस्करण में पुस्तक के प्रारंभ में दी हुई संस्थाओं को पढाने की सुविधा की दृष्टि से इस संस्करण में उत्सर्जकसंस्था के बाद रक्खा है। उसी प्रकार वर्तमान संस्करणमें 'पुनरुत्पत्ति-संस्था यह नवीन अध्याय समाविष्ट किया है। साथही कई नवीन आकृतियों की वृद्धि भी पुस्तक में हुई है।

एस्. एस्. सी. बोर्ड (बम्बई) ने अपनी परीक्षा के इस विषय के पाठ्यक्रम में जो परिवर्तन किए हैं उन सबों का समावेश इस पुस्तक में किया गया है। एस्. एस्. सी. बोर्ड की परीक्षा के प्रश्नपत्रों का समावेश इस पुस्तक में करने देने की जो अनुमति दी है उसके लिए मैं बोर्ड का कृतज्ञ हूँ। इन प्रश्नपत्रों के विषय म मूलाधिकार अवश्य बोर्ड ने अपने ही लिए सुरक्षित रक्खे हैं।

दिनांक १७ मई, १९५१

वि. ना. भावे

विषय-सूचि

शरीरविज्ञान का पाठ्यक्रम

(फिजिऑलजी सिलेबस)

इस किताब में विवरण किये हुए विषय बम्बई, नागपूर, रजपुताना, पंजाब, यू. पी., बंगाल इत्यादि भिन्न २ प्रांतों की मैट्रिक और हायस्कूल सर्टिफिकिट परीक्षाओं के अभ्यासक्रम के लिए काफी हैं। परिचारिकाओं का (Nurses) इम्तहान देनें में भी इस किताब से पूरी मदद मिलेगी। सब प्रांतों के अभ्यासक्रम में इस विषय का सिलेबस करीब समान है। इसीलिए हम नमूने के तौर पर सिर्फ बम्बई, नागपूर और अजमीर के अभ्यासक्रम छपव रहे हैं। यहाँ सिर्फ शरीरविज्ञान का अभ्यासक्रम छाप दिया जाता है; आरोग्यशास्त्र और प्रथमोपचार का अभ्यासक्रम 'आरोग्यशास्त्र' की किताबें में छापा गया है।

Syllabus in Physiology

S. S. C. EXAMINATION BOARD, BOMBAY

One Paper—(Three hours) —100 marks.

There should be one paper in Physiology and Hygiene, and the marks to be allotted are, 60 for Physiology and 40 for Hygiene.

I. *The Animal Cell—*

Nucleus, Cytoplasm.

Amoeba and its movements.

Characteristics of living things. Animal evolution.

II. *Human body—*

Various parts and organs.

(a) *Respiratory System*

Its functions, how it works and its various parts.

The structure of nose, pharynx, larynx, trachea, bronchi and lungs. Thorax, and its movements. Rate of breathing. Composition of inspired and expired air. Exchange of oxygen and carbon dioxide in the lungs and tissues. The Respiratory centre. Value of proper ventilation.

(b) *Digestive system—*

Its functions, how it works and its various parts.

Mouth, teeth, oesophagus, stomach, deodenum, small and large intestines, liver, spleen and pancreas.

Food, drink. Action of juices and ferments (enzymes).

Nutrition :—Metabolism of Proteins, Fats and Carbohydrates.

Heat production and heat loss. Body temperature.

(c) *Excretory System* —

Its functions, how it works and its various parts. kidneys, uterus, bladder, urethra.
Skin, its structure and functions. Parts developed from skin, nails, hair. Heat regulation and part taken by skin.

(d) *Circulatory System*

Heart and blood vessels and lymphatics ; circulatory fluids ; blood and lymph.
General Circulation and Portal Circulation.
(1) Blood :—Red and white blood corpuscles, Plasma, clotting of blood, serum. Arterial and venous blood.
(2) Lymph :—Its composition and formation, Lymph glands and spleen. The flow of lymph.
(3) The heart :—Its structure. The auricles and ventricles. Systole and diastole. Rate of heart beat. Heart sounds.
(4) The blood vessels :—The arteries, veins and capillaries. Their structure and functions. Blood pressure.

(e) *Muscular System*—

Structure of a muscle, voluntary and involuntary, how it works, its innervations. Important muscles, diaphragm, biceps, triceps, Tendon Achilles.
How muscles act, leverage action of muscles, standing, walking.

(f) *Skeletal System*—

Bones, cartilage, structure, composition, function.
Joints, their formation. The principal bones of the body.

(g) *Nervous System* –

Various parts and how they function.
Brain, spinal cord and nerves, sensory and motor. Nerve cell, nerve fibres.
Reflex action, common reflexes.

(h) *Reproductive System* —

Male, female; various parts connected therewith and function of each.

(i) *Special Senses* —

Sight, hearing, touch, smell, taste; their organs and functions.

(j) *Ductless Glands.*

Structure and function.

(k) *Voice and Speech* —

How voice is produced and structure of larynx.

HIGH SCHOOL EXAMINATION BOARD, NAGPUR

Classes IX to XI

N. B. This physiology section is to serve only as a basis of first aid and hygiene.

Skeleton and Muscles —

(Form, position and use of bones, with general idea of the build of the body, as well as the boundaries, position and contents of the vorious body cavities. Voluntary and involuntary muscles. Action of voluntary muscles, its mechanism.

Circulation —

The organs of circulation of the blood. Arrangement of the organs. Position of the chief blood vessels. Mechanism and process of circulation.

Blood —

Genral composition and uses of blood.

Respiration —

Arrangement and stucture of lungs, arrangement of air passages, mechanism and theory of respiration and changes resulting therefrom in the blood and air; respiration and generation of heat in the body.

Digestion —

Parts of the alimentary canal and organs of digestion; the digestive glands, their position, teeth, knowledge of the process of digestion and the part taken therein by the different organs.

Excretion —

General idea of the urinary secretion. Excretion of waste products. Sweet glands. Skin, its function as a protective and excretory organ. Regulation of loss of heat.

Spleen and Lymph Glands —

General idea of the lymphatic system.

Nervous System —

Position of the different parts. Some idea of their function.

Special Senses —

Sight, hearing, smell, taste, touch.

HIGH SCHOOL EXAMINATION BOARD, AJMER

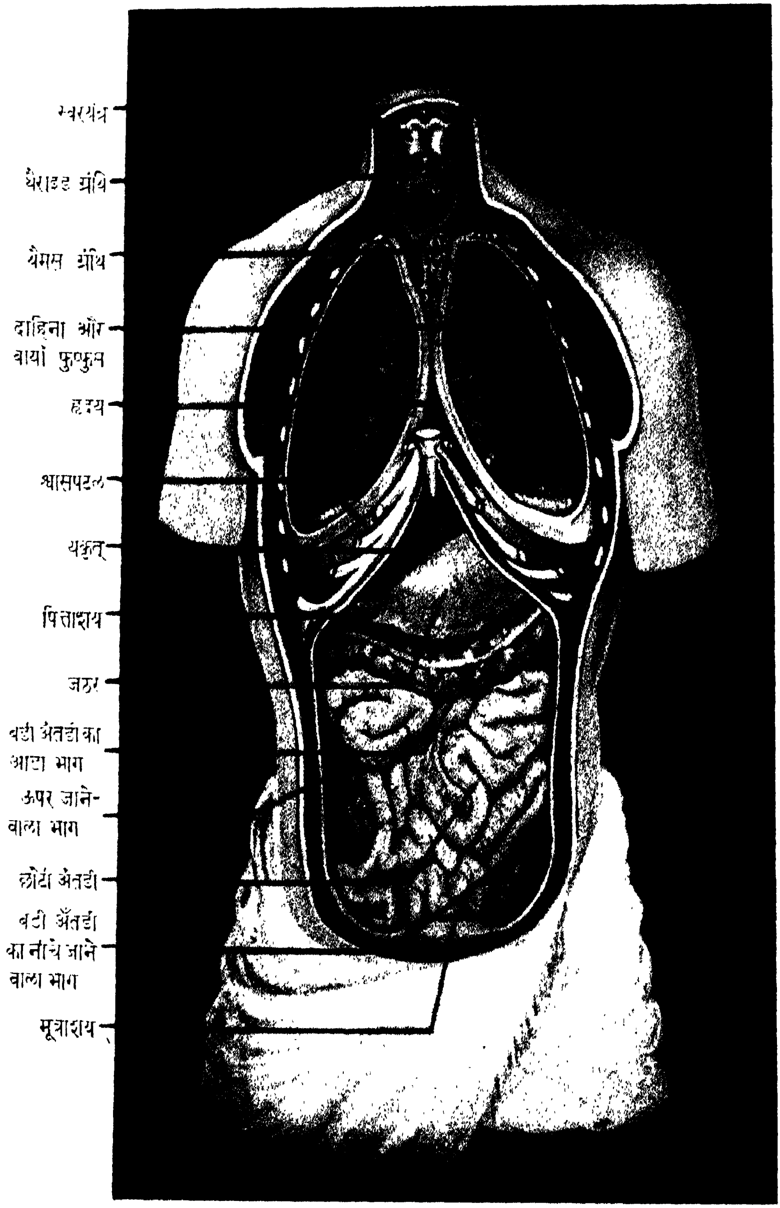
A. *Anatomy* :-

1. The human body in its entirety.
2. The skeletal system.

3. The Digestive system (study of the structure of the organs of digestion).
4. The circulatory system (structure of the heart and the main blood vessels).
5 The respiratory system (structure and position of lungs).
6. The excretory system (skin, kidneys, large intestines and lungs).
7. The nervous system (gross stucture of the brain and the spinal chord).
8. The endocrine system.
9. The continuance of race.

B. *Physiology* :-

1. Digestive system (*a*) process of digestion (*b*) classes of foodstuffs and absorption and storage.
2. Circulatory system (*a*) circulation of blood (*b*) function of heart and valves.
3. Respiratory system (process and purpose of respiration).
4. Excretory system. (Function of kidney, skin and large intestines. Excretion by lungs).



आकृति १ — छाती और उदर-गह्वर की इन्द्रियाँ

(इस गह्वर की अगली दीवार काट कर भीतरी इंद्रियाँ दिखलाई गई हैं)। हृदय का अधिकांश बायें फुप्फुस से आच्छादित है।

अध्याय पहला

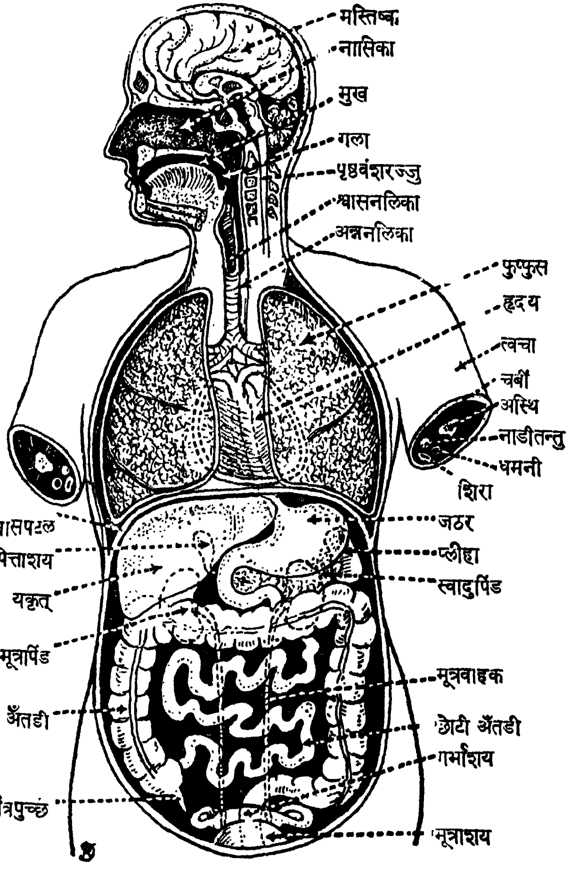
विषय-प्रवेश

१. शरीररचना (Anatomy), **शरीरविज्ञान** (Physiology) और **आरोग्यशास्त्र** (Hygiene)— जब हम किसी यंत्र को देखते हैं तब हम में उसके भिन्न २ भागों और उनकी रचना के सम्बन्ध में जानने की उत्सुकता जाग उठती है। इसी प्रकार यदि हमारे मन में अपने शरीर की रचना तथा प्रतिक्षण होनेवाले व्यापारों के सम्बन्ध में कुतूहल उत्पन्न हो जाता है तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। शरीररचना का ज्ञान शरीर-विच्छेदन से अधिक साङ्गोपांग हो सकता है इस लिए इस विज्ञान का नाम **अनाटॉमी** (Anatomy ; ana-up, temnein-to cut) पडा। उदाहरणके लिए आँख नामक अवयव को लीजिये। उसके आकार, वजन, स्थान, दूसरे अवयवों से उसका सम्बन्ध तथा उसकी सूक्ष्म रचना, आदि का समस्त ज्ञान हमें इस शास्त्र (अनाटॉमी) से प्राप्त होता है। कौन अवयव कौनसा और किस प्रकार कार्य करते हैं, कार्य करते समय उनमें किस प्रकार परिवर्तन होता जाता है एवं उसका शरीर के व्यापार पर क्या परिणाम होता है, आदि विषयों की जानकारी **शरीर-विज्ञान** (Physiology ; phusis-nature, logos-a discourse) से मिलती है।

प्रत्येक व्यक्ति को अपने शरीर को स्वस्थ एवं सुदृढ रखने की स्वाभाविक इच्छा होती है, क्योंकि बिना उसके मनुष्य का कोई भी महत्त्व का कार्य पूर्ण नहीं हो सकता। इस इच्छापूर्ति के लिए **आरोग्यशास्त्र** (Hygiene) का ज्ञान आवश्यक है। यह ज्ञान शरीररचना और शरीर में प्रतिक्षण होनेवाले परिवर्तन को जानने से अधिक पूर्ण रीति से प्राप्त होता है। श्वासोच्छ्वास के लिए आवश्यक हवा, भोजन के लिए अनिवार्य अन्न तथा पीने के लिए पानी का जहाँ आरोग्यशास्त्र में वर्णन किया जाता है, वहाँ वस्त्र, व्यायाम, विश्राम तथा **वैयक्तिक आरोग्य** सम्बन्धी समस्त बातों का विवेचन भी उसमें रहता है। साथही **सार्वजनिक स्वास्थ्य** सम्बन्धी विषयों की (Public Hygiene) (जैसे इमारत, सडक, नाली, पाखाना आदि की योग्य रचना तथा स्वच्छता, शहर में जल का प्रबन्ध, भिन्न २ रोगों को दूर करने के उपाय आदि की) जानकारी भी उसमें रहती है।

२. शरीर के विभाग और उनकी सामान्य रचना— मनुष्य के शरीर के मुख्यतः तीन विभाग किये गये हैं। १. सिर (Head), २. धड (Trunk) और ३. हाथ पाँव (Limbs)। **सिर** (Head) का भाग चेहरा, और **खोपडी** का बना हुआ है। यह शेष शरीर से गर्दन के द्वारा जुडा हुआ है। खोपडी और उसके नीचे रहनेवाले कशेरुकों से एक लम्बा लचीला खोखला भाग (Dorsal cavity) शरीर के पिछले भाग में तैयार होता है (आ. ३ देखिये)। उसमें मस्तिष्क (Brain) और पृष्ठवंशरज्जु (Spinal cord) के भाग क्रमशः रहते हैं। इन हड्डियों से बने हुए खोखले

भाग के आगे की ओर एक और खोखला भाग रहता है। इस आगे की ओर के खोखले भाग (Ventral cavity) से धड का बहुत सा भाग व्याप्त रहता है।

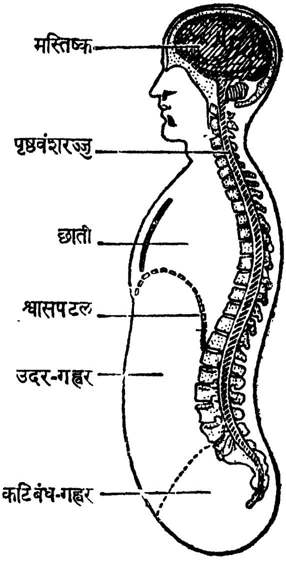


आकृति २ — शरीर की इंद्रियाँ

श्वासपटल (Diaphragm) नामक स्नायु के एक आडे पर्दे के कारण इस खोखले भाग के दो हिस्से बन जाते हैं। एक ऊपरी हिस्सा **छाती** (Thorax) कहलाता है। जिसमें हर एक तरफ एक २ फेफडा, बीचोंबीच हृदय और उस को जोडनेवाली रक्तवाहिनियाँ और पीछे की ओर श्वासनलिका तथा अन्ननलिका ऐसी इंद्रियाँ रहती हैं। नीचे की खोखली को **उदर** (Abdomen) कहते हैं। श्वासपटल के नीचे उसीसे सटा हुआ दाहिनी ओर यकृत् (Liver), बाई ओर जठर (Stomach) और उससे परे प्लीहा (Spleen) रहती है। छोटी अँतडी और बडी अँतडी के ही द्वारा उदर की

खोखली का बडा हिस्सा व्याप्त रहता है। जठर के नीचे क्लोम् (Pancreas) नाम की ग्रंथि होती है। सबों के पीछे हर तरफ एक २ मूत्रपिण्ड रहता है। नीचे की ओर **कटिबंध गह्वर** (Pelvic cavity) रहता है। उसमें पीछे की ओर गुदाशय (Rectum), आगे की ओर मूत्राशय और स्त्रीमें बीच की ओर जननेंद्रियाँ होती हैं।

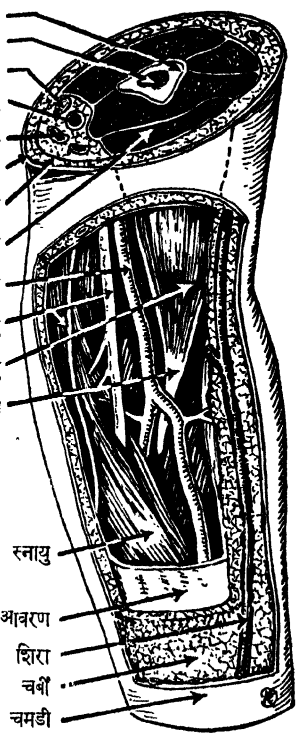
इस तरह मानव शरीर उक्त दो खोखले भागों का बना हुआ है; जिसमें हाथ-पाँव और जोड दिये गये हैं।



आकृति ३ – **शरीर के मुख्य खोखले भाग**

शरीर के भागों में कौन कौनसे विशिष्ट भाग (Structures) रहते हैं? इनकी ओर, आइये, हम दृष्टिपात करें।

शरीर पर **चमडा** या **त्वचा** (Skin) रहती है और त्वचा के नीचे **चर्बी** (Fat) का थोडा बहुत मोटा स्तर रहता है (आ. ४ देखिये। चर्बी के भीतरी भाग को वेष्टित करनेवाला एक स्तर है जिसे **भीतरी आवरण** (Deep fascia) नाम दिया गया है। उसके नीचे शरीर के भिन्न २ भागों में **स्नायु** (Muscles) हमें दिखाई पडते हैं। हाथ-पावों में ये स्नायु हमें अच्छी तरह दिखलाई पडते हैं। जिन्हें हम बोलचाल की भाषा में मांस कहते हैं, वे वास्तव में स्नायु ही हैं। स्नायुओं का मध्यभाग लाल और कोमल रहता है परन्तु उनके दोनों तरफ के छोर सँकरे और रस्सी के समान मजबूत और सफेद रंगके रहते हैं। वे हड्डियों से बँधे रहते हैं। इन छोरों को **स्नायुबंधन** (Tendon) कहते हैं। भिन्न २ स्नायुओं में कुछ पोली नलियाँ और कुछ डोरे के समान सफेद तन्तु रहते हैं। पोली नलियाँ दो प्रकार की होती हैं। एक प्रकार की नली से शुद्ध रक्त बहता है, जिसे **शुद्धरक्तवाहिनी** अथवा **धमनी** कहते हैं और दूसरे प्रकारकी नली से अशुद्ध रक्त बहता है, जिसे **अशुद्धरक्तवाहिनी** अथवा **शिरा** (Vein) कहते हैं। डोरे के समान जो सफेद तन्तु दिखलाई देते हैं वे **नाडीतन्तु** (Nerves) हैं। कुछ नाडीतन्तु त्वचा के नीचे फैलकर स्पर्श, दुःख इत्यादि का ज्ञान कराते हैं और कुछ नाडीतन्तु स्नायुओं में रहते हैं। जब मस्तिष्क की ओर से संदेश आता है तब ये तन्तु स्नायुओं को आकुंचित करने में सहायक होते हैं। सब भागों के पश्चात् भीतर की ओर **हड्डियाँ** (Bones) रहती हैं। हड्डियाँ पोली रहती हैं और उनके पोले भाग में एक कोमल पदार्थ (**अस्थिमज्जा**, Bone-marrow) रहता है। जहाँ दो हड्डियों के छोर मिलते हैं उस स्थान को **संधि**



आकृति ४ — **शरीर में रहनेवाले भिन्न २ भाग** (Structures)

या जोड (Joint) कहते हैं। दो हड्डियों के छोर **अस्थिबंधन** (Ligaments) नामक डोरे के समान सफेद तन्तु से एक दूसरे से बँधे रहते हैं।

३. इन्द्रियाँ (Organs) **और इन्द्रिय-प्रणालियाँ** (Systems)—शरीर अनेक अवयवों से मिल कर बना है और प्रत्येक अवयव को भिन्न २ काम करना पड़ता है। कुछ विशेष कार्य करनेवाले शरीर के भाग को **इन्द्रिय** कहते हैं और इन्द्रियाँ जो काम करती हैं उसे '**कार्य**' (Function) कहते हैं। आँख एक इन्द्रिय है। देखना उसका कार्य है। प्रत्येक इन्द्रिय को अपने कार्य के अतिरिक्त समस्त शरीर के संघटित कार्य में भी योग देना पड़ता है। इस तरह संघटित परन्तु एक ही प्रकार के कार्य करनेवाली इन्द्रियों के समूह को '**प्रणाली**' या '**संस्था**' का नाम दिया गया है। मुख, जठर, अँतडियों और यकृत् में से प्रत्येक इन्द्रिय का अलग २ कार्य हो तो भी, ये सब मिल कर पाचन-कार्य को पूर्ण करते हैं। अतः इन सब इन्द्रियों का 'पाचन-प्रणाली' में समावेश किया गया है। इसी प्रकार भिन्न २ इन्द्रियों को मिला कर शरीर में भिन्न २ प्रणालियाँ निर्मित की गई हैं।

प्रत्येक प्रणाली अपना विशिष्ट कार्य करती है। परन्तु सब का उद्देश्य शरीर के प्रत्येक कार्य को व्यवस्थित रखना ही है। जिस प्रकार समाज के भिन्न २ अंग काम का बटवारा कर के समाज का हित साधन करते हैं उसी प्रकार शरीर की इन्द्रिय-प्रणालियाँ भी शरीर के हित साधने में प्रयत्नशील रहती हैं।

४. इन्द्रिय-समूहों से निर्मित प्रणालियाँ (Systems)—

१. रक्ताभिसरण-प्रणाली (Circulatory system)—यह हृदय (Heart), शुद्धरक्तवाहिनी याने धमनी (Arteries), अशुद्धरक्तवाहिनी याने शिरा (Veins) और

केशवाहिनी (Capillaries) नामक नलिकाओं की बनी हुई है। इन नलिकाओं की छोटी २ शाखाएँ समस्त शरीर में फैली हुई हैं, जिनमें बहनेवाले रक्त के द्वारा शरीर की पेशियों याने कोषों (Cells) को भोजन और प्राणवायु (Oxygen) पहुँचती जाती है और वहाँ बने हुए कार्बन-डायॉक्साइड, पानी आदि निरुपयोगी पदार्थ उत्सर्जक इन्द्रियों (Excretory organs) की ओर ले जाये जाते हैं, जो उन्हें बाहर फेंक देते हैं।

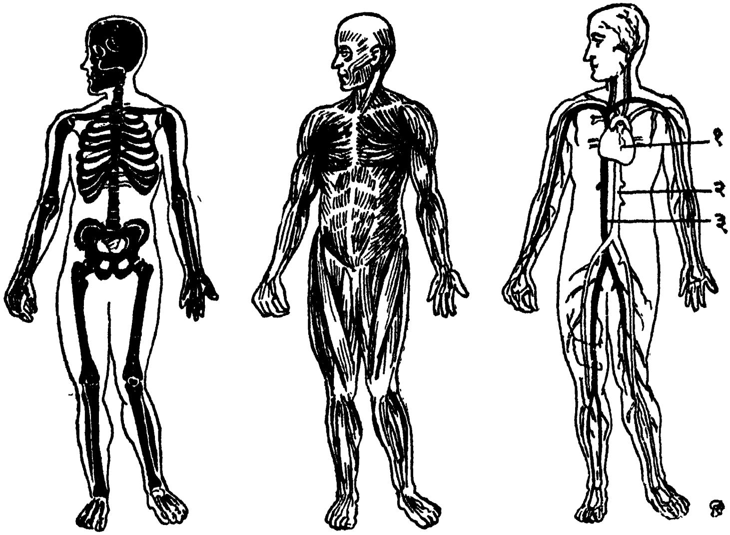
२. **श्वासोच्छ्वास-प्रणाली** (Respiratory system)—नासिका, गला (Pharynx), स्वरयंत्र (Larynx), श्वासनलिका (Wind-pipe), और उसकी शाखा तथा फुप्फुस (फेफड़े) आदि अवयवों का समावेश इस प्रणाली में होता है। जब हम श्वास लेते हैं, तब इस मार्ग द्वारा शुद्ध हवा फेफड़ों में प्रविष्ट होती है और उसकी प्राणवायु को रक्त में ग्रहण कर लिया जाता है और जब हम श्वास छोड़ते हैं तब रक्त की अशुद्ध वायु (कार्बन-डायॉक्साइड वायु), पानी की भाफ आदि अशुद्ध पदार्थ बाहर निकल जाते हैं। विशिष्ट स्नायुओं की सहायता से छाती को फुलाने अथवा आकुंचित करने से श्वास और उच्छ्वास की दोनों क्रियाएँ हो जाती हैं। इस प्रकार श्वसन-प्रणाली रक्तशुद्धि का कार्य करती है।

३. **पाचन-प्रणाली** (Digestive system)—यह मुख, अन्ननलिका, जठर, अँतडियों आदि अवयवों की बनी हुई एक लम्बी, लचीली नली ही है। इसमें लारोत्पादक पिण्ड, यकृत्, क्लोम आदि ग्रन्थियों के पाचक-रस लाकर डाले जाते हैं। इन रसों की सहायता से भोजन पचता है। और तब भोजन के पोषकद्रव्य रक्त में शोषित कर लिये जाते हैं और बिना पचा हुआ अंश बड़ी अँतडियों में जमा हो कर फेंक दिया जाता है।

४. **उत्सर्जक-प्रणाली** (Excretory system)—शरीर में विभिन्न क्रियाओं के होते रहने के कारण जो निरुपयोगी पदार्थ उत्पन्न होते हैं उन्हें रक्त से मूत्रपिंड, त्वचा, फेफड़े, यकृत् इत्यादि उत्सर्जक इन्द्रियों की ओर ले जाया जाकर शरीरके बाहर फेंक दिया जाता है। फेफड़ों से कार्बन-डायॉक्साइड और पानी की भाफ बाहर फेंकी जाती है। मूत्रपिंड द्वारा यूरिया, यूरिक ॲसिड, कुछ लवण और पानी बाहर निकाले जाते हैं और त्वचा पसीने के रूप में कार्बन-डायॉक्साइड, यूरिया व पानी नामक पदार्थ निकालती रहती है।

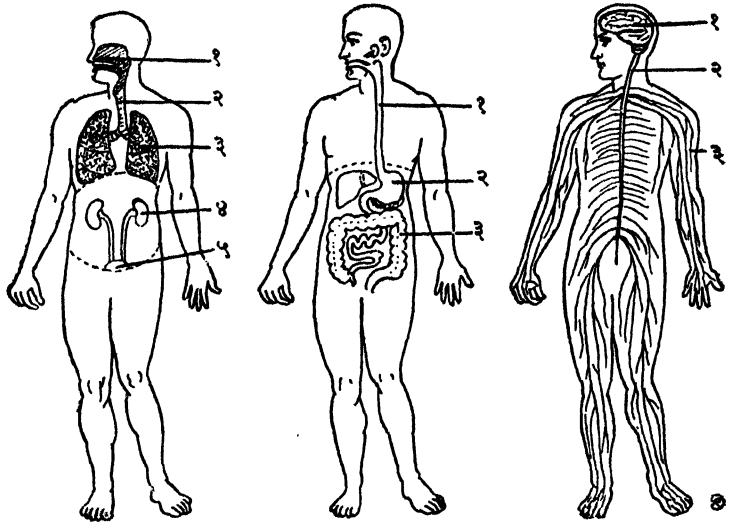
५. **अस्थि-प्रणाली** (Bony system or skeleton)—यह अनेक हड्डियों से मिल कर बनी है। हड्डियों के कारण शरीर को आकार प्राप्त हो गया है। तथा नाजुक अंगों को आधार मिल गया है। उनसे कोमल भागों का रक्षण होता है और स्नायु को हत्थे (Lever) जैसी सहायता मिलती है। हड्डियाँ एक दूसरे से अस्थिबन्धनों (Ligament) द्वारा बँधी हैं; जिनसे सन्धियाँ (Joints) तैयार होती हैं। संधियों के कारण ही शरीर की हलचल होती है; अन्यथा मनुष्य सीधाही तना रहता; वह न झुक सकता, न मुड सकता और न महत्त्व के कार्य ही कर सकता।

६. **स्नायु-प्रणाली** (Muscular system)—हाथ, पाँव तथा अन्य अवयवों के मांसल भाग, स्थायुप्रणाली के अन्तर्गत आते हैं। आकुंचन (Contraction) और



अस्थि-प्रणाली स्नायु-प्रणाली रक्ताभिसरण-प्रणाली

१ हृदय. २ धमनी. ३ शिरा.



श्वसन और उत्सर्जक-प्रणाली पचन-प्रणाली नाडी-प्रणाली

१ नासिका. २ श्वासनलिका. ३ फुप्फुस. ४ मूत्रपिंड. ५ मूत्राशय.

१ अन्ननलिका. २ जठर. ३ अँतडी.

१ मस्तिष्क. २ पृष्ठवंशरज्जु. ३ नाडीतन्तु.

आकृति ५—शरीर की इंद्रिय-प्रणालियाँ

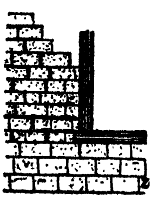
प्रसरण (Relaxation) स्नायु के प्रधान कार्य हैं। स्नायुओं से हड्डियाँ ढकी रहती हैं। शरीर को सौंदर्य की प्राप्ति होती है। हाथ, पाँव, मुख, और शरीर के बाहरी भाग के अन्य स्नायुओं को हम अपने इच्छानुसार हिला डुला सकते हैं, इस लिए इन्हें ऐच्छिक अथवा इच्छानुवर्ती (Voluntary) स्नायु कहते हैं। इन स्नायुओं के दोनों छोर हड्डियों से बँधे रहने के कारण इनके आकुंचन से हलचल होती है। हृदय के समान नाजुक भाग के स्नायु स्वयं कार्य करते हैं। इस लिए उन्हें अनैच्छिक (Involuntary) स्नायु कहते हैं।

७. नाडी-प्रणाली (Nervous system)— यह प्रणाली मस्तिष्क (Brain), रीढ़ में से जानेवाले पृष्ठवंशरज्जु (Spinal cord) और इन दोनों से निकलनेवाले अनेक नाडीतन्तुओं (Nerves) की बनी हुई है। सब इंद्रिय-प्रणालीयों के कार्य नियंत्रित कर उन पर अधिकार चलाने और शरीर के व्यापारों को अव्याहत तथा भली भाँति चलाने का भार इस प्रणाली पर है। इसी प्रणाली के कारण ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा बाह्य जगत का परिचय हमें होता है।

८. पुनरुत्पत्ति-प्रणाली—स्त्रीमें कटिबंधकी खोखलीमें गर्भाशय, रजोवाहक नलिका, रजःपिंड आदि इंद्रियाँ होती हैं। पुरुषमें वीर्यपिंड, वीर्यवाहक नलिका आदि इंद्रियाँ होती हैं। स्त्रीबीज और पुंबीज के संयोगसे गर्भकी उत्पत्ति होती है। इस प्रकार मनुष्यमें वंशविस्तारके कार्य को संपन्न करने के लिए यह प्रणाली आवश्यक रहती है।

ऊपर जिन प्रणालियों का विचार किया है उनमेंसे प्रत्येक का कार्य संपूर्णतया स्वतंत्र रीतिसे नहीं चलता बल्कि वह अन्य प्रणालियों के सहकार्य से तथा एक दूसरे के सहाय्यक के रूप में होता है।

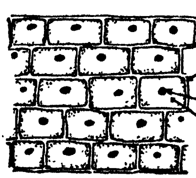
५. कोष या पेशी (Cell)— समस्त संसार के पदार्थों को दो भागों में बांटा गया है ; वे हैं—(१) सजीव और (२) निर्जीव। यदि हम अत्यंत क्षुद्र से क्षुद्र सजीव पदार्थ लें तो हमें यह दिखाई पडेगा कि उसका शरीर अत्यंत सूक्ष्म परंतु सजीव



अ

आकृति ६

इंटों की बनाई दीवार



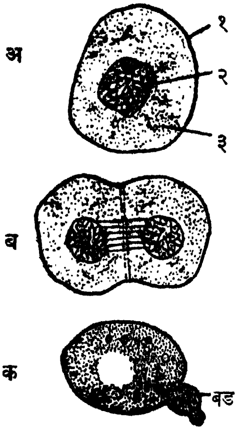
ब

आकृति ६

प्याज के छिलके की सूक्ष्म पेशियाँ

परमाणुओं का बना हुआ है। ऐसे सूक्ष्म और सजीव परमाणुओं को **कोष या पेशी** (Cell) कहते हैं। इसी प्रकार हमारे शरीर का प्रत्येक भाग आँखों से न दिखलाई

देनेवाली करोडों अत्यंत सूक्ष्म पेशियों से बना हुआ है। किसी भी अवयव के सूक्ष्म भाग को लेकर यदि सूक्ष्मदर्शकयंत्र से देखें तो हमें कोष या सूक्ष्म पेशियाँ दिखाई दे सकती हैं।



आकृति ७ – **पेशी और उसका विभाजन**

अ पेशी (Cell). १ पेशी का आवरण. २ केन्द्रभाग. ३. पेशी-द्रव।

ब एक पेशी की दो पेशियाँ बन रही हैं। सब से पहले केन्द्र-भाग विभक्त होकर उसके आसपास पेशी-द्रव जमा हो रहा है।

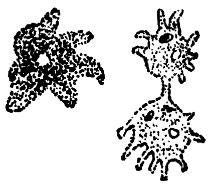
क पेशी का Budding के प्रकार में विभाजन हो रहा है।

हजारों ईंटों से मिल कर जिस प्रकार घर बनता है उसी तरह असंख्य सूक्ष्म पेशियों से हमारा शरीर बना है। प्रत्येक **पेशी, पेशीद्रव** (Protoplasm or cytoplasm) नामक जीवित अर्धप्रवाही पदार्थ की बनी हुई है जिसमें अधिक जमा हुआ और काला चैतन्य **केंद्रभाग** (Nucleus) जिसे मींगी भी कहते हैं, रहता है।

पेशी या कोष का जीवन-व्यापार इसी मींगी से संचालित होता है। वनस्पतिज कोष या पेशी में पेशी-द्रव अधिक गाढा हो कर प्रत्येक पेशी के लिए एक प्रकार के आवरण (Cell-wall) का काम करता है। इस प्रकार का आवरण प्राणिज पेशी में प्रायः नहीं मिलता। पेशी को अंगूर की उपमा दें तो पेशी-द्रव उसका गूदा और केन्द्र-भाग याने मींगी (Nucleus) को उसका बीज कहा जायगा तथा पेशी के आवरण को सहज ही उसका छिलका कहा जा सकता है। प्रत्येक पेशी के लिये भोजन, पानी और प्राणवायु की आवश्यकता होती है। एक सचेतन प्राणी के समान पेशी का भी जन्म होता है, उसकी वृद्धि होती है, उसके कुछ निश्चित कार्य होते हैं और अंत में वह भी मृत्यु को प्राप्त हो जाती है। पेशी की वृद्धि जब पूर्ण हो जाती है तब उसके केन्द्र-भाग (मींगी) के दो हिस्से हो जाते हैं और पेशी-द्रव प्रत्येक हिस्से में एकत्र हो जाता है और इस तरह एक पेशी की दो पेशियाँ बन जाती हैं। इस क्रिया के सतत होते रहने से एक पेशी से असंख्य पेशियों का निर्माण होता रहता है। उदाहरणार्थ जख्म होनेके कारण किसी हिस्से पर की चमडी नष्ट हो जाए तो इर्दगिर्द की चमडी की पेशियाँ एक से दो, दो से चार इस प्रकार बढती जाती हैं। और जख्मी हिस्सों को ढक डालती है। कई बार पेशी-द्रव से कुछ भाग सर्वथा पृथक हो जाता है और उससे भी नई पेशियाँ तैयार हो जाती हैं (देखिये ७ C)। पेशी के इस प्रकार के निर्माणको 'बडिंग' (Budding) कहा जाता है।

६. **अमीबा** (Amœba) — ऊपर वर्णन की गई पेशी के समान केवल एकही पेशी से बना हुआ अमीबा नाम का सूक्ष्म प्राणी होता है जो प्रायः पानी के डबरे के नीचे मिलता है। यह इतना सूक्ष्म होता है कि सूक्ष्मदर्शकयंत्र की सहायता के बिना नहीं देखा जा

सकता। इस प्राणी के नाक, मुख, आँखें, हाथ, पाँव, आदि भिन्न २ अवयव नहीं होते। उसका आकार लगातार परिवर्तित होता रहता है। किसी अन्नकण के पास होने पर वह अपने शरीर के अर्धप्रवाही पेशी-द्रव को पाँव के समान फैला कर अन्नकण को चारों ओर से घेर लेता है। और कुछ समय के बाद वह अन्नकण पच कर उसके पेशी-द्रव के साथ समरस हो जाता है। इस प्राणी की इस विशिष्ट हलचल को **अमीबाइड हलचल** कहते हैं (आकृति १४—नं. २ और ३ देखिये)। अमीबा अपने सब पृष्ठभाग से प्राणवायु और पानी ग्रहण कर लेता है और निरुपयोगी पदार्थ बाहर फेंक देता है। इसकी पूर्ण वृद्धि होने पर एक से दो अमीबा भी हो जाते हैं और एक दो दिन के भीतर सैकड़ों अमीबा उत्पन्न हो सकते हैं।



आकृति ८
A—अमीबा.
B—एक अमीबा से दो अमीबा बन रहे हैं।

७. निर्जीव पदार्थ की अपेक्षा सजीव पदार्थ के गुणधर्म में निम्न अन्तर है—

१. सजीव प्राणी हलचल कर सकता है।

२. वह सचेतन है इसलिए बाह्य उद्दीपन से उसमें प्रतिक्रिया प्रारंभ हो जाती है; क्योंकि उसको चारों ओर की परिस्थिति का भान होता है। उदाहरणार्थ—किसी अन्नकण के निकट होने के कारण अमीबा के समान प्राणी फौरन हलचल प्रारंभ कर देते हैं।

३. उसके लिए अन्न की जरूरत होती है। अन्न का शोषण कर वह उसका पेशी-द्रव में रूपांतर कर देता है।

४. उक्त क्रिया के कारण उसकी वृद्धि होती है।

५. श्वासोच्छ्वास की क्रिया सदा जारी रहती है।

६. वह निरुपयोगी पदार्थ शरीर के बाहर फेंकता रहता है।

७. सजीव प्राणी अपने समान एक या एक से अधिक प्राणियों को उत्पन्न कर सकता है।

उक्त गुण-धर्म सजीव प्राणी के हैं जिन्हें वह पेशी-द्रव (Protoplasm) के कारण प्राप्त करता है। प्राणी की मृत्यु का अर्थ पेशी-द्रव का काम न कर सकना और उसका नाश हो जाना है।

८. सजीव प्राणी का विकास अथवा उत्क्रान्तिवाद (Animal evolution)—छोटे छोटे प्राणियों में हजारों वर्षों से अनेक परिवर्तन होते होते कीडे, पक्षी, पशु, मनुष्य आदि एक से बढकर एक उच्च प्राणियों की श्रेणियों का सृजन होकर अंत में मनुष्य प्राणी का निर्माण हुआ है। लाखों वर्ष पूर्व इस संसार में ऊपर वर्णित अमीबा के समान एक पेशी या कोष के (One-celled) असंख्य प्राणी थे। आगे दिये गये

कारणों से कुछ प्राणी क्रमशः परिवर्तित होने लगे और उन्हें भिन्न २ आकार प्राप्त हुए जिनसे छोटे जीव-जन्तु, कीटक, पक्षी, पशु, मनुष्य आदि अनेक जातियाँ तैयार हुईं।

प्राणियों का मूल आकार क्रमशः परिवर्तित होते २ उनसे नये प्रकार के प्राणियों के बनने के मुख्य कारण ये हैं —

१. संसार की परिस्थिति जिस तरह बदलती गई, नई परिस्थिति में अपने को ढालने के उद्देश्य से प्राणियों में परिवर्तन अनिवार्य हो गया। उदाहरणार्थ–हवा, प्रकाश, भोजन, पानी इत्यादि सजीव प्राणियों के आवश्यक पदार्थों में जिस प्रकार अन्तर आ जाता है, उसी प्रकार प्राणी भी बदल जाता है। उदा० मान लीजिए कोई प्राणी; ऐसी परिस्थिति में फँसा कि उसको किसी लंबे से लंबे पेडके पत्तों के सिवा दूसरा कोई भी भक्ष्य मिलने की संभावना नहीं। ऐसे समय वह अपनी गर्दन लगातार उठा २ कर पेड के पत्त खाने की कोशिश करेगा और बरसों तथा पीढी दर पीढी उसको यही करना पडा तो मूल प्राणीसे बढकर लम्बी गर्दनवाली प्राणियोंकी पीढी अथवा एक और प्रकार के प्राणियों की नवीन जाति का ही निर्माण होगा. शास्त्रज्ञों की राय है कि जिराफ प्राणी की गर्दन इन्हीं जैसे कारणों से ही लंबी हुई है। "परिस्थिति के अनुसार यदि बदलोगे तो जीवित रहोगे" प्रकृति का यही महामंत्र है।



आकृति ९

सूअर, बछडा, खरगोश और मनुष्य की प्रथमावस्था में वृद्धि की स्थिति में साम्य।

२. निरुपयोगी अवयव धीरे २ लुप्त हो जाते हैं। मनुष्य की पूंछ इसी नियम के अनुसार गायब हो गई है। और समय पाकर हाथ-पाँव के नाखूनों की भी यही दशा होनेवाली है। वैज्ञानिकों का यही मत है। मनुष्य यदि अपने हाथों के स्नायुओं का उपयोग न करे और हाथ को दो महीने तक किसी लकड़ी से बाँध रखे तो उस अवधि में उसके स्नायु सूख जाएंगे। इसी तरह किसी अवयव का यदि पीढियों तक उपयोग न किया जाय तो बहुत सम्भव है कि उसका भी लोप हो जाय।

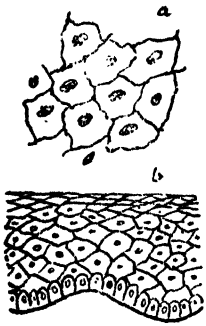
३. सब प्राणियों में जीवन के लिए संघर्ष जारी है। **डार्विन** के "Survival of the fittest" के सिद्धान्त के अनुसार इस संघर्ष में जो यशस्वी होगा उसी का अस्तित्व शेष रहेगा और शेष मर जाएंगे। इस नियम से समर्थ और बलिष्ठ प्राणी छँट जाएंगे और अन्त में श्रेष्ठ प्राणी ही इस संसार में रह जाएंगे।

अमीबा के समान प्राणी जनन, पाचन, श्वासोच्छ्वासादि समस्त क्रियाएँ एकही पेशी (Cell) की सहायता से कर सकते हैं। परंतु उन्नतर प्राणियों में भिन्न २ क्रियाओं के लिए भिन्न २ अवयव-समूह होते हैं। इसलिए शरीर के सब व्यापार श्रम-विभाग के तत्त्व पर सम्पन्न होते हैं। निम्न श्रेणी के प्राणी, बन्दर और मनुष्य के शरीर की रचना और उनके शरीर के अवयवों की प्रथमावस्था की वृद्धि की तुलना की जाए तो उनमें बहुत साम्य दिखलाई देगा। मनुष्यशरीर में जिस तरहकी अस्थियाँ और स्नायु हैं, बन्दर, चिमगादड और सील मछली में उसी तरह की और वही काम करनेवाली अस्थियाँ तथा स्नायु पाये जाते हैं। आकृति ९ को देखने पर ऐसा मालूम होगा कि प्रथमावस्था में सूअर, बछडा, खरगोश और मनुष्य इतने अधिक समान हैं कि उन्हें पृथक २ पहिचानना कठिन है। ये समस्त प्राणी पहले एक पेशी (Cell) से बढने लगते हैं और बाद में अपनी जाति के गुणधर्म को ग्रहण करने लगते हैं। प्रत्येक सजीव प्राणी की उत्पत्ति एक पेशी से होने के कारण उसकी वृद्धि पेशी की विभाजन-क्रिया द्वारा होती है। ऊपर उल्लिखित कारणोंसे निम्न श्रेणी के प्राणियों में क्रमशः परिवर्तन होते २ अतिशय बुद्धिमान मनुष्य प्राणी का विकास हुआ है। पशु, विकासमाला की बीच की अवस्था है। इस तरह प्राणी-सृष्टि अखंडित चली आ रही है। एक का उद्भव किसी दूसरे प्राणी द्वारा हुआ है और सब सजीव प्राणी एकही कुटुम्ब के घटक हैं।

९. मनुष्य की अन्य प्राणियोंसे विशिष्टता—निम्न श्रेणी के प्राणी में धीरे २ और सतत विकास होने पर ही यद्यपि मनुष्य का निर्माण हुआ है तथापि मनुष्य में अन्य सब प्राणियों की अपेक्षा कुछ महत्त्वपूर्ण विशिष्टताएँ हैं। मनुष्य दो पैरों पर चलता है और चूंकि उसे चतुष्पाद प्राणियों के समान चार अवयवों पर अपना भार नहीं डालना पडता, इस लिए उसके दो हाथ मुक्त रहते हैं, जिनकी सहायता से वह अन्य कार्य कर सकता है। मनुष्य का दूसरा भिन्न गुण उसकी भाषण-क्षमता है। अन्य प्राणी बोल नहीं सकते। हँसने की क्रिया भी केवल मनुष्य ही कर सकता है अन्य कोई भी प्राणी–गाय, चूहा, तोता आदि–हँस नहीं सकते। इनके अतिरिक्त जीवन-सृष्टि में मनुष्य को जो

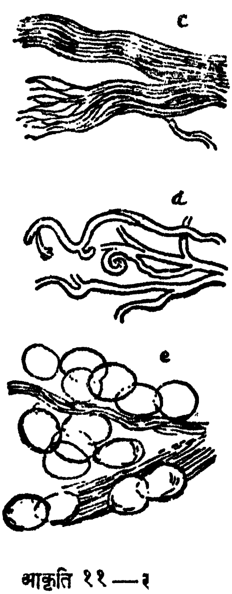
महत्त्व प्राप्त हुआ है उसका कारण उसकी बुद्धि है। इस बुद्धि के बल पर विज्ञानशास्त्र में जो उन्नति हुई है उसने संसार को आश्चर्यचकित कर दिया है। साहित्य, तत्त्व-ज्ञान आदि अनेक विस्मयकारक बातें उसने अपनी बुद्धि के बल पर निर्मित की हैं, और इस तरह उसने संसार में अपना ऊँचा स्थान बना लिया है।

१०. पेशीजाल (Tissues)—जिस तरह अनेक ईंटें मिलकर इमारत तैयार करती हैं, उसी तरह असंख्य पेशियाँ मिलकर शरीर बनाती हैं। पेशीयाँ भिन्न २ आकार की होती हैं और भिन्न २ कार्य करती हैं। एक ही रचना की तथा एकही प्रकार का काम करनेवाली पेशियों के समूह को **पेशीजाल** (Tissue) कहते हैं। ये सब पेशियाँ किसी संयोगी पदार्थ से परस्पर फँसी रहती हैं। उदाहरणार्थ, यकृत की सब पेशियाँ बहुकोणाकृति और एकही जाति की हैं और उन सब का काम एक ही है और वह है पित्त तयार करना। इसी लिए यकृत को एक पेशीजाल कहा जाता है। इसी प्रकार स्नायुओं की सब पेशियाँ एकही प्रकार की और लम्बी-सी होती है और आकुंचन और प्रसरण होना उनका कार्य है। इसी लिए स्नायु (Muscle) को ही पेशीजाल का एक प्रकार कहते हैं। इस तरह हमारे शरीर में भिन्न २ बनावट के और भिन्न २ कार्य करनेवाले अनेक पेशीजाल हैं। उनसे मिलकर शरीर तैयार होता है।



आकृति १० — **पृष्ठाच्छादक पेशीजाल**
(Epithelial tissue)

बनावट और कार्य के हिसाब से पेशीजाल अनेक प्रकार के होते हैं परन्तु इस सम्बन्ध में एक बात और ध्यान में रखनी चाहिये। वह यह कि प्रत्येक अवयव एकही प्रकार के पेशीजाल का बना हुआ नहीं रहता, उसमें पेशीजाल के एक से अधिक प्रकार भी कई बार पाए जाते हैं। पेशीजाल के प्रकार निम्नानुसार हैं।



आकृति ११ — १
(Connective) **पेशीजाल**

(१) पृष्ठाच्छादक पेशीजाल (Epithelial tissue) (आकृति १० *a* और *b*)—यह मुख्यतः पेशियों (Cells) से बना हुआ है। अतः उन्हें पृथक करनेवाला पदार्थ बहुत ही कम रहता है। इससे शरीर का आच्छादन (शरीर की त्वचा) तैयार होता है। श्वासमार्ग, अन्नमार्ग और बाह्य जगत से सम्बन्ध रखनेवाले अन्य खोखले अवयवों की भीतरी त्वचा (Mucous membrane) इसी पेशी-जाल से बनी हुई है। इसकी कुछ

पेशियाँ फर्श जैसी चपटी, कुछ घनाकृति (Cubical) और कुछ नलियों के समान लम्बी (Cylindrical) होती हैं। श्वासमार्ग की भीतरी त्वचा की पेशी (आकृति ३१ और ३२ देखिये) लम्बी होती है और उस पर अत्यन्त सूक्ष्म और कोमल केश (Cilia) होते हैं। हवा के झोंके से जिस प्रकार खेतों की घास हिल उठती है उसी प्रकार ये मृदु केश भी आगे-पीछे हिलते रहते हैं। इनकी इस आगे पीछे होनेवाली गति को **केशचलन** (Ciliary movement) कहा जाता है। इस हलचल के कारण श्वासमार्ग का श्लेष्मा (Mucus) अथवा भीतर जानेवाला धूलिकण गले की ओरसे शरीर के बाहर फेंकने के लिये ढकेला जाता है। बीजवाहक नलिका से (Fallopian tube) स्त्री-बीज भी गर्भाशय की ओर इसी केशचलन द्वारा ढकेला जाता है। पृष्ठाच्छादक पेशीजाल भिन्न २ निम्न कार्य करता है—(१) संरक्षण (जैसे त्वचा और अंतस्त्वचा), (२) रस-स्राव (Secretion) (जैसे यकृत, लारोत्पादक पिण्डों की पेशियाँ), (३) मलोत्सर्ग (उदाहरण—मूत्रपिण्ड की पेशियाँ), (४) अभिशोषण (जैसे छोटी आँतडियों की अंतस्त्वचा की पेशियाँ)।

(२) **स्नायुओं का पेशीजाल** (Muscular tissue) आकृति ७६, ७७ और ७८ देखिये)—इसमें पेशियाँ तागे के समान लम्बी लचीली होने के कारण नाडीतन्तुओं की प्रेरणा से उनका आकुंचन होता है। सूक्ष्मदर्शकयंत्र से इन पेशियों को देखने पर इच्छानुवर्ती (Voluntary) स्नायुओं के अस्पष्ट पट्टे दिखलाई पडते है। परन्तु अनैच्छिक (Involuntary) स्नायुओं पर ऐसे पट्टे (धारियाँ) नहीं दिखलाई पडते।

(३) **नाडीतन्तुओं का पेशी-जाल** (Nerve tissue)—यह नाडी पेशी (Nerve cell) और नाडीतन्तु (Nerve fibre) से बना हुआ है (आकृति ८७ देखिये)। नाडी पेशी का कार्य प्रेरणा (Impulse) उत्पन्न करना है। अतः नाडीतन्तु प्रेरणा-सम्वाहक हैं।

(४) **संबंधक पेशीजाल** (Connective tissue)—इसमें पेशी कम रहती है, बन्धक द्रव्य की ही अधिकता रहती है। शरीर के नाजुक भागों को बाँधकर उन्हें आधार देने का कार्य यह पेशीजाल करता है। हड्डियाँ उसी पेशीजाल की बनी हुई हैं। यह पेशीजाल कई प्रकार का है।

(अ) **श्वेततन्तु पेशीजाल** (White fibrous tissue) (आकृति ११ c देखिये)—इसके तागे लम्बे लचीले, और मजबूत होने के कारण यह अस्थिबन्धन और स्नायुबन्धन के काम आता है।

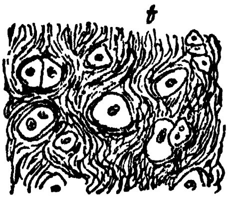
(आ) **पीततन्तु पेशीजाल** (Yellow elastic tissue) (आकृति ११ d देखीये)—यह मोटे और लचीले तागों से बुनकर तैयार होता है। यह अस्थिबन्धन (Ligaments), कूर्चा (Cartilage) और शुद्धरक्तवाहिनी के मध्य आवरण आदि में पाया जाता है।

(इ) **तन्तु पेशीजाल** (Areolar tissue) — इसमें ऊपर लिखे दोनों प्रकार के तागे रहते हैं। त्वचा के नीचे तथा नाडीतन्तु, स्नायु या रक्तवाहिनियों के बाह्य आवरण में यह मिलता है, और भिन्न २ पेशीयों को जोडने में इसका उपयोग होता है।

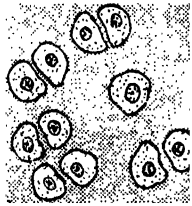
(ई) **लिम्फोसाइट** नाम की श्वेत-पेशी यदि तन्तुपेशीजाल में रहती है तब उसे **लिम्फॉईड पेशीजाल** अथवा **रसग्रन्थि पेशीजाल** कहते हैं। (आकृति २६ देखिये) रसग्रन्थि (Lymph glands), प्लीहा और गले की ग्रन्थियाँ (Tonsils) इसी पेशीजाल की बनी हैं।

(उ) **वसामय पेशी-जाल** (आकृति ११ c देखिये)—तन्तुपेशीजाल में चर्बी की पेशी होने पर ये पेशीजाल बनते हैं और त्वचा के भीतरी भाग में रहते हैं।

(ऊ) **कूर्चा** (Cartilage) — यह ठोस लचीला रहता है (आकृति १२ अ और ब देखिये)। कभी २ कूर्चों में तंतू भी रहते हैं (Fibro-cartilage) । इसका



आकृति १२ अ
कूर्चा, श्वेततंतुसहित
Fibro-cartilage



आकृति १२ ब
तंतुहीन कूर्चा
Hyaline cartilage

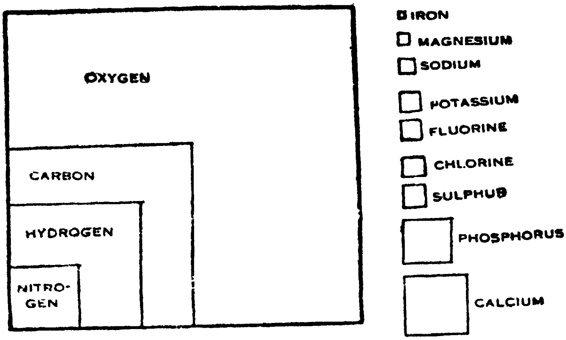
जादा वर्णन पृष्ठ १०४ परिच्छेद ९१ में देखिये।

(ए) **अस्थि पेशी-जाल** — (इसका वर्णन और आकृति अस्थि-संस्था में देखिये। आकृति ७०)

(ऐ) **रक्त** (इसका वर्णन और आकृति रक्ताभिसरण-संस्था में देखिये। आकृति १४)

११. शरीर की रासायनिक बनावट (Composition of the body)— यदि शरीर का रासायनिक दृष्टि से पृथक्करण किया जाय तो यह दिखलाई देगा कि उसकी पेशियाँ अनेक प्रकार के मूलतत्त्वों (Elements) या उनके संयोग से बनी हुई है। जिन पदार्थों का किसी भी रीति से रासायनिक दृष्टि से पृथक्करण नहीं किया जा सकता उन्हें **मूल-तत्त्व या मौलिक तत्त्व** (Elements) कहते हैं। उदाहरणार्थ-लोह, कार्बन, ऑक्सिजन इत्यादि मूलतत्त्व हैं। हमारा शरीर ही नहीं, संसार की प्रत्येक वस्तु का मूलतत्त्वों की खोज में पृथक्करण किया जाता है। अनेक मूलतत्त्वों से मिलकर **संयुक्त पदार्थ** (Compounds) तैयार होते हैं और वे मूलतत्त्व की अपेक्षा गुणधर्म में बहुत ही भिन्नता रखते हैं। उदाहरणार्थ-सोडियम और क्लोरिन के मेल से सोडियम क्लोराइड याने नमक नाम का एक

तीसरा पदार्थ बनता है। इसी तरह हायड्रोजन और ऑक्सिजन मिलकर पानी तैयार होता है। इसी प्रकार प्रत्येक पेशी में रहनेवाला जीवित पदार्थ याने पेशी-द्रव (Protoplasm), कार्बन, ऑक्सिजन, हायड्रोजन, नायट्रोजन, गंधक और फास्फरस के योग से बना है। पहले मूल-तत्त्वसे संयुक्त पदार्थ बनाने का कार्य वनस्पति करती है। हवा से कार्बन और ऑक्सिजन, जमीन से खनिज लवण और पानी को सोखकर सूर्य-प्रकाश की सहायता से



आकृति १३ — **मानव शरीर की रासायनिक बनावट।**

प्रत्येक चौकोर विशिष्ट मूलतत्त्वों के (Element) शरीर म रहनेवाले परिणाम को बतलाता है।

नायट्रोजन-युक्त पदार्थ, श्वेतसार, स्निग्ध पदार्थ आदि को वनस्पति तैयार करती है। प्रत्यक्ष वनस्पतियों में और वनस्पति पर जीवित रहनेवाले खरगोश, हिरन, मुर्गी आदि प्राणियों के मांस में शरीर के लिए आवश्यक सब पदार्थ मिलते हैं। इस लिए इन पर निर्वाह कर हम अपने शरीर की वृद्धि कर सकते हैं।

वैज्ञानिकों ने लगभग ९२ मूलतत्त्व खोज निकाले हैं। उनमें से कम से कम १५ हमारे शरीर में मिलते हैं। वे हैं — ऑक्सिजन, कार्बन, हायड्रोजन, नायट्रोजन, कॅल्शियम, फास्फरस, सल्फर (गंधक), क्लोरिन, फ्लूरिन, पोटेशियम, सोडियम, मॅग्नेशियम, लोहा, सिलिकॉन और आयोडिन। इन मूलतत्त्वों का भिन्न २ अनुपात में संयोग होकर शरीरके अलग २ हिस्से जैसे स्नायु, हड्डियाँ आदि बने हैं।

शरीर में निम्न संयुक्त पदार्थ (Compounds) मिलते हैं —

१. **नायट्रोजनयुक्त पदार्थ** (Proteins) — यह कार्बन, हायड्रोजन, ऑक्सिजन, नाइट्रोजन, सल्फर और फास्फरस के संयोग से बनता है। उदाहरण के तौर पर स्नायु की ओर संकेत किया जा सकता है।

२. **चर्बीयुक्त पदार्थ** अथवा **स्निग्ध पदार्थ** (Fats) — यह कार्बन, हायड्रोजन और ऑक्सिजन के योग से बनता है।

३. **कर्बोज पदार्थ** (Carbohydrates)—यह कार्बन, हायड्रोजन और ऑक्सिजन के योग से बनता है। इसमें हायड्रोजन और ऑक्सिजन का परिमाण २ : १ (H_2O) रहता है। शक्कर इसी पदार्थ के अन्तर्गत आती है।

प्रश्न

१. उदर-गह्वर की भिन्न २ इंद्रियों और ग्रन्थियों की आकृति खींच कर स्थिति बतलाइये। (बंबई वि. वि. १९४१, ४५, ४७).

२. पेशियों (Cells) और उनके विभाजन के विषय में आप क्या जानते है ? (बंबई वि. वि. १९४२).

अध्याय दूसरा

अभिसरण-प्रणाली (The Circulatory system)

१

रक्त (Blood)

१२. शरीर के सब भागों में बहनेवाले लाल रंग के द्रव पदार्थ को रक्त कहते हैं। पचनेन्द्रियों द्वारा भोजन के पोषक तत्त्वों का रक्त में शोषण किया जाता है और उन्हें भिन्न २ अवयवों तक पहुँचाने का कार्य रक्त को करना पड़ता है। इसी प्रकार, शरीर में उत्पन्न होनेवाले निरुपयोगी पदार्थों को रक्त में मिलाकर उत्सर्जक इन्द्रियों की (Excretory organs) ओर ले जाया जाता है। रक्त से एक विशिष्ट प्रकार की गंध आती है और स्वाद में वह खारा लगता है। **रक्तद्रव** (Plasma) नामक पीले और चिकने पतले पदार्थ और उसमें तरंगित रहनेवाले असंख्य अतिसूक्ष्म परमाणुओं से मिलकर रक्त बना है। यह परमाणु इतने छोटे रहते हैं कि सूक्ष्मदर्शकयंत्र की सहायता के बिना नहीं देखे जा सकते। यंत्र से देखनेपर उनकी दो जातियाँ दीख पडती हैं। उन्हें (१) **लाल रक्तकण** (Red blood corpuscles) और (२) **श्वेत रक्तकण** (White blood corpuscles) कहते हैं (आकृति १४ देखिये)।

१३. **रक्तद्रव** (Plasma)—यह पीले रंग का पारदर्शक तरल पदार्थ है। जिसमें लाल रक्तकण और श्वेत रक्तकण तैरते रहते हैं। स्वाद में यह खारा लगता है। 'लिट्मस' नामक कागज से परीक्षा करने पर यह **क्षारीय** (Alkaline) मालूम पडता है। उसमें ९० प्रतिशत अंश पानी और शेष १० प्रतिशत अंश घन पदार्थ रहता है जिससे रक्त तरल रहता है और शरीर के भिन्न २ भागों में आसानी से संचरित हो सकता है। पचनेन्द्रियों द्वारा भोजन से पोषक तत्त्व रक्तद्रव में शोषित कर लिये जाते हैं, जिससे ये शरीर की सूक्ष्म पेशियों तक पहुँचाए जा सकते हैं। निरुपयोगी पदार्थों को रक्तद्रव से ही उत्सर्जक इन्द्रियों की ओर शरीर के बाहर फेंकने के लिए बहाकर ले जाया जाता है। रक्त-द्रव के घन पदार्थों में मुख्यतः सीरम अल्ब्युमिन, और फाइब्रिनोजिन आदि नैट्रोजनयुक्त पदार्थ (Proteins), शर्करा, द्रवरूप में रहनेवाले चर्बी तथा कुछ लवण (Salts)—मुख्यतः सोडियम क्लोराइड याने नमक और कॅल्शियम—मिलते हैं। इनके अतिरिक्त कार्बन-डायॉक्साइड वायु और थोडे परिमाण में ऑक्सिजन याने प्राणवायु भी उसमें रहती है।

१४. **लाल रक्तकण**—ये अतिशय सूक्ष्म होते ह। इनका आकार गोल परन्तु दोनों बाजू से खोखला (Biconcave) रहता है। प्रत्येक कण का रंग यद्यपि पीलापन लिये रहता है, फिर भी अनेक कणों के समुदाय के कारण रक्त का रंग लाल ही दिख पडता है। रक्त में ये कण इतनी अधिक संख्या में रहते हैं कि एक घन मिलिमीटर में ५० लाख कण समा सकते हैं। और एक सुई की नोक में निकाले गये सूक्ष्म रक्तबिंदु में करोडों कण

मिल सकते हैं। एक घन मिलिमीटर में कितनी पेशियाँ हैं खुर्दबीन यंत्र की सहायतासे प्रत्यक्ष में गिनकर देखा जा सकता है। प्रत्येक रक्तकण में **हिमोग्लोबिन** (Hœmoglobin) नामक एक लाल पदार्थ रहता है। इसी लिए रक्त लाल दिखलाई देता है। यह पदार्थ लोह और एक प्रकार के नैट्रोजनयुक्त पदार्थ से बना हुआ होता है। 'हिमोग्लोबिन' का विशेष गुण यह है कि उसका ऑक्सिजन वायु से सहज ही सम्पर्क हो सकता है। जिस समय

आकृति १४ — **शरीर की भिन्न २ रक्ताभिसरण-पद्धतियाँ तथा धमनियाँ** (Arteries), **केशवाहिनियाँ** (Capillaries), और **शिराएँ** (Veins), **रसवाहिनियाँ** (Lymphatics), **लाल रक्तकण** और **श्वेत रक्तकण** (Red blood and white blood corpuscles) **आदि।**

क्रमांक १ — भिन्न २ अभिसरण पद्धतियाँ और रसवाहिनियाँ (धमनियाँ लाल रंगसे दिखलाई गई हैं; शिराएँ नीले रंग से, पोर्टल शिरा अंजीरी रंग से और रसवाहिनियाँ पीले रंग से दिखलाई गई हैं।)

१ ऊर्ध्वमहाशिरा (Superior vena cava), २ अधोमहाशिरा (Inferior vena cava), ३ दाहिना ग्राहककोष्ठ (Right auricle), ४ दाहिना क्षेपककोष्ठ (Right ventricle), ५ बायाँ क्षेपककोष्ठ (Left ventricle), ६ बायाँ ग्राहककोष्ठ (Left auricle), ७ फुप्फुस की धमनी, ८ फुप्फुस की केशवाहिनी, ९ फुप्फुस की शिरा, १० महाधमनी (Aorta), ११ मस्तक की ओर रक्त ले जानेवाली धमनी, १२ जठर की धमनी, १३ अँतडियों की धमनी, १४ कोष्ठशिरा (Portal vein), १५ यकृत की धमनी, १६ यकृत की केशवाहिनी, १७ अंतडियों की शिरा (इस में अन्नका शोषण किया जाता है और कोष्ठशिरा के मार्ग से यकृत में ले जाया जाता है।) १८ पैर की धमनी, १९ जंघा की केशवाहिनीयों का जाल, २० पैर का शिरा, २१ यकृत की शिरा, २२ अँतडियों की रसवाहिनियाँ, २३ पैर की ओर से आनेवाली रसवाहिनिया, २४ वक्षरसवाहक (Thoracic duct), २५ दक्षिण रसवाहक (Right lymphatic duct)।

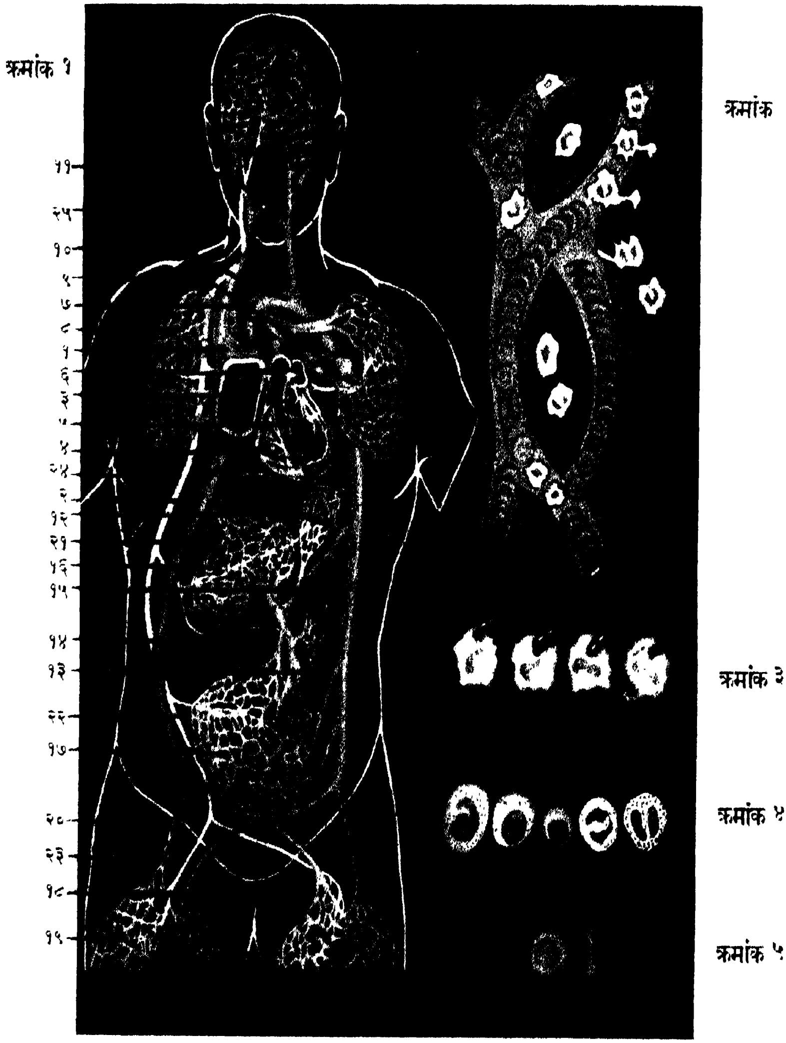
क्रमांक २ — केशवाहिनियों से लिया गया खडा कटा भाग। केशवाहिनी की खोखली में से अनेक रक्तकण दिखलाई देते हैं। उसकी पतली दीवार में से कुछ श्वेत रक्तकण बाहेर निकल भी पडते हैं।

क्रमांक ३ — रक्त के श्वेत रक्तकण अमीबा के समान हलचल कर रोगजन्तुओं को खा जाने का प्रयत्न कर रहे हैं।

क्रमांक ४ — श्वेत रक्तकण के भिन्न २ प्रकार।

क्रमांक ५ — लाल रक्तकण (दाहिनी) आगे से देखने पर; (बाईं) बाजू से देखने पर।

रक्त फेफड़ों की रक्तवाहिनियों में बहता रहता है उस समय फेफड़ों में रहनेवाली प्राणवायु को हिमोग्लोबिन सोख लेता है; जिससे **ऑक्सिहिमोग्लोबिन** नामक पदार्थ बनता है। भिन्न २ अवयवों की पेशियों की ओर जब रक्त जाता है तब ऑक्सिहिमोग्लोबिन में से ऑक्सिजन सरलता से पृथक हो जाती है और पेशी में होनेवाली ज्वलन-क्रिया में सहायता पहुँचती है। इस तरह शरीर की पेशियों को ऑक्सिजन वायु पहुँचाने का काम ये रक्तकण ही करते हैं। रक्तकण की उत्पत्ति हड्डियोंके छिद्रमय भाग की मज्जा में (Bone-marrow) होती है। लगभग १०० दिनतक ऑक्सिजन के वहन का कार्य करने पर प्लीहा और



आकृति १४—**शरीरका भिन्न २ रक्ताभिसरण-पद्धतियाँ तथा धमनी** (Arteries), **केशवाहिनी** (Capillaries) **और शिरा** (Veins), **रसवाहिनियाँ** (Lymphatics), **लाल रक्तकण** और **श्वेत रक्तकण** (Red blood and white blood corpuscles), **आदि ।** (रचनात्मक आकृति)

यकृत में पुराने लाल रक्तकणों का नाश हो जाता है। पुरानी पेशियों के नाश तथा नवीन पेशियों के निर्माण की क्रिया शरीर में हमेशा जारी रहती है।

१५. श्वेत रक्तकण (White blood corpuscles or Leucocytes)— इन कणों के कोई विशेष रंग नहीं होता। इनका आकार लाल रक्तकणों की अपेक्षा जरा बड़ा रहता है और प्रत्येक श्वेत रक्तकण में एक या एक से अधिक केन्द्र-भाग (Necleus) रहते हैं। रक्त में उनका परिमाण लाल रक्तकण के हिसाब से बहुत ही कम—याने प्रति पांच सौ लाल रक्तकण के पीछे एक श्वेत कण—रहता है। और एक घन मिलिमीटर में वे अंदाजन ८ से १० हजार होती हैं। इसका आकार अनिश्चित रहता है। किसी अमीबा के समान आकार क्षण २ बदलता रहता है। इसी लिए ये कण एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर सरक सकते हैं। इतना ही नहीं, ये सूक्ष्म केशवाहिनियों की पतली दीवार से भी बाहर खिसक जाते हैं (आकृति १४ क. २ और ३ देखिये)। रक्त में जब किसी रोग-जन्तु का प्रवेश हो जाता है तब ये श्वेत-कण उसके पास पहुँचकर उसे खा जाते हैं। इन रक्तकणों को शरीर में प्रविष्ट होनेवाले रोगजन्तुओं से झगडना पडता है। इसी लिए इन्हें शरीर-संरक्षक कहा जाता है। कई बार रोगजन्तुओं से लडते २ ये हार जाते हैं और मारे जाते हैं। इन मरे हुए रक्तकणों और रोगजन्तुओं से बने विष आदि पदार्थों से मिलकर जो पदार्थ तैयार होता है उसे पीब (Pus) कहते हैं। रक्तमें श्वेत पेशियों के प्रधानतया ५ प्रकार पाये जाते हैं। और वे आकृति १४ के क्रमांक ४ में दिखाये गये हैं। भिन्न २ प्रकार की इन पेशियों का अनुपात कुल श्वेत पेशियों में साधारणतया निश्चित ही रहता है और उसमें आनेवाले अन्तर से कई रोगों का निदान करने में सहायता पहुँचती है। इन रक्तकणों की उत्पत्ति प्रधानतया हड्डियों की मज्जामें (Bone-marrow) और लिम्फोसाइट जाति की पेशियों (आकृति १४ क्रमांक ४ की ५ तरह की पेशियों में से बीच की पेशी) की उत्पत्ति प्लीहा, रसग्रन्थि (Lymphatic gland), गलग्रन्थि (Tonsils) और अँतड़ियों के सूक्ष्म रसपिण्ड (Lymphoid tissue) आदि स्थानों में होती है।

ऊपर दिये गये वर्णन से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि शरीर में रक्त का क्या उपयोग होता है। **रक्त क्या कार्य करता है,** यह नीचे दिया जाता है—

१. रक्त का कार्य शरीर की सूक्ष्म पेशियों को प्राणवायु और भोजन रस पहुँचाना है।

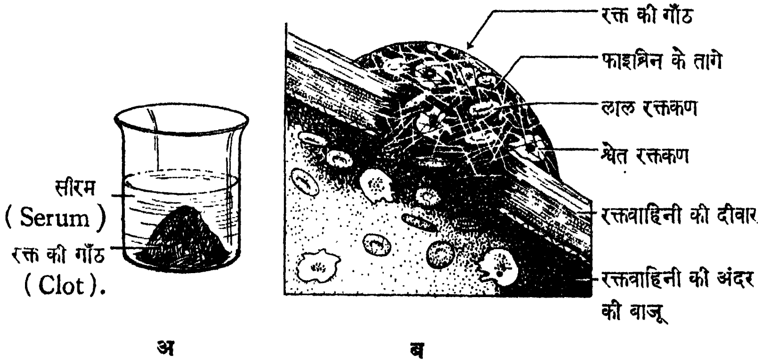
२. रक्त का कार्य शरीर में उत्पन्न होनेवाले निरुपयोगी पदार्थों को उत्सर्जक इंद्रियों की ओर बहा ले जाना है।

३. रक्त का कार्य श्वेत रक्तकण की या रक्तद्रव में उत्पन्न होनेवाले **रोगप्रतिबंधक पदार्थों** (Anti-substances) की सहायता से शरीर का रक्षण करना है।

४. रक्त का कार्य शरीर के सब भागों में समान उष्णता कायम रखना है।

१६. रक्त का जमना (Clotting of blood)— यदि किसी रक्तवाहिनी नलिका से जरासा रक्त निकालकर काँच के बरतन में स्थिर रख दिया जाय तो वह जम

जाता है। और थोडी देर में **सीरम** नामक पीला पतला द्रव-पदार्थ ऊपर आ जाता है और काली व जमी हुई गांठ नीचे रह जाती है। रक्त-द्रव (Plasma of blood) में **फाइब्रिनोजेन** (Fibrinogen) नामक नाइट्रोजनयुक्त पदार्थ सदा विरल स्थिति में ही रहता है। घाव के कारण या अन्य किसी वजह से खून यदि रक्तवाहिनी नलिका से बाहर निकल आये तो उससे रक्त में न मिलनेवाला **फाइब्रिन** (Fibrin) नामक पदार्थ तैयार हो जाता है। किसी लकडी की सींक से यदि रक्त को हिलाएँ तो उस पर तागे के समान और चिकना 'फाइब्रिन' सहज ही जमा हो जावेगा; फिर जो रक्त शेष रहेगा उसे '**फाइब्रिनविरहित रक्त**' (Defibrinated blood) कहेंगे। रक्त जमने का अर्थ यह है कि तागे के समान तैयार होनेवाले फाइब्रिन में लाल रक्तकण और श्वेत रक्तकण फँस कर उनकी एक कालिमायुक्त लाल गाँठ (Clot) बन जाती है और पतला



आकृति १५—**रक्त का जमना**

अ सीरम के तल में रहनेवाली रक्त की गाँठ। **ब** रक्तवाहिनी के फूटने पर उसकी दीवार से निकलनेवाले रक्त जम गया है। सूक्ष्मदर्शकयंत्र से देखने पर फाइब्रिन के तागे के बीच लाल रक्तकण और श्वेत रक्तकण फूँसे हुए दिखलाई दे रहे हैं।

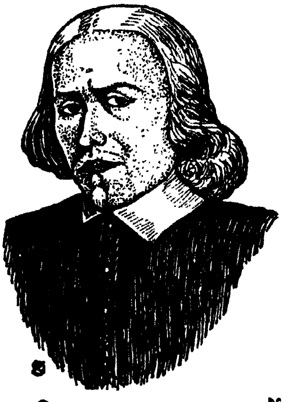
जलीय अंश याने 'सीरम' पानी के समान अलग रहता है। रक्त जब तक रक्तवाहिनियों में बहता रहता है तब तक वह कभी भी नहीं जमता परन्तु जब घाव या अन्य कुछ कारणों से रक्तवाहिनी में से बाहर निकलता है जम जाता है। रक्त में रहनेवाले कॅल्शम क्षार की रक्त की जमने की क्रिया में सहायता होती है। घाववाले स्थान पर बारीक रक्तवाहिनियों के फूटने पर जब रक्तस्राव प्रारम्भ हो जाता है तब उस स्थान पर ऊपर वर्णन किए अनुसार थोडे ही समय में रक्त स्वयं ही जम जाता है और रक्त का बहना बन्द हो जाता है। इस रीति से मामूली रक्तस्राव को अपने आप बन्द कर देने की जो शरीर में प्राकृतिक योजना है वह अत्यन्त आवश्यक है। रक्त में यदि यह गुण न होता तो अलपीन के जरा चुभने पर शरीर से जो रक्त निकलता वह बह २ कर शायद हमारे प्राण ले लेता। यदि प्राण न लेता तो हमें कमजोर तो अवश्यही बना डालता। रक्तद्रव

(Plasma), सीरम (Serum), फाइब्रिन (Fibrin) और रक्त की गाँठ (Clot) में परस्पर यह सम्बन्ध है—

रक्त (Blood)
- रक्तद्रव (Plasma)
  - सीरम (Serum)
  - फाइब्रिनोजेन (Fibrinogen) उससे फाइब्रिन बन जाता है
- लाल रक्तकण (B.B C.),
- श्वेत रक्तकण (W.B.C.)

(फाइब्रिन, लाल रक्तकण और श्वेत रक्तकण मिलकर) रक्त की गाँठ (Clot)

१७. रक्ताभिसरण-प्रणाली की इंद्रियाँ और अभिसरण की आवश्यकता– (१) पोले स्नायुओं से बनी हुई **हृदय** नामक इन्द्रिय, (२) हृदय से भिन्न २ अवयवों में शुद्ध रक्त पहुँचानेवाली **धमनियाँ** (Arteries), (३) धमनियों से शिराओंकी ओर रक्त ले जानेवाली सूक्ष्म **केशवाहिनी** नलिकाओं (Capillaries) और (४) हृदय की ओर अशुद्ध रक्त वापस वहा ले आनेवाली **शिराओं** (Veins) से मिलकर रक्ताभिसरण-प्रणाली (Circulatory system) बनी है। इन सब नलिकाओं में रक्त नामक द्रव पदार्थ बहता है। रक्त हृदय से निकल कर धमनियों और केशवाहिनियों के मार्ग से शरीर के भिन्न २ अवयवों में पहुँचता है और शिराओं से लौटकर हृदयकी ओर आता है। और फिर उसी क्रम से धमनियों और शिराओं में जाता तथा लौटता है। इस प्रकार रक्त समस्त शरीर में बराबर बहता रहता है और रक्त की इसी क्रिया का नाम **रक्ताभिसरण** (Circulation) है। पचनेन्द्रिय द्वारा अन्नरस रक्त में शोषित कर लिया जाता है। अन्न या भोजन-रस तथा फुप्फुस से रक्तकणों के द्वारा शोषित कर ली गयी ऑक्सिजन – ये दोनों पदार्थ – धमनियों और केशवाहिनियों के मार्ग से भिन्न २ पेशियों तक पहुँचा दिये जाते हैं। इन पदार्थों के सहयोग से पेशियों की वृद्धि होती है और इसमें ऑक्सिजन के रहने से भोजन-रस जलकर उष्णता तथा शक्ति का निर्माण करता है। ज्वलन से उत्पन्न होनेवाले कार्बन-डायॉक्साइड, पानी आदि निरुपयोगी पदार्थ रक्त में से प्रथम हृदय की ओर और वहाँसे उत्सर्जक इन्द्रियों की ओर ले जाये जाते हैं। इस रीति से भोजन-रस और ऑक्सिजन को पेशियों तक पहुँचाने और निरुपयोगी पदार्थों को बाहर ले जाने के काम अभिसरण के द्वारा संभव होते हैं। हृदय से अपने शरीर में भिन्न २ भागों की ओर और वहाँ से हृदय की ओर रक्त का बहाव हमेशा जारी रहता है। इस बात को **हार्वे** नामक वैज्ञानिक ने सप्रमाण सिद्ध किया था।

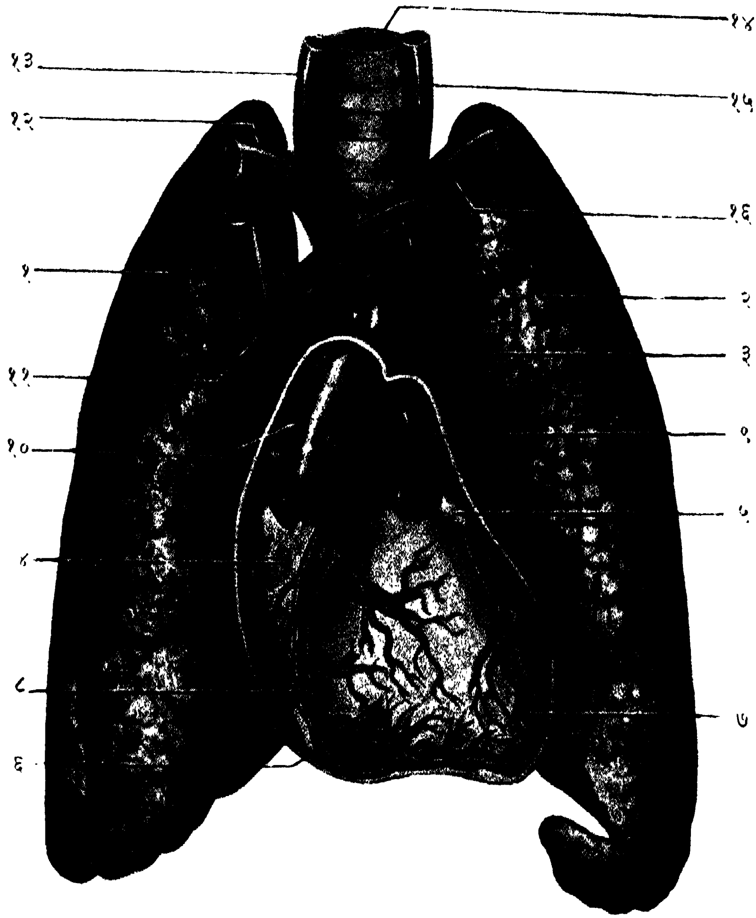


आकृति १६ – सर वुइल्यम् हार्वे

१८. **हृदय** — यह स्नायुओं की बनी हुई पोली इन्द्रिय रक्ताभिसरण-प्रणाली में एक बडे पम्प के समान है। यह इन्द्रिय छाती के खोखले भाग में दो फेफड़ों के बीच में जरा बायीं ओर झुकी सी स्थित है। यह साधारणतया अपने हाथ की मुट्ठी के जितनी है। उसका त्रिकोणी आकार है। इसका चौडा भाग (Base) ऊपर की ओर रहता है और सँकरा भाग (Apex) नीचे की ओर जरा बाँयें बाजू रहता है। इसका वजन १० से १२ औंस तक रहता है। लम्बाई साधारणतः ५ इंच, चौडाई ३$\frac{1}{2}$ इंच और मोटाई २$\frac{1}{2}$ इंच होती है। इसके चारों ओर **हृदयावरण** या **पेरिकार्डिअम** (Peri-cardium) नामक दो पल्ले की थैली से बना हुआ एक आवरण होता है, जिसका भीतरी गुलगुला पल्ला हृदय से संलग्न रहता है। दोनों पल्लों में एक प्रकार का तैलमय पदार्थ रहता है, जिससे हृदय का आकुंचन तथा प्रसरणकार्य बिना किसी घर्षण के होता रहता है।

हृदय के भाग — स्नायु के एक खडे पर्दे के कारण हृदय का भीतरी खोखला भाग दो भागों में विभाजित हो जाता है। दायें भाग में शुद्ध रक्त संचित रहता है और बायें भाग में अशुद्ध रक्त रहता है। बीच के पर्दे के दायें और बायें भाग का परस्पर सम्बन्ध नहीं हो पाता। इन भागों में प्रत्येक के बीच एक आडे पर्दे के होने के कारण और दो २ भाग हो गये हैं और प्रत्येक बाजू निचले और ऊपरी हिस्सों के बीच में एक छेद रहता है, जिसमें एक ही ओर खुलनेवाला पर्दा (Valve) पाया जाता है। प्रत्येक भाग के ऊपरी हिस्से को **ग्राहककोष्ठ** (Auricle) और निचले भाग को **क्षेपककोष्ठ** (Ventricle) कहते हैं। ग्राहककोष्ठ की अपेक्षा क्षेपककोष्ठ आकार में बडे होते हैं। और फेफड़ों तथा शरीर के अन्य समस्त भागों की छोटी केशवाहिनियों में रक्त भेजना उनका काम होनेसे उनकी दीवार भी ग्राहककोष्ठ की अपेक्षा मोटी रहती है। इस रीति से हृदय के, दाहिना ग्राहककोष्ठ (Right auricle), दाहिना क्षेपककोष्ठ (Right ventricle), बायां ग्राहककोष्ठ (Left auricle), और बायां क्षेपककोष्ठ (Left ventricle) नामक चार भाग बन गये हैं। प्रत्येक भाग स्नायुओं का [मायोकार्डिअम, (Myocardium)] बना हुआ है। उसमें अन्दाजन तीन औंस रक्त समा सकता है। उसके भीतरी ओर '**इन्डोकार्डियम**' (Endocardium) नामक पतली झिल्ली रहती है।

(अ) **दाहिना ग्राहककोष्ठ** (Right auricle) — यह हृदय की दाहिनी ओर का ऊपरी भाग है। शरीर के ऊपरी और निचले भाग से आनेवाला सब अशुद्ध रक्त अधोमहाशिरा तथा ऊर्ध्वमहाशिरा (Inferior vena cava and superior vena cava) नामक दो बडी शिराओं द्वारा इस भाग में उंडेला जाता है। यह ग्राहककोष्ठ छोटा है। उसकी दीवार पतले स्नायुओं की बनी है। ग्राहककोष्ठ और उसके नीचे रहनेवाले क्षेपककोष्ठ के बीच में एक द्वार है जिसके नीचे क्षेपककोष्ठ की ओर खुलनेवाला एक तीन दलोंसे अथवा भागोंसे बना हुआ **त्रिदल पर्दा** (Tricuspid valve) है। इस पर्दे का उपयोग यह है कि रक्त सिर्फ ग्राहककोष्ठ से क्षेपककोष्ठ ही में जा सकता है। वह कभी उल्टी दिशा में याने क्षेपककोष्ठ से ग्राहककोष्ठ में नहीं बह सकता।

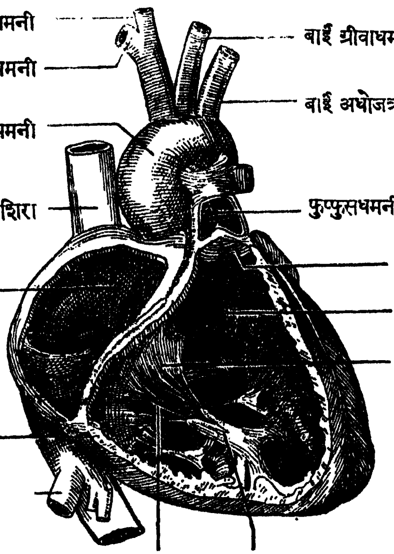


आकृति १७ — **हृदय और फेफडे**

(हृदय को पूर्ण रूप दिखाने के लिए दायें फुप्फुस का हृदय पर आनेवाला अगला भाग दाहिने ओर खींच लिया गया है।)

१ दायाँ फेफडा–इसके तीन भाग होते हैं। २ बायाँ फेफडा–इसके दो भाग होते हैं। ३ हृदयावरणका (Pericardium) काटी हुई किनार. ४ दाहिना क्षेपककोष्ठ (Right auricle). ५ बायाँ ग्राहककोष्ठ (Left auricle). ६ दाहिना ग्राहककोष्ठ (Right ventricle). ७ बायाँ क्षेपककोष्ठ (Left ventricle). ८ हृदय की धमनी. ९ फुप्फुसधमनी. १० महा धमनी (Aorta). ११ ऊर्ध्व महाशिरा (Superior vena cava). १२ दाहिनी अधोजत्रु (Subclavian) धमनी. १३ दाहिनी ग्रीवा धमनी (Carotid artery). १४ श्वासनलिका (Trachea). १५ बायीं ग्रीवा धमनी। १६ बायीं अधोजत्रु धमनी।

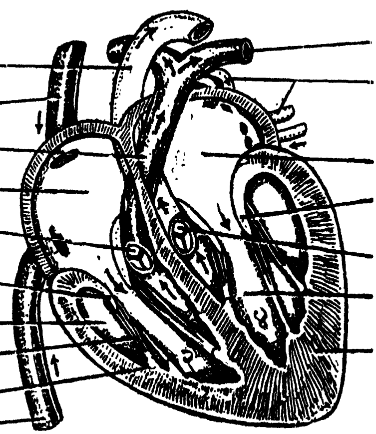
(आ) **दाहिना क्षेपककोष्ठ** (Right ventricle)—यह हृदय की दाहिनी ओर का निचला भाग है। इसकी दीवार ग्राहककोष्ठ की अपेक्षा अधिक मोटी होती है और इन दोनों भागों के बीच में रहनेवाले द्वार में क्षेपककोष्ठ की ओर नीचे खुलनेवाला त्रिदल पर्दा रहता है, यह ऊपर कहा ही जा चुका है। क्षेपककोष्ठ की दीवार के भाग से '**पॅपिलरी**' नामक स्नायु आगे उठे हुए हैं। और त्रिदल पर्दे को खोलने और बन्द करनेवाले तीनों दलों के खुले हुए छोर '**कॉर्डी टेन्डिनी**' नामक नाजुक डोरे से इन स्नायुओं में बँधे रहते हैं। इस रचना का यह उपयोग है कि जिस समय क्षेपककोष्ठ का आकुंचन होने लगता है उस समय पॅपिलरी स्नायु भी आकुंचित होने लगते हैं और उससे 'कॉर्डी टेन्डिनी' के तागों पर खिंचाव पडने से त्रिदल पर्दे के बन्द होने के बाद वे (त्रिदल पर्दे) उलटकर ग्राहककोष्ठ की ओर नहीं खुल सकते। दाहिने क्षेपककोष्ठ के ऊपरी ओर फेफड़ों की तरफ अशुद्ध रक्त ले जानेवाली धमनी रहती है, जिसके प्रारम्भ में तीन **अर्धचंद्राकृति पर्दे** (Pulmonary valves) रहते हैं।



आकृति १८—**दाहिना ग्राहककोष्ठ** (Auricle) **और क्षेपककोष्ठ** (Ventricle) **दिखानेवाला हृदय का काटा हुआ भाग।**

(इ) **बायाँ ग्राहककोष्ठ** (Left auricle)—यह हृदय के बायें भाग की ऊपरी कोठरी है। हृदय की दाहिनी ओर से उसका सम्बन्ध केवल फेफडो की केशवाहिनी नलिकाओं से ही होता है। फेफड़ों से आनेवाली रक्तवाहिनियाँ (Pulmonary veins) फेफड़ों में शुद्ध हुए रक्त को इस भाग में लाकर उंडेलती है। ग्राहककोष्ठ के स्नायुओं

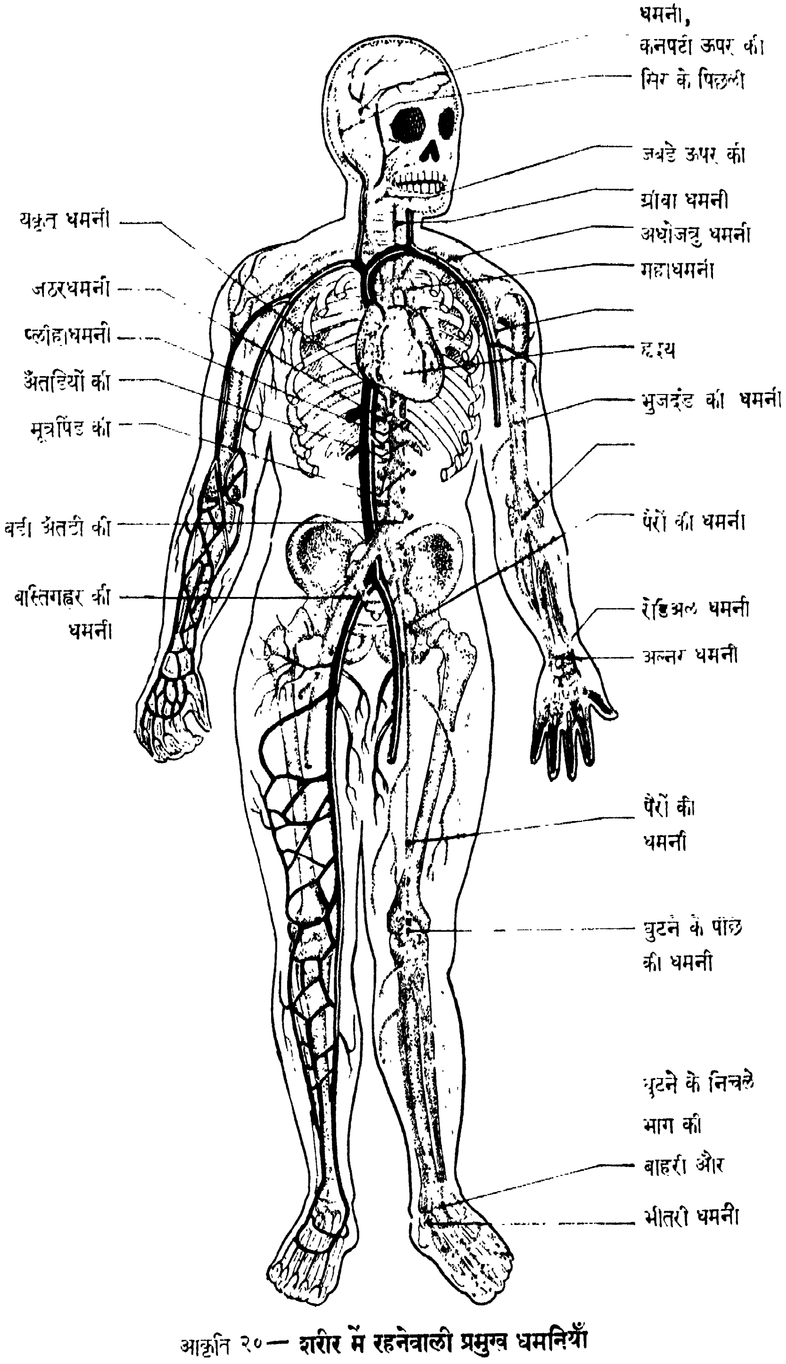
रक्त चला जाता है। फेफड़ों में रक्त शुद्ध होकर वह फेफड़ों की चार शिराओं (Pulmonary veins) से बायें ग्राहककोष्ठ में आ जाता है। फिर ग्राहककोष्ठ संकुचित होने लगता है और द्विदल पर्दा खुला जाता है और हृदय के आखिरी कोष्ठ में जिसे बायाँ क्षेपककोष्ठ कहतें हैं, रक्त उतर आता है। बायें क्षेपककोष्ठ के संकुचित होते ही द्विदल पर्दा बंद हो जाता है। यह पर्दा भी 'कॉर्डी टेन्डिनी' के तागे से क्षेपककोष्ठ के 'पॅपिलरी स्नायु' से बँधा हुआ रहने के कारण ग्राहककोष्ठ की ओर नहीं उलट पाता। इस तरह रक्त का ग्राहककोष्ठ की ओर जाने का मार्ग बन्द हो जाता है। क्षेपककोष्ठ के संकोच के कारण इसके अन्दर रहनेवाले रक्त पर दबाव बढता जाता है जिससे महाधमनी का पर्दा खुल जाता है और रक्त महाधमनी की ओर चला जाता है। इस प्रमुख धमनी की अनेक शाखाओं और उपशाखाओं के फैली हुई होने से रक्त उनके द्वारा शरीर के भिन्न २ भागों में पहुँच जाता है। प्रत्येक छोटी धमनी से अति सूक्ष्म केशवाहिनी रक्तनलिकाओं का जाल शरीर के प्रत्येक भाग में होता है। इन केशवाहिनियों के द्वारा रक्त पहुँचने से पेशियों को उसमें से भोजनरस और प्राणवायु प्राप्त हो जाती है



आकृति १९ — **अभिसरण मार्ग दिखानेवाला हृदय का काटा हुआ भाग।**

और वहाँ उत्पन्न होनेवाले निरुपयोगी पदार्थों के रक्त में सोख ले जाने के कारण रक्त अशुद्ध बन जाता है। इन केशवाहिनियों से मिलकर छोटी २ अशुद्ध रक्तवाहिनियाँ याने शिराएँ तैयार होती हैं। और इनके मार्ग से सब अशुद्ध रक्त दो बड़ी शिराओं में जमा होकर दाहिने ग्राहककोष्ठ में पहुँच जाता है। इस प्रकार उपर वर्णन किये अनुसार रक्ताभिसरण की क्रिया हमेशा चलती रहती है।

रक्ताभिसरण तथा बड़े शहर के पानी के तालाब और 'ड्रेनेज' (गटर) की व्यवस्था की तुलना करने पर अभिसरण-क्रिया की कल्पना अच्छी तरह हो जाएगी।



आकृति २०— **शरीर में रहनेवाली प्रमुख धमनियाँ**

है और बाद में वह धमनी 'फिमोरल आर्टरी' नाम धारण कर पैरों में और वहाँ के सब भागों को रक्त पहुँचाती है।

आभसरण-पद्धतियाँ (Systems of circulation) (आकृति १४ देखिये)–रक्त दाहिने ग्राहककोष्ठ से निकल कर दाहिने क्षेपककोष्ठ (Ventricle) में पहुँचकर फेफड़ों के मार्ग से बायें ग्राहककोष्ठ में पहुँचता है। इस क्रिया को **फेफड़ों में होनेवाला रक्ताभिसरण** (Pulmonary circulation) कहते हैं। इसी प्रकार बायें ग्राहककोष्ठ से, महाधमनी (Aorta), शुद्धरक्तवाहिनियों या धमनियों, केशवाहिनियों और शिराओं के मार्ग से दाहिने ग्राहककोष्ठ की ओर जो अभिसरण होता है उसे **शारीरिक अभिसरण** (Systemic circulation) कहते हैं।

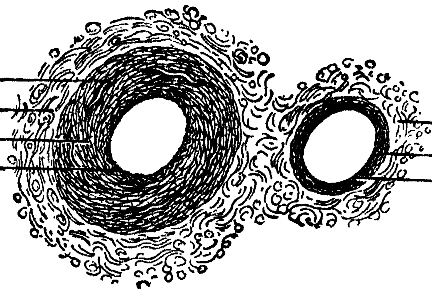
इनके अतिरिक्त **यकृत में होनेवाले अभिसरण** का भी विशिष्ट प्रकार है जिसे (Portal circulation) कहते हैं। उदर की महाधमनी (Abdominal aorta) से भिन्न २ शाखाएँ निकलती हैं जो जठर, क्लोम, अँतड़ियों और प्लीहा को शुद्ध रक्त पहुँचाती हैं। और इन अवयवों से आनेवाला अशुद्ध रक्त शिराओं से एकत्रित होता हुआ कोष्ठ शिरा (Portal vein) नामक बड़ी शिरा में जमा होता है। इस शिरा का अशुद्ध रक्त भिन्न २ पचनेंद्रियों की ओर से आने के कारण उसमें पचनेंद्रियों द्वारा शोषित किया हुआ भोजन-रस भी रहता है। यह शिरा अन्य शिराओं के समान एकदम शरीर की निचली बड़ी शिरा (Inferior vena cava) में न मिलकर पहले यकृत में जाती है, जहाँ वह बारीक २ केशवाहिनियों में परिवर्तित हो जाती है। भोजन रस में रहनेवाली **ग्लूकोज** नामक शक्कर का **ग्लायकोजेन** नामक पदार्थ में रूपान्तर होकर वह यकृत में संचित किया जाता है। इस शिरा के साथ यकृत की धमनी भी यकृत में जाती है और उसकी अनेक केशवाहिनियों द्वारा उसे (यकृत को) शुद्ध रक्त मिलता है। इन दोनों रक्तवाहिनी नलिकाओं का काम हो जाने पर यकृत का अशुद्ध रक्त जमा होकर यकृत की शिरा में जाता है और वहाँ से अधोमहाशिरा में पहुँचता है। इस समस्त अभिसरण-क्रिया को यकृत में होनेवाला अभिसरण (Portal circulation) कहते हैं।

२०. **रक्तवाहिनियाँ** (Blood-vessels) और **रसवाहिनियाँ** (Lymphatics).

धमनियाँ (Arteries) — महाधमनी से अनेक शाखाएँ फूटकर उन शाखाओं की बारीक २ धमनियाँ बनती हैं और उनसे ही अनेक उपशाखाएँ निकलती हैं जिनसे अन्त में सूक्ष्म केशवाहिनियों का जाल तैयार होता है। धमनियाँ हमारे शरीर में बहुत भीतर रहती हैं जिससे उन्हें सहज ही क्षति नहीं पहुँच पाती।

धमनी (Artery) तीन आवरणों की बनी है —(१) **भीतरी आवरण** (Internal lining) जो पतला और गुलगुला रहता है, जिससे धमनियों की पोली

नलियों में बहनेवाला रक्त बिना रोक-टोक बहता रहता है। इस आवरण को **' एन्डोथैलियम '** कहते हैं। **मध्यवर्ती आवरण** – यह अनैच्छिक स्नायुतन्तुओं का

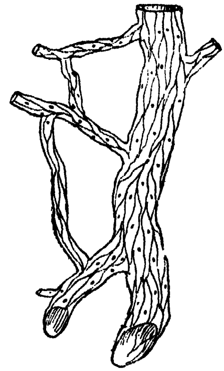


आकृति २१ — **धमनी और शिरा का आडा काटा हुआ भाग**
(सूक्ष्मदर्शकयंत्र से देखने पर)।

बना हुआ है, जिसमें श्वेत और पीले तन्तुओं के पेशीजाल भी मिलते हैं। इसके स्नायुतन्तु बहुधा गोलाकार रहते हैं। धमनी का मुख्य मोटा भाग इन्हीं का बना रहता है। ये स्नायुतन्तु धमनी की भीतरी नली को छोटी बड़ी करके रक्तप्रवाह का नियमन करते हैं। उनका आकुंचन और प्रसरण विशेष नाडीतन्तुओं (Vasomotor nerves) के अधीन रहता है। इनकी उपयोगिता शरीर में काम करनेवाले भाग को अधिक रक्त मिले यही रहती है। भोजन के बाद पचनेंद्रियों को अधिक रक्त मिले इस लिए वहाँ की धमनियों के मंडलाकार स्नायु शिथिल पडकर धमनियाँ फैलती है और उस समय मस्तिष्क को रक्त की पूर्ति कम होकर हमें झपकियाँ आने लगती हैं। इस दूसरे आवरण में रहनेवाले लचीले पेशीजाल के कारण धमनी से रक्त जोरसे बहते समय वह सहज ही तन कर छोटी-बड़ी हो सकती है। (३) **बाहरी आवरण** (External coat)—यह मोटा, सफेद पेशीजाल (Fibrous tissue) का बना हुआ रहता है। धमनियों को यही एक दृढ आवरण रहता है।

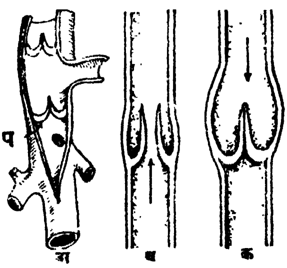
२१. केशवाहिनियाँ (Capillaries) – धमनियाँ जैसे जैसे बारीक होती जाती हैं वैसे २ उनका बाहरी और मध्यवर्ती आवरण पतला होता जाता है और अंत में केशवाहिनियों में केवल एन्डोथैलियम नामक भीतरी पतला आवरण ही बचा रहता है। धमनियों की शाखा, उपशाखा और उनकी भी छोटी शाखा से तैयार होने के कारण केशवाहिनियाँ अतिशय सूक्ष्म होती हैं। केशवाहिनियों का आवरण इतना पतला रहता है कि उनमें से रक्त का तरल पदार्थ आसानी से झर सकता है। इस पदार्थ को **' रस '** (Lymph) कहते हैं। उनके आवरणों से वायु का व्यतिकरण (Diffusion)

हो सकता है। इस रीति से भोजन-रस और ऑक्सिजन पेशियों को मिलते रहते हैं और पेशियों में उत्पन्न होनेवाले कार्बन-डायॉक्साइड आदि निरुपयोगी पदार्थ केशवाहिनीयां में ग्रहण कर लिये जाते हैं।



आकृति २२ – **सूक्ष्मदर्शक-यंत्र से दिखनेवाली केश-वाहिनी।**

२२. **शिरा** (Veins)—केशवाहिनियाँ धीरे २ एकत्रित होती जाती हैं और वे सब मिल कर शिरा में परिवर्तित हो जाती हैं और उनमें शरीर के निरुपयोगी पदार्थ जमा होते रहते हैं। छोटी २ शिराएँ परस्पर एक दूसरे से मिलकर बड़ी शिरा में परिवर्तित हो जाती हैं और इस तरह शरीर के निचले भाग से आनेवाला अशुद्ध रक्त अधोमहाशिरा तथा ऊपरी भाग का रक्त ऊर्ध्वमहाशिरा में जमा होता है। इन दोनों शिराओं के मार्गसे शरीर का समस्त अशुद्ध रक्त हृदय के दाहिने बाजू के भाग में पहुँच जाता है। शिराओं के भी धमनी के समान तीन आवरण रहते हैं परंतु वे धमनियों के आवरणों की अपेक्षा बहुत पतले रहते हैं और उनमें स्नायुतंतु तथा लचीले पेशीजाल के तंतु कम परिणाम में रहते हैं। जिससे यदि कभी कोई शिरा टूट जाती है तो वह शीघ्र ही चपटी होकर लुंज हो जाती है। इसके अतिरिक्त इन दोनों में मुख्य अंतर यह है कि शिरा में आड़े **पर्दे** (Valves) रहते हैं। ये पर्दे अर्धचंद्राकृति हो कर उनके छोर एक दूसरे से मिले रहते हैं। इन पर्दों के हृदय की ओर मुड़े हुए रहने के कारण अशुद्ध रक्त शिरा में हृदय की ओर बह सकता है किन्तु उसका प्रवाह उल्टी दिशा में नहीं बह सकता। शरीर के पृष्ठभाग के समीप की शिरा में ये पर्दे सहजही दीख सकते हैं। शिरा में रक्तप्रवाह की विरुद्ध दिशा में, उदाहरणार्थ, कुहनी की ओर से कलाई की ओर, जरा दबाकर हाथ फेरने पर पर्दा रहनेवाले स्थान पर शिरा जरा फूली हुई मालूम होगी और दबाव निकाल डालने पर वह फूला हुआ भाग गायब हो जायगा। शरीर में कितनी ही बडी शिराएँ त्वचा के नजदीक से जाती हैं और इनके नीले रंग के कारण वे सहजही पहचानी जा सकती हैं।



आकृति २३ — **शिराओं के पर्दे**
अ—पर्दों की जोडी दिखाने के लिए शिरा का खडा कटा भाग। **ब**—खुला पर्दा। **क**—बंद पर्दा। **प**—अर्धचंद्राकृति पर्दे।

२३. **रस** (Lymph)—रक्ताभिसरण केशवाहिनियों द्वारा होते रहने के कारण रक्त में रहनेवाला तरल पदार्थ केशवाहिनियों की पतली दीवारों से झिरता है और वह भिन्न २ पेशियों में फैल जाता है। केशवाहिनियों से झरनेवाले इस तरल या द्रव पदार्थ को **रस** कहते हैं। इन्हीं के द्वारा भोजन-रस और ऑक्सिजन पेशियों को प्राप्त

होते है। रक्त हृदय, धमनी, केशवाहिनी और शिरा की बन्द नलिकाओं में से बहता रहता है और उनसे कभी बाहर आता ही नहीं, जिससे उसका भिन्न पेशियों से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं रहता। पेशियों से इसी रस का प्रत्यक्ष सम्पर्क होता है, इतना ही नहीं वे इन रसों में डुबी हुई रहती हैं। ऑक्सिजन और भोजन-रस को केशवाहिनियों तक बहा ले जाना ही रक्त का कार्य है। परन्तु केशवाहिनियों में से इन पदार्थों को पेशियों तक प्रत्यक्ष पहुँचाने का काय रस (Lymph) को करना पडता है। इसी तरह पेशी में उत्पन्न होनेवाले निरुपयोगी और हानिकारक पदार्थ पहले रस में ही मिलते हैं वहाँ से कुछ लौटकर शिरामार्गद्वारा हृदय की ओर ले जाये जाते हैं। और दूसरी **रसवाहिनियों** में से (Lymphatic capillaries) स्वतंत्र मार्ग द्वारा ले जाये जा कर रक्त में मिलते है। पेशियों को पोषक द्रव पहुँचाने में रस, रक्त और पेशी के बीच में मध्यस्थ का काम करता है।

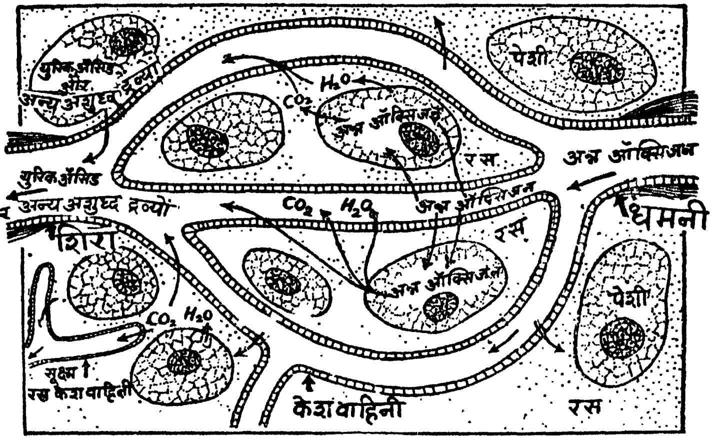
रस एक रंगविहीन द्रव (तरल) पदार्थ है; वह क्षारधर्मीय (Alkaline) हैं। उसमें पानी, नायट्रोजनयुक्त पदार्थ (Proteins,) कार्बोहायड्रेट्स (कर्बोज), लवण, प्राणवायु (Oxygen) तथा केशवाहिनियों के पतले आवरण से बाहर झिर कर आ जानेवाले कुछ श्वेत रक्तकण भी रहते हैं, परन्तु लाल रक्तकण बिलकुल नहीं रहते। रक्तद्रव (Plasma) और रस (Lymph) में बहुत कुछ समानता है; अन्तर केवल इतना ही है कि रस में कुछ श्वेत रक्तकण रहते हैं और रक्तद्रव की अपेक्षा वह अधिक तरल रहता है। घाव लगने या अन्य कारणों से रसवाहिनियों द्वारा यदि रस बाहर निकल आता है तो रक्त के समान वह भी जम जाता है। इसकी गाँठ में लाल रक्तकणों का अभाव होने के कारण गाँठ का रंग सफेद रहता है।

रस का कार्य—केशवाहिनियों के पतले आवरण से झिरकर रस के पेशियों के इर्दगिर्द फैलने पर रसका क्या उपयोग होता है यह अब देखें। रक्तद्रव से (Plasma) केशवाहिनियों तक बहा ले आये अन्नरस याने नैट्रोजनयुक्त तथा स्निग्ध पदार्थ, ग्लूकोज और विभिन्न लवण, उसी प्रकार लाल पेशियोंके वहाँ लाये हुए ऑक्सिजन आदि सब पदार्थ हर पेशी के इर्दगीर्द आये हुए रस में रहा करते हैं। इनम से ग्लूकोज और ऑक्सिजन के मेल से सब पेशियो में एक प्रकार की सौम्य ज्वलनक्रिया होती है और उससे हमारे लिए आवश्यक ऊष्णता और शक्ति प्राप्त होती है। इस ज्वलनक्रिया में कार्बन-डायॉक्साइड और पानी में अशुद्ध पदार्थ निम्नलिखित प्रक्रिया द्वारा तैयार होते हैं।

$$\underset{\text{ग्लूकोज}}{C_6H_{12}O_6} + \underset{\text{ऑक्सिजन}}{6\,O_2} = \underset{\text{पानी}}{6\,H_2O} + \underset{\text{कार्बन-डायॉक्साइड}}{6\,CO_2}$$

ज्वलनक्रिया में तैयार हुए पानी और कार्बन-डायॉक्साइड इन अशुद्ध पदार्थों में से कुछ केशवाहिनियों में जाते हैं। इसमें से अधिकांश हिस्सा रक्तद्रव में मिलकर और कुछ थोडा हिस्सा रक्त-पेशियों के हिमोग्लोबिन के साथ शिराओं के जरिये हृदय की ओर जाता है। शेष सारे अशुद्ध पदार्थ रसवाहिनियों में से हृदय की ओर जाते हैं और वहाँ से वे फेफडे जैसी उत्सर्जक इंद्रिय के पास शरीर से निकाल बाहर करने के लिए भेजे जाते हैं।

रस का और भी एक महत्त्व का उपयोग है। हर एक पेशी के इर्दगिर्द आये हुए रस में नैट्रोजनयुक्त पदार्थ तथा विभिन्न लवण जैसा नवीन पेशियों को बनाने के



आकृति २४ – **पेशियों के लिए रस का उपयोग, रक्तवाहिनियों से बहनेवाले रक्त तथा शरीर के पेशियों में उत्पन्न होनेवाले पदार्थों का आदानप्रदान।**

शुद्ध रक्त की प्राणवायु (ऑक्सिजन) तथा अन्न-रस केशवाहिनियों की पतली दीवार से बाहर आकर पेशियों को कैसे पहुँचते हैं, और पेशियों में ज्वलन से उत्पन्न होनेवाले कार्बन-डायॉक्साइड और पानी तथा अन्य भी अशुद्ध पदार्थ शिरा में तथा रसवाहिनियों में कैसे इकट्ठा होते हैं वह आकृति में दिखाया है।

लिए जरूरी सब साहित्य रहता है। हर पेशी अपनी ही जाति की नवीन पेशी बना सकती है याने स्नायु की पेशी के विभाजन के कारण स्नायु की पेशी बनती है और हड्डी की पेशी से नवीन हड्डी की पेशी तैयार होती है। शरीर की प्रत्येक पेशी के पास सभी प्रकार के अन्न-रस जाते हैं फिर भी विशिष्ट पेशी अपनी वृद्धि के लिए आवश्यक उतनाही साहित्य उसमें से चुन लेती हैं। मसलन, हड्डी की पेशी प्रधानतया कॅल्शम कार्बोनेट तथा फॉस्फेट जैसे लवण और अन्य जरूरी पोषक घटक मात्रही उस रसमें से चुन लेती है। और शेष सब पदार्थ वैसे ही आगे रस में से बहते जाते हैं। इस तरह रस में से पेशियों के आसपास आये हुए अन्न से नवीन पेशी तैयार होकर शरीर की घट भर पाती है और उसकी वृद्धि होती है।

ऊपर की विवेचनासे समझ में आ जाएगा कि धमनी के शुद्ध रक्त और शिरा के अशुद्ध रक्त में क्या २ फर्क होते हैं। धमनी के रक्त में ऑक्सिजन के होने के कारण वह लाल ही लाल दिखाई देता है और उस में सब प्रकार के अन्नद्रव्य होते हैं। शिरा के रक्त में ऑक्सिजन का परिमाण कम होता है, कार्बन-डायॉक्साइड का

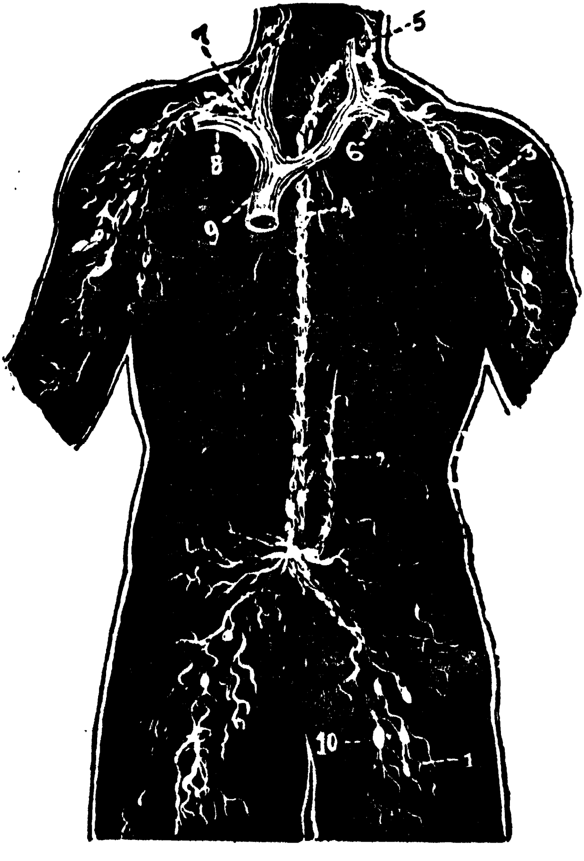
परिमाण बढता है और उस के कारण वह साँवला नीला दिखाई देता है। उसी प्रकार, पेशियों में बहुतसे अन्नद्रव्यों का उपयोग किये जाने से शिरा के रक्त में वे द्रव्य कम परिणाम में पाये जाते हैं। शिरा के रक्त में पानी का परिणाम थोडा अधिक रहता है। रस-वाहिनियों के आवरण से रस के साथ कुछ श्वेत पेशियाँ बाहर आती हैं; उनको छोड शेष श्वेत पेशियाँ और धमनी में से बहती आयी हुअी सभी लाल पेशियाँ शिरा के रक्त में पायी जाती हैं।

शुद्ध और अशुद्ध रक्त में रहनेवाली वायुओं का अनुपात नीचे दिये के अनुसार होता है।

वायुका नाम	शुद्ध रक्त	अशुद्ध रक्त
ऑक्सिजन	२०%	१६%
कार्बन-डायॉक्साइड	५०%	५५ से ६०%
नैट्रोजन	१ से २%	१ से २%

२४. **रसवाहिनियाँ** (Lymphatic vessels) (आकृति १४ देखिये, रसवाहिनियाँ पीले रंग से दिखलाई गई हैं)—रस के द्वारा पेशियों को पोषक द्रव्य पहुँचाया जाता है। उनमें पेशियों के निरुपयोगी पदार्थ जब जमा हो जाते हैं तब रस का कुछ भाग पुनः केशवाहिनियों में लौट जाता है और शेष बचा हुआ भाग भिन्न सूक्ष्म **रस-केशवाहिनियों** (Lymphatic capillaries) में जमा हो जाता है। ये रस-केशवाहिनियाँ अन्य केशवाहिनियों (Blood capillaries) के समान ही एक पतले आवरण की बनी हुई हैं। छोटी २ रस-केशवाहिनियाँ मिलकर **बडी रसवाहिनियों** (Lymphatic vessels) में परिवर्तित हो जाती हैं। इनकी सूक्ष्म रचना लगभग छोटी शिराओं (Veins) के समान रहती हैं और शिराओं के समान पर्दे होने के कारण पर्दे की जगह पर वे फूली दिखाई देती हैं। इस वजहसे ये एक मणियों की माला के समान दिखलाई देती है। शरीर की समस्त रसवाहिनियों से बडी रसवाहिनियाँ तैयार होती हैं। इनमें से बडी रसवाहिनियों में दोनों पैर, उदर, वक्षस्थल, बायाँ हाथ और गर्दन तथा सिर के बायें बाजू के भागों से आनेवाला रस जमा होता है। इस रसवाहिनी का नाम **वक्षरसवाहक** (Thoracic duct) है। यह रसवाहिनी, वक्षस्थल में से ऊपर जा कर बायीं अधोजत्रु शिरा में (Subclavian vein) रस उंडेलती है। इसी प्रकार दाहिना हाथ, गर्दन और सिर के दायें बाजू से आनेवाला रस **दक्षिणरसवाहक** (Right lymphatic duct) नामक रसवाहिनी म जमा होता है और दायीं अधोजत्रु शिरा में जाता है। दोनों अधोजत्रु शिराओं से ऊर्ध्व महाशिरा तैयार होती है। इस के कारण सब विभागो का रस अंत में हृदय में आता है। इस से मालूम होगा कि विभिन्न विभागों में तैयार होनेवाले अशुद्ध पदार्थ दो विभिन्न मार्गोंसे पर आखिर में हृदय में ही इकट्ठा

होते हैं ; कुछ पदार्थ केशवाहिनियों से शिरा के जरिये हृदय की तरफ आते हैं तो शेष रसवाहिनियों के द्वारा ऊपर बतायी हुई रीतिसे हृदय की तरफ जमा होते हैं। शरीर में हलचलें होती हैं तब शरीर में स्नायुओं के आकुंचन से रसवाहिनियों पर दबाव पड़ता है और इसी कारण रस का प्रवाह जारी रहता है। वह प्रवाह सदा हृदय की ओर जारी रहता है इसलिए रसवाहिनियों में एक ही ओर खुलनेवाले पर्दे हैं।

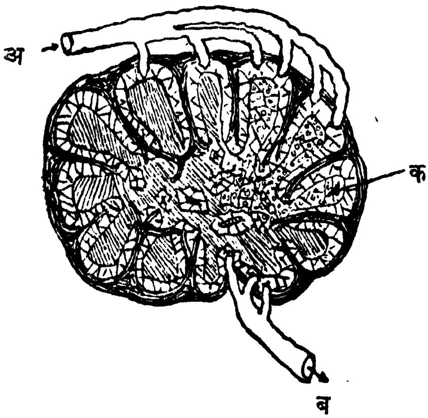


आकृति २५ — शरीर की मुख्य रसवाहिनियाँ

1 बायें पैर की ओर से आनेवाली रसवाहिनियाँ, 2 दुग्धवाहिनियाँ (Lacteals), 3 बायें हाथ की रसवाहिनियाँ, 4 वक्षरसवाहक (Thoracic duct,), 5 सिर और गर्दन के बायें बाजू की रसवाहिनियाँ, 6 बाईं अधोजत्रु शिरा, 7 दक्षिण रसवाहक (Right lymphatic duct), 8 दाईं अधोजत्रु शिरा, 9 ऊर्ध्व महाशिरा (Superior vena cava), 10 रसग्रंथि (Lymphatic gland)।

छोटी अँतडियों से आनेवाली रसवाहिनियों को **दुग्धवाहिनियाँ** (Lacteals) कहते हैं क्योंकि खाये हुये भोजन में स्निग्ध पदार्थ के रहने पर पचन के बाद शोषण होनेवाले चर्बी के सूक्ष्म कणों के कारण इन रसवाहिनियों के भीतर रहनेवाले द्रव पदार्थ का रंग सफेद रहता है। इस द्रव पदार्थ को **कायिल** (Chyle) कहते हैं।

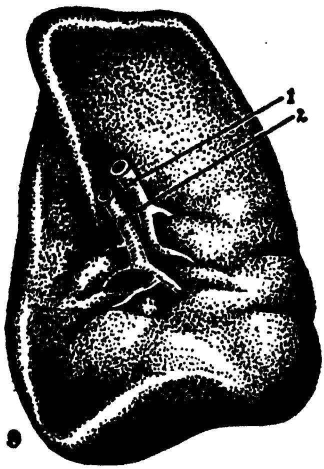
२५. **रसग्रंथि** (Lymphatic glands) — समस्त रसवाहिनियाँ जब अपने मार्ग से जाती हैं तब उन्हें रसग्रंथि (Lymphatic glands) नामक छोटी बडी गठानों में से जाना पडता है। रसग्रंथियाँ गोल या लम्बी रहती हैं और उनका आकार राई से लेकर मटर तक बडा रहता है। ये उदर, छाती, गर्दन, जाँघ, बगल आदि स्थानों में प्रमुखता से मिलती है। प्रत्येक ग्रंथि का बाहरी आवरण (Capsule) संयोगी पेशीजाल से बना हुआ रहता है (आ. २६ देखिये) और प्रत्यक्ष ग्रंथि में रस तथा श्वेत रक्तकण रहते हैं। रसवाहिनियाँ रसग्रंथि के एक ओर से भीतर प्रविष्ट होती हैं और दूसरी ओर से बाहर निकलती हैं। रसग्रंथियों से रस के जाते समय उस के रोग-कीटाणु और रोग-विष को वहीं रोक लिया जाता है। इन ग्रंथियों में तथा प्लीहा (Spleen), गलग्रंथि (Tonsils), अस्थिमज्जा (Bone marrow) आदि स्थानों में उत्पन्न होनेवाले श्वेत रक्तकणों से रोग-जन्तुओं का संघर्ष होता है। श्वेत रक्तकण तथा रोग-जन्तुओं के बीच में ग्रंथि के भीतर जब संघर्ष जारी रहता है तब ग्रंथि सूज कर दुखने लगती है। पैरों का घाव यदि खराब हो जाता है तो उसी समय जाँघ के पास की गठान सूज कर दुखने लगती है। इसका कारण उसमें चलनेवाला रोग-जन्तु और श्वेत रक्तकणों का संघर्ष है। इस प्रकार रसग्रंथियों में तथा उदर की खोखली में रहनेवाली प्लीहा या तिल्ली ग्रंथि में शरीर-संरक्षक श्वेत रक्तकणों का निर्माण होता है और रस का शुद्धीकरण होता है। रोगों का विष और जन्तुओं का शरीर भर में संचार न होने देने और उन्हें स्थानही पर रोक कर उनका नाश करने का काम ये ग्रंथियाँ



आकृति २६ — **रसग्रन्थि का कटा हुआ भाग**

अ — ग्रन्थिकी ओर रस लानेवाली रसवाहिनियाँ (Lymphatics), ब — ग्रन्थि से रस बाहर ले जानेवाली रसवाहिनियाँ, क — रसग्रन्थि का पेशीजाल (Lymphoid tissue). ग्रन्थियों के ऊपर का आवरण गहरी काली रेखाओं से दिखलाया गया है।

२६. प्लीहा या तिल्ली (Spleen)—यह सब से बडी नलिकाविहीन ग्रन्थि (Ductless gland) है। और वह रसग्रंथियों की तरह ही श्वेतपेशियों का निर्माण करने तथा रोगजन्तुओं को रोककर उनका विनाश करने के काम में हाथ बटाती है। प्लीहा का रंग मटमैला नीला सा रहता है और इसका आकार न्यूनाधिक होता रहता है। यह जठर और स्वादुपिंड या क्लोम के बायें बाजू रहती है । यह कोमल है और आसानी से फट जाती है । इसकी लम्बाई ५ इंच और वजन ६ औंस रहता है। इसे पर्याप्त रक्त मिलता है। इसके भीतरी बाजू जो दरार (Hilum) दिखाई देती है, उससे प्लीहा की धमनी भीतर जाती है और शिरा बाहर निकलती है। श्वेततन्तु (Fibrous tissue) और कुछ स्नायुतंतुओं द्वारा बना हुआ एक आवरण (Capsule) इसपर रहता है और उससे निकलनेवाली अनेक शाखाएँ प्लीहा के इस कोमल भाग (**प्लीहामज्जा,** Spleen-pulp) में जाती है। प्लीहा के इस कोमल भाग से रक्त के श्वेत रक्तकणों का निर्माण होता रहता है और लाल रक्तकणों का नाश होता रहता है। इस तरह ये दोनों तरह के रक्तकण निर्माण होने और नष्ट होने की भिन्न २ स्थितियों में प्लीहा में पाये जाते हैं। कई स्थानों पर सफेद रक्तकणों के समूह ही रहने के कारण प्लीहा के कोमल भाग में यत्रतत्र सफेद भाग (Malpighian corpuscles) दिखाई पडते हैं। प्लीहा की शिरा की छोटी २ शाखाएँ प्लीहा में सब ओर फैली हुई दिखाई देती हैं।



आकृति २७ — **प्लीहा** (Spleen)

1 प्लीहा की शिरा (Splenic vein), २ प्लीहा की धमनी (Splenic artery), प्लीहा की दरार में (Hilum) ये दोनों रक्तवाहिनियाँ प्रविष्ट होती हैं।

प्लीहा के कार्य :—

१. अन्य रसग्रंथियों के समान प्लीहा श्वेत रक्तकण निर्माण करती है ; ये पेशियाँ लिम्फोसाइट जाति की होती हैं (आकृति १४ नं. ४ की बीचकी पेशी देखिये)।

२. लाल रक्तकणों का नाश यहीं किया जाता है। इसी लिए प्लीहा लाल रक्तकणों की श्मशान-भूमि समझी जाती है।

३. नैट्रोजन-युक्त पदार्थों (Proteins) के चयापचय के समय जो निरुपयोगी पदार्थ बनते हैं उनसे मूत्राम्ल तैयार करने के काम में प्लीहा भी भाग लेती है ।

४. रोग-जन्तुओं को रोक कर प्लीहा उनका नाश करती है। रक्तदोष के कई रोगों और विशेषतः मलेरिया में यह बढ जाती है क्योंकि उस समय रोग जन्तु और उनके विष से संघर्ष करने का वह प्रयत्न करती रहती है ।

५. प्लीहा जठर-धमनी (Artery of stomach) के रक्त का भंडार समझी जाती है। इसी लिए भोजनोपरांत दो तीन घण्टे तक इसका आकार बढा हुआ दिखाई देता है। उसके बाद अपने मूल आकार में यह आ जाती है।

६. शरीर की अन्य ग्रंथियों के समान प्लीहा में से स्रवित होनेवाले पदार्थ को बहा ले जानेवाली नलिका (Duct) नहीं है इसीसे उसे 'नलिकाविहीन ग्रंथि' कहते हैं। लेकिन प्लीहा में तैयार होनेवाले स्राव के संबंध में अभी कुछ भी जानकारी उपलब्ध नहीं हुई है।

हृदय की क्रिया (Action of the heart)

२७. हृदय अनैच्छिक स्नायुओं से बनी हुई एक खोखली इन्द्रिय है जिसमें रक्त रहता है। स्नायुओं के सिकुडने और फैलने के कारण उसकी क्रिया हमेशा एक पम्प के समान होती रहती है। रक्ताभिसरण का वर्णन करते समय बताया है कि दाहिने ग्राहककोष्ठ में आया हुआ रक्त दाहिने क्षेपककोष्ठ से फेफड़े में जाता है और वहाँ से बायें ग्राहककोष्ठ में आकर बायें क्षेपककोष्ठ में उतरता है। और रक्त की किसी खास बूंद का यों अभिसरण मार्ग रहता है यह सत्य है। पर इसका यह मतलब नहीं कि प्रत्यक्ष हृदय के आकुंचन के चालू रहते पहले दाहिना ग्राहककोष्ठ और थोडी देर बाद में बायाँ ग्राहककोष्ठ सिकुडता है। पहिले दोनों ग्राहककोष्ठ (Auricles) एक ही वक्त सिकुडते हैं जिससे निकलनेवाली आकुंचन-लहरी जब क्षेपककोष्ठ (Ventricles) तक पहुँचती है तो शीघ्र ही दोनों क्षेपककोष्ठ का भी एकदम और एक ही वक्त आकुंचन होता है। उसके बाद का बिलकुल थोडासा समय हृदय का विश्रान्तिकाल होता है। इस समय उसके स्नायु फैल जाते हैं और हृदय का खोखला भाग रक्त से भर जाता है। हृदय की आकुंचन क्रिया को **सिस्टली** (Systole) और फैलने की क्रिया को **डायस्टली** (Diastole) नाम दिये गये हैं। इस रीति से क्रमशः ग्राहककोष्ठों का आकुंचन, क्षेपककोष्ठों का आकुंचन और उसके बाद समस्त हृदय का प्रसरण बार २ होता रहता है और इस सब को **हृदय-स्पन्दन** (Heart beat) कहते हैं। माँ के गर्भाशय में बच्चा जब पांच महीने का होता है तब से उसके हृदय का स्पन्दन शुरू हो जाता है। और मृत्युपर्यन्त यह क्रिया जारी रहती है।

हृदय का स्पन्दन प्रति मिनिट ७२ के हिसाब से होता है। उसकी गति आयु, व्यायाम आदि अनेक कारणों से बदलती रहती है। सद्योजात बच्चों के हृदय की धडकन (स्पन्दन) प्रति मिनिट १४० और बूढे की ६० होती है। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की धडकन का परिमाण अधिक याने साधारणतया प्रति मिनिट ८० इतना रहता है। स्वस्थ स्थिति में हृदय की धडकन और श्वासोच्छ्वास का परिमाण साधारणतः ४ : १ रहता है।

२८. हृदय की आवाज (Sounds of the heart) — यदि मनुष्य की छाती पर कान रख कर सुनें तो हृदय की प्रत्येक धडकन के साथ एक के बाद

दूसरी आवाज हमें सुनाई देगी। उसके बाद अगली धडकन के होने के पूर्व बिलकुल थोडे समय तक कुछ भी सुनाई न देगा। पहले जो आवाज सुनाई देती है वह ग्राहककोष्ठ के स्नायु के आकुंचन तथा त्रिदल पर्दे के बन्द होने के परिणाम स्वरूप होती है। वह लम्बी और दबी होती है। दूसरी आवाज अर्धचंद्राकृति पर्दे (Semilunar valves) के एकदम बन्द होने के कारण होती है। वह बिलकुल थोडे समय तक और एकदम सुनाई देती है। ये दोनों आवाजें कुछ २ 'लब्‌बू डप्' अक्षर-समुदाय के उच्चारण के समान प्रतीत होती हैं। इस आवाज में होनेवाले फर्क से रक्तवाहिनियों और हृदय के विकारों को समझने में सहायता मिलती है।

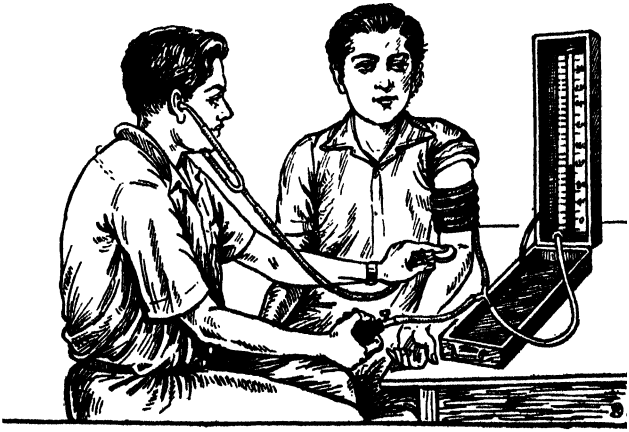
२९. **हृदय के नाडीतंतु** (Nerves of the heart)—हृदय के स्नायुओं का आकुंचन हमारी इच्छा पर अवलम्बित नहीं रहता (Involuntary) और दो प्रकार के नाडीतन्तुओं से उनका कार्य नियंत्रित किया जाता है। इन दो नाडीतन्तुओंमें से एक मस्तिष्क से निकलनेवाला दसवाँ **वेगस** (Vagus) नामक नाडीतंतु है और दूसरा अनिच्छावर्ती नाडीप्रणाली से (Sympathetic nervous system) आनेवाला नाडीतंतु हैं। इन दोनों नाडीतन्तुओं का मस्तिष्क की लम्ब-नाडी (Medulla) से सम्बन्ध है। उनकी नाडीपेशियाँ हृदय और रक्त-वाहिनियों पर नियंत्रण करती हैं इसीलिए उन्हें **अभिसरण केंद्र** कहते हैं। वेगस का कार्य हृदय के स्पन्दनों की गति नियंत्रित रखना है। इस नाडीतंतु को उत्तेजित करने पर हृदय मंद गति से चलने लगता है। अनिच्छावर्ती नाडीप्रणाली के नाडीतन्तु का कार्य सर्वथा इसके विपरीत रहता है। उसके उद्दीपन से हृदय जल्दी चलने लगता है। यदि हृदय को तेजसे दौडनेवाला घोडा कहें तो वेगस को हमें लगाम के समान गति नियंत्रित करनेवाला और अनिच्छावर्ती नाडीतन्तु को चाबुक के समान गति तेज करनेवाला कहना होगा। ऊपर के दोनों मज्जातंतु एक दूसरे के सहकार्य से काम करते हैं। जिससे हृदय के आकुंचन की एक विशिष्ट गति कायम रहती है।

३०. **नाडी या नब्ज** (Pulse)—बायें क्षेपककोष्ठ का आकुंचन होते ही पहले से ही पूर्णरूप से भरी हुई महाधमनी में और भी रक्त पहुँच जाता है। इस रक्त के कारण महाधमनी की लचीली दीवार जरा और तनकर सिकुड जाती है। जिससे रक्त आगे ढकेला जाता है। इसी प्रकार रक्तवाहिनियों की दीवार का आकुंचन-प्रसरण लहर के समान आगे ही आगे फैलता जाता है। रक्तवाहिनियों का आवरण लचीला होने के कारण हृदय के प्रत्येक आकुंचन पर महाधमनी में यह लहर उत्पन्न होती है। यह लहर रक्तवाहिनियों में से आगे फैलती जाती है तथा केशवाहिनियों के जाल तक पहुँचते २ प्रायः समाप्त हो जाती है। इस लहर का ही नाम 'नाडी' है।

कोई धमनी यदि पृष्ठ-भाग के पास हो और उसके नीचे हड्डी के समान कडा भाग हो तो उस धमनी के धक्कों का हाथ को सहज ही अनुभव हो सकता है। कलाई

के अंगूठे की ओर रेडियल नामक धमनी है। डाक्टर और वैद्य नाडी देखने में प्रायः इसीका उपयोग करते हैं। उसी प्रकार कनपटी के पास की नाडी का भी हाथ को अनुभव हो सकता है। नाडी के जरिये हृदय के आकुंचन की गति, उसका जोर तथा नियमितता आदि अनेक बातें जानी जा सकती है। केशवाहिनियों और शिराओं में नाडी का अनुभव नहीं होता क्योंकि सूक्ष्म केशवाहिनियों में से रक्त जाते समय उन्हें प्रतिरोध (Resistance) मिलने के कारण वह लहर समाप्त सी हो जाती है। यही कारण है कि कटी हुई धमनी से रक्त फव्वारे के समान उडता है और शिरा में से वह एक धार के रूप में धीरे २ बहता रहता है।

३१. रक्त-चाप (Blood pressure)—हृदय के प्रत्येक आकुंचन के समय धमनी का लचीला आवरण सब ओर तनता है। धमनी की दीवार पर रक्त के इस



आकृति २८—**रक्तचाप मापने का यंत्र**

दण्ड पर बांधी हुई रबड की थैली में पंप के द्वारा हवा भर के कितने दबाव से नीचे की रक्तवाहिनी का प्रवाह रूक जाता है वह देखा कि रक्तचाप का ज्ञान होता है।

तनाव का नाम ही **रक्त-चाप** है। यह चाप धमनी के आवरण के लचीलेपन, रक्त की घनता, रक्तप्रवाह में होनेवाला प्रतिरोध आदि अनेक बातों पर अवलम्बित रहता है। इस चाप को एक विशिष्ट यंत्र से नापा जाता है। रक्तवाहिनियों से बहनेवाला रक्त-प्रवाह कितना दबाव देने पर बन्द होता है, इसे देखने से रक्त का चाप मालूम हो जाता है। हृदय के आकुंचन के समय धमनी की दीवार पर पडनेवाले दबाव को **सिस्टलिक प्रेशर** (Systolic pressure) कहते हैं। यह वयस्क मनुष्य में लगभग 'पारे के १२० मिलीमिटर' रहता है। इसी प्रकार हृदय के फैलने के समय धमनी को दीवार पर पडनेवाले दाब को **डायस्टलिक प्रेशर** (Diastolic pressure) कहते हैं और यह

दाब लगभग 'पारे के ८० मिलीमिटर' का रहता है। इन दोनों के अन्तर को **नाडी का चाप** (Pulse pressure) कहते हैं। इससे हृदय की काम करनेवाली शक्ति का अनुमान लगाया जाता है।

प्रश्न

१. हृदय के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं? शरीर में रक्ताभिसरणक्रिया किस प्रकार होती है? विस्तार के साथ उसका वर्णन कीजिये। (बं. वि. विद्यालय, १९२७, १९३२, १९३४, १९३९, १९४१, १९४३, १९४७, एस्. एस्. सी. १९५२).

२. हृदय का कार्य क्या है? रक्त शरीर में किस तरह बहता है? विस्तार के साथ बतलाइये। (बं. वि. वि. १९३८).

३. रक्त का कार्य समझाइये। (बं. वि. वि. १९२७, १९३६, १९३७, १९४२, १९४७, एस. एस्. सी. १९५४).

४. रस के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं? (बं. वि. वि. १९३२, १९३४, एस्. एस्. सी. १९५१, १९५७).

५. बायें क्षेपककोष्ट (Ventricle) के विषय में आप क्या जानते हैं? (बं. वि. वि. १९३५).

६. रस के रासायनिक धटक (Composition of lymph) बतलाइये। रस और रक्त में क्या अन्तर है और रस का कार्य क्या है? (बं. वि. वि. १९३५).

७. रस जिन भागों का बना है, उनका बयान कीजिये। (३७, ४२, ५४).

८. रक्त का जमना (Clotting) कैसे होता है, यह समझाइये। (बं. वि. वि. १९३७, ४०, ४२, ४४, एस्. एस्. सी. १९५१, १९५७).

९. टिप्पणियाँ लिखिये :

   १ नाडी (३७, ३८, ४०, ४५).
   २ वक्षरसवाहक (१९४७, एस्. एम्. सी. १९५२, १९५३, १९५६).
   ३ वॅसोमोटर नाडीतंतु (१९३७).
   ४ रक्तचाप (Blood pressure) (१९४५).
   ५ रस का कार्य (१९३६, ४६).
   ६ श्वेतरक्तकण (White blood corpuscles) (१९५४, १९५६).
   ७ फेफडों में होनेवाला अभिसरण (Pulmonary circulation) १९५४.
   ८ यकृत में होनेवाला अभिसरण (Portal circulation) (१९५४, १९५८).
   ९ हृदय की अंतर्रचना (१९५३, १९५५, १९५६).
   १० रक्तद्रव (Plasma) (१९५५).
   ११ प्लीहा के कार्य (१९५८).

१०. हृदय का स्थान तथा बनावट बताकर उसकी क्रिया का विवरण दीजिये। (बं. वि. वि. १९४६).

११. रस (Lymph) से क्या मतलब है? उस के रासायनिक घटक तथा प्रवाह और कार्य बतलाइये। (बं. वि. वि. १९४८).

१२. धमनी, शिरा और केशवाहिनियों की रचना का तुलनात्मक दृष्टि से वर्णन कीजिये। (एस्. एस्. सी. १९५२, १९५७).

१३. रक्त के घटकों (Constituents) के नाम लिखो और उनमें से प्रत्येक का वर्णन करो। रक्त के कार्य लिखो। (१९५२, १९५६).

अध्याय तीसरा

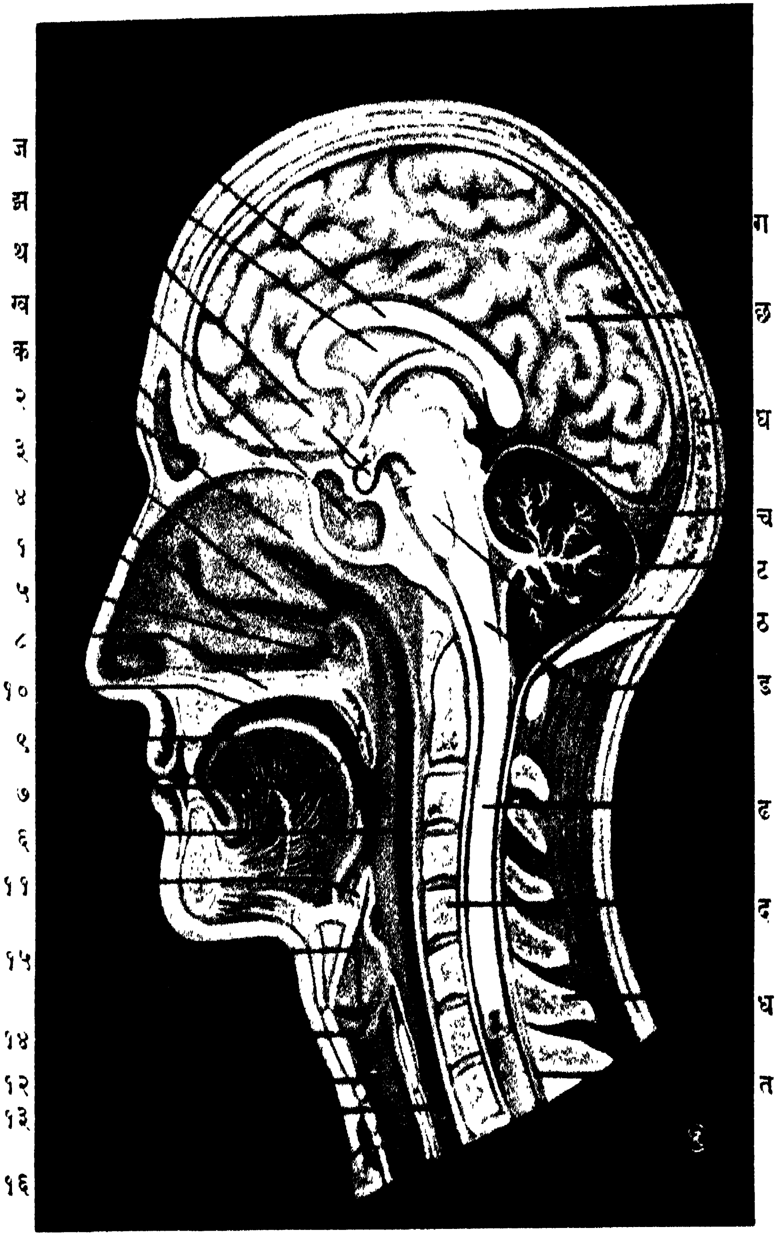
श्वास-प्रणाली (The Respiratory System)

३२. श्वासोच्छ्वास की आवश्यकता—पचनेन्द्रियों में से भोजनरस के शोषित होनेपर रक्तद्वारा वह भिन्न २ पेशीजालों को पहुँचाया जाता है। शक्ति पैदा करने और शरीर की उष्णता कायम रखने के लिए पेशी-जाल में भोजनरस का निरन्तर ज्वलन-कार्य होता रहता है। और इसी ज्वलन-क्रिया को प्राणवायु की अत्यंत आवश्यकता पडती है। कोई भी ज्वलन-क्रिया प्राणवायु के बिना नहीं हो सकती। यह प्राणवायु पेशियों को लाल रक्तकणों द्वारा प्राप्त होती है। भोजन-रस के कार्बन और हायड्रोजन से प्राणवायु का मेल होकर शक्ति और ऊष्णता का निर्माण होता है। इस ज्वलन के कारण ही कार्बन-डायॉक्साइड, पानी आदी निरुपयोगी पदार्थ तैयार होते हैं। इनसे शरीर को हानि होने का भय रहता है; इससे उन्हें फेफड़ां, मूत्रपिंड, त्वचा आदि उत्सर्जक इन्द्रियों के मार्ग से शरीर के बाहर फेंक दिया जाता है। इस क्रिया को जारी रखने के लिए शरीर में ताजा प्राणवायु का पहुँचते रहना आवश्यक होता है। क्योंकि उसके बिना पेशियों की ज्वलन-क्रिया जारी नहीं रह सकती। मनुष्य अन्नपानी के बिना कुछ दिनों तक जिन्दा रह सकता है। परंतु प्राणवायु के बिना थोडी देर तक भी जिन्दा रहना कठिन हो जायगा। फेफडों में लाल रक्तकणों द्वारा प्राणवायु का शोषण होता है तथा कार्बन-डायॉक्साइड, पानी आदि निरुपयोगी पदार्थों के बाहर निकालने की आवश्यक क्रिया होती है। इन दोनों क्रियाओं को ही हम **श्वासोच्छ्वास की क्रिया** (Respiration) कहते हैं।

आकृति २९—**मस्तक, नासिका, मुँह, श्वासनलिका, अन्ननलिका आदि में से लेकर खडा काटा हुआ भाग।**

१. नाक के छेद का अगला भाग, २ ऊपर की शंखाकृति हड्डी, ३ बीच की शंखाकृति हड्डी, ४ निचली शंखाकृति हड्डी, ५ यूस्टेशियन नलिका का मुँह, ६ गला (Pharynx), ७ कौआ (Uvula), ८ कडा तालू (Hard palate), ९ जीभ, १० मुख का पोला भाग, ११ श्वासमार्ग का पर्दा, १२ श्वासनलिका, १३ अन्ननलिका, १४ स्वरतन्तु (Vocal cords), १५ झूठे स्वरतन्तु (False vocal cords), १६ थराइड ग्रन्थि।

क कपाल की हड्डी का खोखला भाग (Frontal sinus), **ख** चमगीदडाकृति अस्थि का खोखला भाग (Sphenoidal sinus), **ग** त्वचा. **घ** खोपडी, **च** मस्तिष्क का बाहरी आवरण, **छ** बडा मस्तिष्क (Cerebrum), **ज** बडे मस्तिष्क के गोलार्ध को जोडनेवाला नाडीतन्तु, **झ** बडे मस्तिष्क का खोखला भाग (Third ventricle), **ट** छोटा मस्तिष्क, **ठ** नाडी सेतु (Pons), **ड** लम्ब नाडी (Medulla oblongata), **ढ** पृष्ठवंशरज्जु (सुषुम्ना) (Spinal cord), **त** पृष्ठवंशरज्जु के ऊपर का आवरण; यहाँ पृष्ठवंशरज्जु का ऊपरी हिस्सा काट डाला गया है, **थ** शिरस्थ पिण्ड (Pituitary gland), **द** कशेरुके (मोहरा) का अंग (काटा हुआ), **ध** कशेरुके की पिछली शाखा (काटी हुई)।



आकृति २१- मस्तक, नासिका, मुँह, श्वासनलिका आदि में से लेकर खड़ा काटा हुआ भाग।

३३. श्वास-क्रिया की इन्द्रियाँ (Respiratory organs)—श्वासप्रणाली में नासिका (Nose), गला (Pharynx), कंठ अथवा स्वरयंत्र (Larynx), श्वासनलिका (Trachea or wind-pipe), श्वासवाहिनी (Bronchi) और फेफड़े (Lungs), उसी प्रकार श्वासपटल (Diaphragm) और पसलियों के बीच के स्नायु (Inter-costal muscles) इन सबका समावेश होता है (आकृति ३३ देखिये)।

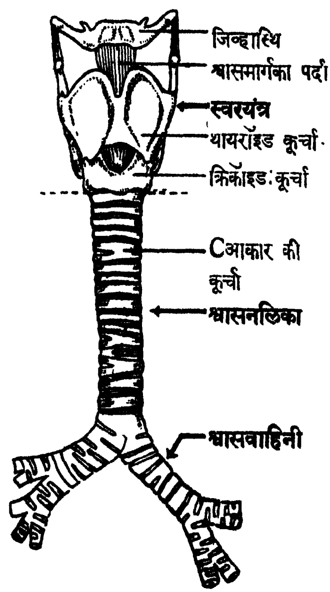
नासिका (Nose)—बाहर की शुद्ध हवा पहले नाक के छेदों में जाती है और बाद में शरीर के अन्दर जाती है। नाक की खोखली का ऊपर का हिस्सा नाक की हड्डियों से (Nasal bones) और नीचे का कूर्चा से बना हुआ होता है। हड्डी और कूर्चा के बने हुए खड़े पर्दे से नाक के खोखले भाग के दो नथुने (Nostrils) बनते हैं। इनकी भीतरी ओर अन्तस्त्वचा का आवरण (Mucous Membrane) रहता है, जिसपर '**सिलिया**' नामक अति सूक्ष्म और मृदु बाल रहते हैं। नथुनों के भीतरी बाजू जो बड़े बाल दिखलाई देते हैं, उनके कारण हवा के साथ भीतर जानेवाले धूलिकण नाकही में अटक जाते हैं। इन कणों के फेफड़ों में जाने से स्वास्थ्य-हानि की सम्भावना रहती हैं। नाक की अन्तस्त्वचा के नीचे जो अनेक रक्तवाहिनियाँ हैं उनके रक्त की ऊष्णता तथा नाक की खोखली के पीछे, ऊपर और दोनों ओरकी हड्डियों की खोखली (Sinuses) की ऊष्ण हवासे नासिका में से हवा के अंदर जाते समय वह थोडी गर्म होती है जिससे फेफड़ों के समान श्वास-प्रणाली की नाजुक इन्द्रियों को ठंड से क्षति नहीं हो पाती। इस रहस्य को न समझने के कारण छोटे बच्चे बहुत बार मुँह से ही श्वासोच्छ्वास करते रहते हैं, जिससे गले (Pharynx) और फेफड़ों में ठण्ड पहुँचने के कारण हानि की सम्भावना होती है। नाक के खोखले भाग में और बाहर की दीवार से सटी हुड्डी हुई तीन शंखाकृति टेढी हड्डियाँ (Conchae) रहती हैं। सबसे ऊपर की हड्डी की अंतस्त्वचा के नीचे गंध का ज्ञान देनेवाले नाडीतन्तु रहते हैं जिससे भीतर जानेवाली हवा स्वच्छ है या अस्वच्छ है, इसका ज्ञान शीघ्र मिलने के कारण हम दुर्गन्ध से दूर हट जाते हैं। नाक से हवा गले (Pharynx) में जाती है।

३४. गला (Pharynx)—मुँह और नासिका के पीछे रहनेवाले बड़े भाग को **गला** (Pharynx) कहते हैं। इसकी लम्बाई लगभग ४½ इंच है। भिन्न २ स्थानों में उसकी चौड़ाई कम-ज्यादा रहती है। वह नीचे की ओर श्वासनलिका से और पीछे की ओर अन्ननलिका से जुड़ी रहती है। उसके ऊपरी भाग से दोनों मध्यकर्णोंसे आनेवाली दो **यूस्टेशियन** नामक नलिकाएँ मिली रहती हैं।

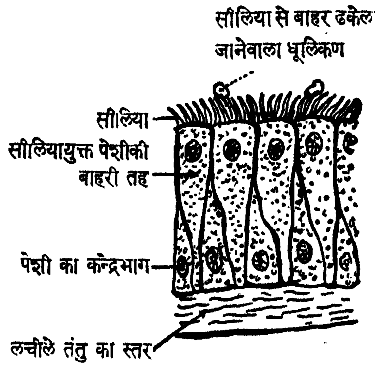
३५. कंठ या स्वरयंत्र (Larynx)—यह तिकोना खोखला गले के निचले भाग में है जिससे आवाज उत्पन्न होती हैं। गर्दन के ऊपरी और सामने के भाग में कंठ के कारण उठा हुआ भाग आसानी से दीख पडता है। इस खोखले भाग का बाजू मुख्यतः कूर्चा और स्नायुओं का बना हुआ होने के कारण उनके ऊपरी बाजू पर पत्ते के आकार का कूर्चाद्वारा बनाया गया पर्दा रहता है। इसे

श्वासमार्ग का पर्दा (Epiglottis) कहते हैं। यह पर्दा भोजन के निगलते समय स्वरयंत्र के ऊपरी द्वार को ढाँप देता है और भोज्य पदार्थ को श्वास मार्ग में नहीं जाने देता। यह पर्दा अन्य समय पर श्वासोच्छ्वास जारी रहने की अवस्था में ही खुला रहता है।

२६. श्वास-नलिका (Trachea or wind-pipe)—यह नलिका स्वरयंत्र के निचले भाग से निकल कर अन्ननलिका के (Gullet) अगले बाजू से छाती में



आकृति ३०—**स्वरयंत्र** (Larynx), **श्वासनलिका और श्वासवाहिनियाँ।** ऊपरी तिकोनी पेटी स्वरयंत्र की है।



आकृति ३१ – **श्वासनलिका की सीलिया नामक केशयुक्त भीतरी त्वचा** (सूक्ष्मदर्शकयंत्र से देखने पर)।

उतरती है। वहाँ इसकी दो शाखाएँ हो जाती हैं। जिनमें से एक दाहिने फेफड़े में और दूसरी बाएँ फेफड़े में प्रविष्ट हो जाती है। श्वासनलिका गर्दन के अगले भाग में रहती है जिसकी लम्बाई लगभग ४$\frac{1}{2}$ इंच और चौड़ाई १ इंच होती है। यह नलिका लगभग १६ से २० छल्लाकृति कूर्चा के टुकड़ों की बनी है जिनमें प्रत्येक टुकड़ा अँग्रेजी अक्षर C के आकार का रहता है। कूर्चा के ये छल्ले केवल सामने के बाजू और उसके दोनों ओर रहते है। पिछले बाजू की ओर वे अपूर्ण रहते हैं। ये परस्पर तन्तुमय और स्नायुमय पेशीजाल-समूह से बँधे हुए रहते हैं। श्वासनलिका का पिछला बाजू भी यदि कूर्चामय रहता तो उसके साथ ही

पीछे जो अन्ननलिका है उससे भोजन नीचे उतरते समय बड़ी अड़चण पैदा हो जाती। कूर्चा के छल्लों के कारण श्वासनलिका में दृढ़ता आ गई है। जिससे यह नली जरा से दबाव के कारण चिपट नहीं जाती और श्वासोच्छ्वास के लिए सदा खुली रहती है। इसके भीतरी बाजू की अंतस्त्वचा के आवरण पर '**सीलिया**' नामक सूक्ष्म केश रहते हैं; जिनकी हलचल के कारण भीतर गये हुए धूलि के कण धीरे २ गले (Pharynx) की ओर बाहर ढकेले जाते हैं। अन्तस्त्वचा के नीचे बारीक २ पिण्ड रहते हैं। जिनसे स्रवण (बहने) होनेवाले द्रव (तरलपदार्थ) के कारण वह (अन्तस्त्वचा) तर रहती है।

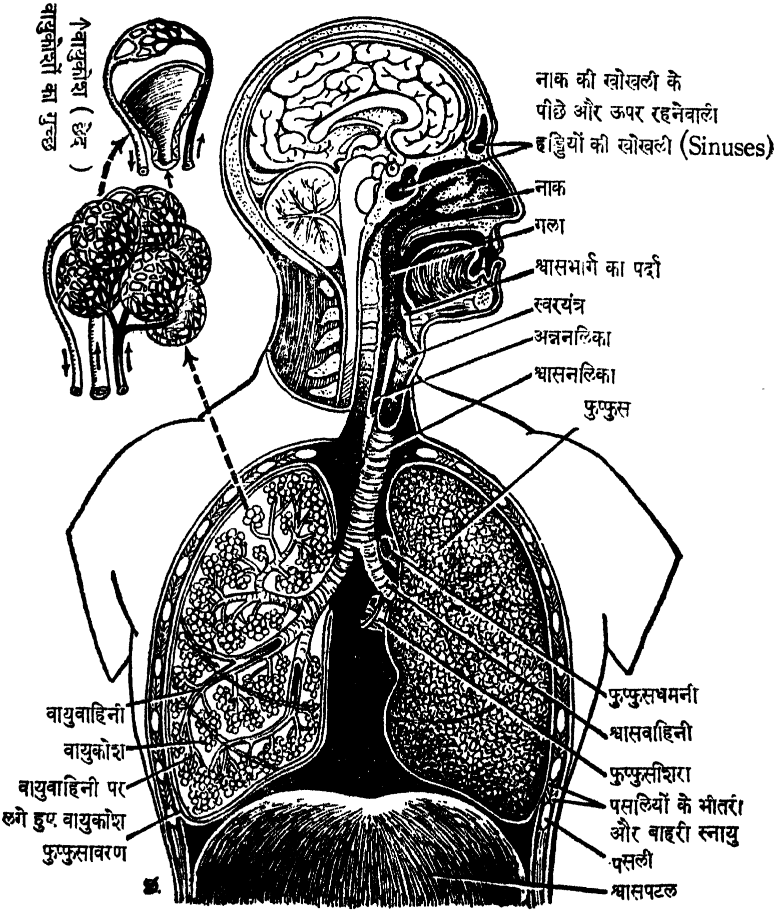


आकृति ३२ – **श्वासवाहिनी में से लिया गया आडा काटा हुआ भाग** (सूक्ष्मदर्शकयंत्र से देखने पर)

३७. श्वासवाहिनियाँ (Bronchi)—श्वासनलिका के दो भाग होते हैं; एक नलिका दाहिने और दूसरी बायें फेफड़े में प्रविष्ट होती है। वे फेफड़ों में अनेक शाखाओं और उपशाखाओं में फैल जाती हैं। इन शाखाओं को श्वास-वाहिनियाँ (Bronchi) और उपशाखाओं को वायु-वाहिनियाँ (Bronchioles) कहते हैं। प्रत्येक श्वास-वाहिनी की रचना साधारणतः श्वासनलिका के समान ही रहती है। परन्तु इनकी कूर्चाएँ C आकार की न होकर पूर्ण वलयाकृति बनी होती हैं और उनकी निचली तह पर वर्तुलाकृति स्नायुओं का एक स्तर रहता है। श्वासवाहिनियाँ शाखाउपशाखाओं में बढ़ते २ अन्त में अत्यन्त सूक्ष्म हो जाती हैं और उनमें कूर्चा का भाग प्रायः नहीं रह जाता। इन अत्यन्त सूक्ष्म श्वासवाहिनियों के छोरो पर गोल आकार की और पतले आवरण से बनी हुई वायु की थैलियाँ रहती हैं जिन्हें **वायुकोश** कहते हैं।

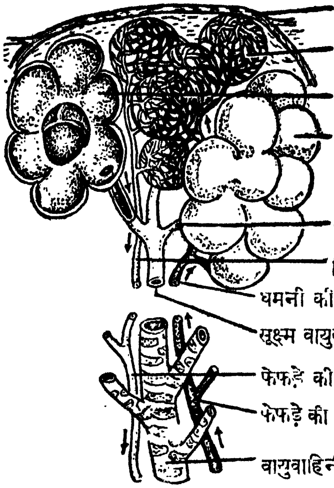
३८. फेफड़े (Lungs)—हृदय के दोनों ओर छाती के खोखले भाग का बहुतसा भाग फेफड़ों से व्याप्त है। फेफड़े स्पँज के समान भीतर से छिद्रमय हैं, स्थिति-स्थापक हैं और उनका रंग धूसर रहता है। प्रत्येक फेफड़े पर **फुप्फुसावरण** या **प्ल्यूरा** (Pleura) नामक दो पल्लेवाली थैली का आवरण रहता है। जिसका एक पल्ला फेफड़ों से लगा रहता है और दूसरा पहले से ही संलग्न छाती के खोखले भाग में आच्छादित रहता है। इन दोनों पल्लों में बिलकुल थोडा लसलसा द्रव पदार्थ रहता है। उसकी सहायता से श्वासोच्छ्वास के समय फेफड़े छाती की दीवार पर बिना घर्षण के फिसल

यह आप को मालूम ही है कि प्रत्येक फेफड़े के भीतरी ओर एक २ श्वासवाहिनी (Bronchus) गई है। श्वासवाहिनियों के साथ ही फेफड़ों की रक्त-वाहिनियाँ और नाडीतन्तु भीतर जाते हैं। और इस भाग को **फेफड़ों का मूल** कहते हैं। दाहिने फेफड़े के तीन भाग हैं और बायें के केवल दो। प्रत्येक भाग के छोटे २ कई भाग



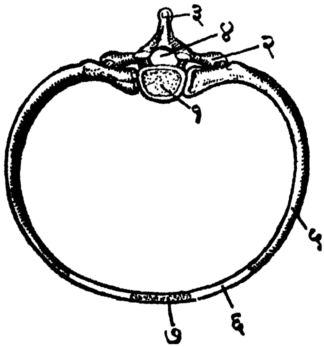
आकृति २६ — श्वसनेंद्रियाँ

श्वसनेंद्रियाँ — आकृति में बायाँ फेफड़ा वैसा ही दिखा कर दायें फेफड़े में श्वासवाहिनीयों की शाखा तथा वायुकोश दिखाने के लिए फेफड़े का लम्बा छेद लिया है। फफड़े पर प्ल्यूरा है। उसपर छाती की दीवार के स्नायु हैं। बाईं ओर कोने में एक वायुकोश (छेद लिया हुआ) बताकर उसपर केश-वाहिनियों का जाल फैला है। उसके नीचे वायुकोशों का गुच्छा है। उसपर भी केशवाहिनियाँ फैली हैं। वायुकोशों से हवा के अंदर जाने की दिशा तथा अशुद्ध और शुद्ध रक्त के केशवाहिनी से बहने की दिशा तीर से बतलायी है।



आकृति ३४—**वायुकोश - इसके तीन गुच्छे दिखाई देते हैं।**

बन गये हैं और प्रत्येक भाग में एक वायुवाहिनी गई है। सूक्ष्मदर्शकयंत्र से यदि फेफड़ों का सूक्ष्म कटा भाग देखें तो ऐसा मालूम होगा कि जैसे एक डंठल में अनेक अंकुरों का गुच्छा लगा रहता है वैसेही एक सूक्ष्म वायुवाहिनी पर दस बीस वायु की थैलियाँ अथवा **वायुकोश** लगे हुए रहते हैं। वायुकोशों के इर्दगिर्द स्थितिस्थापक तंतुओं के होने के कारण वे हवा के कम ज्यादा दबाव से छोटे बडे हो सकते हैं। सूक्ष्म वायुवाहिनी से हवा फेफड़ों के भीतर जाती है जिससे सब सूक्ष्म वायुकोश हवा से फूल जाते हैं। प्रत्येक वायुकोश अत्यन्त पतले आवरण का बना रहता है। उससे सटा हुआ ही फेफड़ों की धमनी की केशवाहिनियों का जाल लगा हुआ है। इन केशवाहिनियों से अशुद्ध रक्त बहता रहता है। फेफड़ों की रचना इतनी पेंचीली होने का कारण यह है कि रक्त और श्वास में वायुओं का आदान-प्रदान होने के लिए बहुत बडे क्षेत्र (Area) को एक छोटे अवयव में निर्मित कर दिया गया है।



आकृति ३५—**दो पसलियों की कशेरुके के साथ होनेवाली संधि।**

१ कशेरुके का शरीर (Body). २ आडा प्रवर्धन (Transverse process). ३ पिछला प्रवर्धन (Spinous process). ४ मज्जारज्जू के लिए खोखली. ५ पसली. ६ कूर्चा. ७ छाती की हड्डी (Sternum).

३९. वक्षस्थल या छाती का पिंजरा (आकृति १५ और ६७ देखिये)

पीछे की ओर छाती के बारह कशेरुके, कशेरुकोंके और जुडी हुई बारह पसलियों और आगेकी ओर छाती की हड्डी (Breast bone) इन सबों में छाती का पक्का पिंजरा बना हुआ है। पसलियाँ छाती की हड्डी के साथ कूर्चाओंसे (Cartilage) जुडी हुई होने से यह पिंजरा लचीला हो गया है, इस कारण से श्वासोच्छ्वास के लिए उसकी खोखली स्नायुओं के आकुंचन प्रसरण से छोटी या बडी बन सकती है। कशेरुके से छाती की हड्डीके साथ जुड़ी हुअी पसलियाँ क्षितिज समांतरित न होकर आगे की ओर नीचे झुकी हुअी होती है। हर दो पसलियों में स्नायु (Intercostal muscle) होते हैं जिनके आकुंचन प्रसरण से पसलियाँ जरासी नीचे ऊपर हो सकती हैं। छाती की तह में श्वासपटल नाम का गुंबज के आकार का स्नायु होता है। उसके कारण छाती की और उदर की खोखली एक दूसरी से पूर्णतया विभक्त हुअी है। साथ ही श्वासपटल के आकुंचन से छाती की खोखली बड़ी बन सकती है।

४०. रक्त का शुद्धीकरण — कोई भी दो वायुएँ – जैसे कार्बन-डायॉक्साइड और ऑक्सिजन – यदि एक दूसरे के नजदीक आ जायें या उनके बीच में एक झीना पर्दा ही रहे तो थोडी ही देर में ये वायुएँ एक दूसरे से मिल जाएँगी। इनकी इस मिश्रणक्रिया को **व्यतिकरण** (Diffusion) कहते हैं। शुद्ध हवा श्वास-मार्ग से फेफड़ों के भीतर जब जाती है तब उनके प्रत्येक वायुकोश में हवा के साथ ऑक्सिजन भर जाती है। उसी प्रकार वायुकोशों से सटा हुवा जो केशवाहिनियों का जाल रहता है उसमें बहनेवाले अशुद्ध रक्त में कार्बन-डायॉक्साइड, पानी आदि पदार्थ रहते हैं। वायुकोश और केशवाहिनियों के आवरण इतने पतले रहते हैं कि वायुकोश के ऑक्सिजन और केशवाहिनियों के कार्बन-डायॉक्साइड में व्यतिकरण होकर उनमें आसानी से आदान-प्रदान हो जाता है याने वायुकोश की ऑक्सिजन केशवाहिनियों में जाती है और उनकी कार्बन-डायॉक्साइड वायु और पानी की भाफ वायुकोशों में जाती है। लाल रक्तकण में **हिमोग्लोबिन** नामक पदार्थ रहता है। जिस प्रकार लोहचुम्बक में लोहे के टुकड़े को खींचने की शक्ति रहती है उसी प्रकार हिमोग्लोबिन में ऑक्सिजन को अपनी ओर खींचने की शक्ति रहती है। वायुकोश की ऑक्सिजन रक्त में जैसे ही पहुँचती है वैसे ही उसका हिमोग्लोबिन से सम्पर्क होने के कारण उससे **ऑक्सि-हिमोग्लोबिन** नामक लाल पदार्थ तैयार होता है तथा कार्बन-डायॉक्साइड, पानी आदि रक्त के अशुद्ध पदार्थ वायुकोश में जाकर वहाँ से उच्छ्वास के साथ शरीर के बाहर निकल जाते हैं। जिससे रक्त का रंग बदलता है और बदल कर लाल हो जाता है। इस रीति से हवा की ऑक्सिजन रक्त में ग्रहण की जाती है और रक्त के कार्बन-डायॉक्साइड, पानी आदि अशुद्ध पदार्थ शरीर के बाहर फेंके जाते हैं। इसी क्रिया को **रक्त का शुद्धीकरण** कहते हैं। श्वासोच्छ्वास के कारण ही यह क्रिया सम्भव होती है।

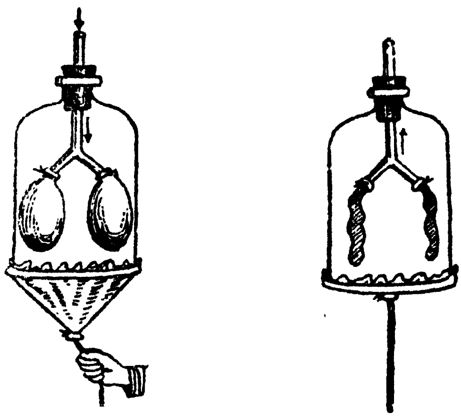
४१. साँस के भीतर ली गई और साँस के साथ बाहर छोडी गई हवा में अन्तर—

हवा के घटक	साँस के साथ भीतर ली गई हवा (१०० भाग)	साँस के साथ बाहर छोडी गई हवा (१०० भाग)
नायट्रोजन	७९.०	७९.०
ऑक्सिजन	२०.९६	१६.५
कार्बन-डायॉक्साइड	०.०४	४.५
पानी की भाफ	अनिश्चित	अधिक से अधिक
अन्य दूषित वायु	बिलकुल नहीं	रहती है।

ऊपर दी हुई तालिका से यह स्पष्ट हो जाता है कि नायट्रोजन का परिमाण दोनों में समान रहता है। शुद्ध हवा की अपेक्षा अशुद्ध हवा में ऑक्सिजन का परिमाण ४.५% कम रहता है। परन्तु उतने ही परिमाण में कार्बन-डायॉक्साइड वायु अधिक रहती है। चुने की जरासी डली (Lime water) लेकर यदि उसे एक काँच की नली से थोड़े समय तक फूकें तो उच्छ्वास की कार्बन-डायॉक्साइड वायु के मिल जाने से कॅल्शियम कार्बोनेट नामक पदार्थ बन जाता है और चूंकि इसका रंग सफेद है इसलिए चूने की डली भी दूध के समान सफेद दिखाई देती है। इसी प्रकार उच्छ्वास में पानी की भाफ बहुत अधिक परिमाण में रहती है। यह बात जाड़े के दिनों में हम सहज ही अनुभव कर सकते हैं। मुँह से हवा बाहर छोडने के साथ ही उसकी भाफ ठंड से घनीभूत होकर शीघ्र ही दिखलाई देती है। कार्बन-डायॉक्साइड और पानी की भाफ के अलावा बाहर छोडी जानेवाली हवा में अन्य कुछ दूषित वायुएँ होती हैं और शरीर की उष्णता की वजह से हवा की उष्णता भी अधिक रहती है। इस तरह फेफड़े एक उत्सर्जक इंद्रिय है और फेफड़ों के मार्ग से कुछ उष्णता बाहर जाने के कारण शरीर का तापमान नियमित रहने में सहायता मिलती है।

४२. श्वासोच्छ्वास की क्रिया (Mechanism of respiration)—जब हम साँस भीतर लेते हैं तब वह नासिका, गला (Pharynx), श्वासनलिका और श्वासवाहिनी के मार्ग से वायुकोशों में प्रविष्ट होती है। वायुकोशों के ऊपर केशवाहिनियों के जाल रहते हैं और व्यतिकरणक्रिया (Diffusion) के कारण उसमें रहनेवाली ऑक्सिजन वायु केशवाहिनियों में जाती है और केशवाहिनियों की कॉर्बन-डायॉक्साइड वायु वायुकोश में आ जाती है। ऑक्सिजन के एक बार केशवाहिनियों द्वारा ग्रहण कर लेने के बाद रक्त की लाल पेशियों से वह विभिन्न विभागों में ज्वलन क्रिया के लिए पहुँचायी जाती है इसलिए हर बार नई ऑक्जिन वायु का उनमें पहुँचना आवश्यक है और यह तभी सम्भव है जब हम श्वास भीतर लें। इसी प्रकार कार्बन-डायॉक्साइड के समान निरुपयोगी पदार्थों का शरीर के बाहर निकालना आवश्यक है और यह काम श्वास

को बाहर निकालने से पूरा हो जाता है याने जब हम श्वास बाहर छोड़ते हैं तब उसके साथ शरीर के बहुत से निरुपयोगी पदार्थ बाहर निकल जाते हैं । श्वास भीतर लेने (Inspiration) और श्वास बाहर छोड़ने की क्रिया (Expiration) का ही नाम **श्वासोच्छ्वास** (Respiration) है ।



श्वास की क्रिया उच्छ्वास की क्रिया

आकृति ३६ — **श्वासोच्छ्वास की क्रिया कैसे होती है ।**

श्वासोच्छ्वास की क्रिया कैसे होती है यह जानने के लिए अब हम एक प्रयोग करके देखें ।

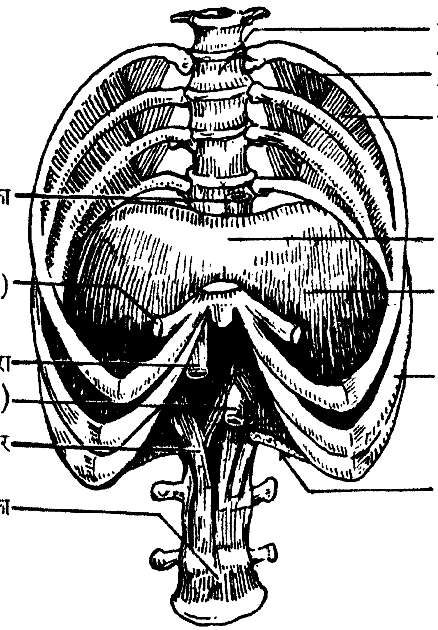
आकृति ३६ में बतलाये हुए अनुसार काँच की एक हाँडी लेकर उसके मुँह में डट्टा लगा दो । Y इस आकार की दो शाखावाली एक काँच की नलिका लेकर (आकृति देखिये) उसका सिरा डट्टेमें किये छेद में से ऊपर निकालिये और जहाँ से सिरा बाहर आया वहाँ से हाँडी में हवा न जाय इस लिए नलिका के चारों ओर मोम लगाइये। काँच की दोनों शाखाओं में पतले रबड़का एक २ गुब्बारा डोरीसे पक्का बांधिये। हाँडीके निचलेवाले बड़े मुँह पर रबड़ का टुकडा पक्का बांधिये और उसके बीचके भाग में एक मजबूत दोरा बंधा हुआ रहने दीजिये ।

अब रबड़ के टुकडे पर बांधा हुआ डोरा एकदम नीचे खींचिए ; क्या दिखाई देता है ? अंदर के रबड़ के दोनों गुब्बारे एकदम फूल गये । यह ऐसा क्यों हुआ ? क्योंकि रबड़ के टुकडे नीचे खींचे जाने के कारण हाँडी की हवावाली खोखली थोडीसी बडी हुई, वहाँ की हवा पतली हुई ; उसका दबाव गुब्बारे के अंदर की हवाकी अपेक्षा कम हुआ ; बाहर की हवा काँच की नलिकाके द्वारा गुब्बारे में घुसी और साथ साथ गुब्बारा एकदम उठा। श्वास लेते समय छाती की खोखली इसी तरह बनती है, गुब्बारों की तरह फेफड़े बड़े बन जाते हैं और बाहर की हवा फेफड़ों में घुसती है

अब रबड़ के टुकड़े में बांधा हुआ डोरा नीचे खींचना बंद कर दीजिये। रबड़ का आकार पहले के जैसा सपाट होता है। उससे हँडी की हवा की तरलता कम हो जाती है, उसका दबाव गुब्बारों पर पडता है। इस समय गुब्बारा छोटा २ होता जाता है। उसकी हवा बाहर निकल जाती है। उच्छ्वास के समय इसी तरह हवा फेफड़ों से बाहर निकल जाती है।

श्वासोच्छ्वास की क्रिया हमारे शरीर में कैसे होती है यह प्रयोग से आप के ध्यान आ जाएगा।

४३. श्वास लेना (Inspiration)—वक्षस्थल का खोखला भाग उसके नीचे रहनेवाले श्वासपटल (Diaphragm) द्वारा उदर-गह्वर से पूर्णतया विभक्त है। अतः वह एक बन्द पेटी के समान है। पेटी में फेफड़े हैं, जिनका

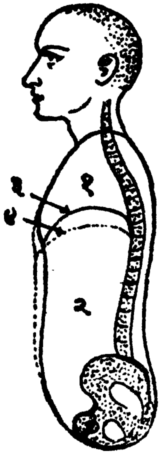


आकृति १७—**श्वासपटल** (Diaphragm)
और पसलियों के बीच स्नायु।

ऊपर के स्नायु दिखाई दें इसलिए पसलियों के अगले हिस्से काटे हुए बताये हैं।

बाह्य वातावरण से सम्बन्ध केवल श्वासनलिका और गले के मार्ग से आता है। फेफड़ों के स्पँज के समान खोखले होने और उनका स्थितिस्थापकत्व (Elasticity) **का गुणधर्म**

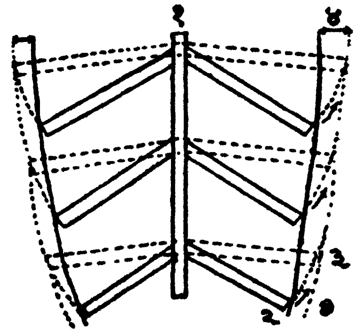
(स्वभाव) होने के कारण जब छाती के खोखले भाग का आकार लुहार की भाती के समान बढ़ जाता है तब उसके अन्दर रहनेवाले फेफड़ों का आकार भी बढ़ जाता है; जिससे (ऊपर के प्रयोग में गुब्बारों में जैसे हवा घुसी वैसे) बाहर की हवा फेफड़ों में प्रविष्ट हो जाती है। श्वास भीतर लेते समय भिन्न २ स्नायुओं के उपयोग से हमारी छाती की वृद्धि सीधी-आडी, आगे, पीछे तीन दिशाओं में होती है।



आकृति ३८

श्वासपटल की क्रिया

१ छाती की और २ उदर की खोखली. ३ प्रसरित श्वासपटल. ४ आकुंचित श्वासपटल.



आकृति ३९—**पसलियों के स्नायुओं की क्रिया**

१ छाती की हड्डी. २ श्वास छोडने पर पसली की अवस्था. ३ श्वास लेने पर पसली की अवस्था. ४ श्वास लेने के पश्चात् छाती की चौडाई के अंतर।

उदर-गह्वर (Abdominal cavity) और छाती वक्षस्थल को विभाजित करनेवाला **श्वासपटल** (Diaphragm) नामक एक चिपटा स्नायु है जिसका ऊपर का भाग मेहराब के समान होता है (आकृति ३७ देखिये)। वह सब ओर से पसलियों से जुडा रहता है। इस स्नायु के आकुंचन से मेहराबदार बीच का भाग नीचे की ओर खिंच जाता है जिससे वक्षस्थल के खोखले भाग की खडी लम्बाई (Vertical diameter) बढ़ जाती है। श्वासपटल-स्नायु के आकुंचन होने से उसका मध्य भाग जब नीचे जाने लगता है तो उसी समय छाती की हड्डी का निचला भाग आगे ढकेला जाता है जिससे वक्षस्थल का खोखला भाग आगे से पीछे की ओर फैल जाता है। छाती की प्रत्येक दो पसलियों के बीच में बाहर की ओर स्नायु (Intercostal muscles) रहते हैं। छाती की पसलियाँ ऊपर से नीचे की ओर किंचित झुकती हुई जाती हैं। और प्रत्येक दो पसलियों के बीच में रहनेवाले स्नायुओं का आकुंचन होते ही ये पसलियाँ ऊपर उठ जाती हैं; जिससे आकृति नं. ३९ में दिखलाये अनुसार छाती का खोखला भाग आडे बाजू से (Side to side) और पीछे से आगे बढ़ जाता है। इस रीति से छाती का खोखला भाग तीनों ओर से फैलता है और इसके इस

फैलाव को भरने के लिए फेफड़े भी अपने स्थितिस्थापकत्व गुण के कारण स्वयं फैलते हैं। इसे हम श्वास लेने की क्रिया कहते हैं। जोर से श्वास भीतर लेते समय या खाँसने-छींकने के समान क्रियाओं को करते समय ऊपर वर्णन किये हुए स्नायु के अतिरिक्त अन्य स्नायुओं को भी कार्य करना पडता है।

४४. उच्छ्वास (Expiration)— उच्छ्वास का अर्थ श्वास बाहर फेंकना है; जो श्वास भीतर लेने की क्रिया से सर्वथा विपरीत क्रिया है। श्वासपटल का स्नायु शिथिल होकर मेहराब की तरह पूर्ववत् आकार धारण कर लेता है। छाती की हड्डी और पसलियाँ भी अपनी असली हालत में आ जाती हैं। इस तरह छाती का खोखला भाग सब तरफ से छोटा हो जाता है। इसलिए साँस लेते समय फूले हुए फेफड़े स्थितिस्थापकत्व गुण के कारण अपने पूर्व आकार को धारण कर लेते हैं, जिससे उनमें (फेफड़ों) रहनेवाली हवा बाहर फेंकी जाती है – निकल जाती है। मामूली हालत में उच्छ्वास में किसी भी स्नायु पर तनाव नहीं आता परंतु जोर से श्वास छोड़ते समय कुछ स्नायुओं को काम करना पडता है। छाती की प्रत्येक दो पसलियों में भीतरी बाजू जो स्नायु हैं उनके आकुंचन से निचली पसलियाँ भीतर खींची जाती हैं जिससे छाती का खोखला भाग आगे से पीछे की ओर सिकुडता है। इसी प्रकार उदर-गह्वर की अगली दीवार के स्नायु आकुंचित होकर उदर-गह्वर की इंद्रियों पर दबाव डालते हैं। जिससे श्वासपटल ऊपर की ओर कुछ अधिक ढकेला जाता है। परिणामतः छाती का खोखला भाग और छोटा बन जाता है। बोलने, गाने के समान ऐच्छिक क्रियाओं या छींकने के समान अनैच्छिक क्रियाओं के सम्पन्न होने के लिए ऊपर कहे अनुसार अन्य स्नायुओं को काम करना पडता है क्योंकि फेफड़ों का केवल स्थितिस्थापकत्व गुणधर्म हवा बाहर फेंकने के लिये इस समय पर्याप्त नहीं होता।

प्रत्येक श्वासोच्छ्वास की श्वास (Inspiration), उच्छ्वास (Expiration) और लय अथवा अत्यंत थोडी विश्रान्ति की अवधि – ये तीन अवस्थाएँ होती हैं। ये अवस्थाएँ निश्चित क्रम से और नियमित रूप से प्रति मिनट १६ से १८ बार होती रहती है। मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्युपर्यंत श्वास की क्रिया सदा जारी रहती है। श्वासोच्छ्वास और नब्ज का अनुपात साधारणतया निश्चित याने १ : ४ ऐसा होता है। मुख्य नाड़ीप्रणाली में (Central nervous system) लम्बनाडी (Medulla) के बीच में **श्वास-केन्द्र** (Respiratory centre) नामक जो एक विशिष्ट नाडी-पेशी-समूह है, वह श्वासोच्छ्वास-क्रिया का नियंत्रण करता है। शरीर के इस भाग पर जब घातक आघात पहुँचता है तो मनुष्य की तत्काल मृत्यु हो जाती है। इस केन्द्र से रवाना होनेवाले संदेश सब से पहले पृष्ठवंशरज्जु की ओर जाते हैं। वहाँ से नाडीतंतुओं के जरिये श्वासपटल और श्वासोच्छ्वास के अन्य स्नायुओं की ओर पहुँचाये जाते हैं। श्वासोच्छ्वास करते समय छोटे बच्चे श्वास-पटल का अधिक उपयोग करते हैं। इसी लिए उनके पेट विशेष रूप से हिलते हुए दिखाई देते हैं। स्त्रियाँ पसली के स्नायुओं का विशेष उपयोग करती हैं और पुरुष इन दोनों स्नायुओं को काम में लाते हैं।

फेफड़ों में श्वासोच्छ्वास के कारण वायु का आदान-प्रदान (Exchange of gases) होता है। शरीर के भिन्न २ पेशीजालों में भी वायु का आदान-प्रदान होता है। फेफड़ों के लाल रक्तकण में हिमोग्लोबिन के साथ संयोग होने के कारण ऑक्सि-हिमोग्लोबिन नामक पदार्थ तैयार होता है। रक्ताभिसरण के कारण रक्त शरीर के भिन्न २ भागों की केशवाहिनियों में जाता है; जहाँ ऑक्सि-हिमोग्लोबिन की ऑक्सिजन पृथक् हो जाती है और केशवाहिनियों में से झरनेवाले रस के साथ वह पेशीजालसमूह को पहुँचायी जाती है। वहाँ ऑक्सिजन और अन्नरस का संयोग होकर ज्वलन होता है, इससे पेशीजाल में उत्पन्न होनेवाली कार्बन-डायॉक्साइड लौट कर रक्त में मिलती है। इस तरह पेशीजाल में वायु का जो यह आदान-प्रदान होता रहता है, उसे **पेशीजाल का श्वसन** (Tissue respiration) कहते हैं।

४५. साँस भीतर लेते समय और बाहर छोड़ते समय भीतर जानेवाली और बाहर आनेवाली विशिष्ट हवा का नामकरण किया गया है। वह इस प्रकार है।

नित्य श्वसित हवा (Tidal air)—मामूली श्वास के समय, भीतर ग्रहण की गई और बाहर छोड़ी गई हवा; यह लगभग ३० घन इंच है।

दीर्घ श्वसित हवा (Complemental air)—मामूली श्वास लेकर बाद में जोर से श्वास लेने पर जो हवा अंदर जाती है वह लगभग १०० घन इंच रहती है।

दीर्घोच्छ्वसित हवा (Supplemental air)—मामूली श्वास छोड़ने के बाद पुनः जोर से श्वास छोड़ने में जो हवा बाहर जाती है वह लगभग १०० घन इंच रहती है।

अवशिष्ट हवा (Residual air)—जोर से श्वास छोड़ने पर भी फेफड़ों में जो हवा बची रहती है, वह १०० घन इंच रहती है।

स्थिर हवा (Stationary air)—मामूली श्वास छोड़ने के बाद फेफड़ों में रहनेवाली हवा लगभग २०० घन इंच रहती है।

४६. सारांश—

शरीर में उष्णता उत्पन्न करने के लिए कर्बोज (Carbohydrates) और स्निग्ध पदार्थों (Fats) का ज्वलन होता रहता है। उसके लिए आवश्यक ऑक्सिजन रक्त में ग्रहण करने और कार्बन-डायॉक्साइड आदि निरुपयोगी पदार्थ बाहर फेंकने के लिए श्वास भीतर लेने और बाहर फेंकने की क्रिया आवश्यक है। इन दोनों क्रियाओं का सम्मिलित नाम श्वासोच्छ्वास है।

श्वासोच्छ्वास की इंद्रियाँ—

नाक—इसके दोनों नथुने, अस्थि और कूर्चा के दो पर्दों से बने हुए हैं। भीतरी अन्तस्त्वचा पर सूक्ष्म "सीलिया" हैं। नाक के बालों में धूलिकण अटक जाते हैं। भीतर जानेवाली हवा गर्म होती है। नाक के ऊपरी भाग में घ्राण के नाडीतन्तु हैं।

गला (Pharynx)—नाक और मुँह के पीछे का खोखला भाग । लम्बाई ४॥ इंच । मध्य कर्ण से आनेवाली यूस्टेशियन नली यहाँ खुलती है । निचले बाजू में अन्ननलिका और श्वासनलिका जुडी हुई है ।

श्वासनलिका (Trachea)—फेफडों की ओर हवा ले जानेवाली श्वासनलिका । इसकी लम्बाई ४॥ इंच ओर चौडाई १ इंच रहती है । १६ से २० C आकार के कूर्चावलय (छल्ले), स्नायु और श्वेततन्तुओं से बँधे हुए हैं, जिससे यह नली श्वास के लिए सदा खुली रहती है । पीछे की ओर अन्ननलिका में भोजन निगलने में कष्ट न हो इसलिए वहाँ कूर्चा नहीं है । भीतरी बाजू सीलियायुक्त अन्तस्त्वचा और उसके बाहर श्लेष्मा स्रवण करनेवाली ग्रंथियाँ रहती हैं ।

श्वासवाहिनियाँ (Bronchi) और **वायु-वाहिनियाँ** (Bronchioles)—इनकी रचना श्वासनलिका के समान ही होती है । पर उनकी कूर्चा मण्डलाकार होती है और उनके नीचे गोलाकार स्नायु का छल्ला रहता है ।

फेफडे या फुप्फुस—दो होते हैं । प्रत्येक पर दुपड़ी थैली (Pleura) रहती है; जिनमें थोडा लसलसा द्रव (Pleural fluid) रहने के कारण फेफडों की हलचल में घर्षण नहीं होता । दायें फेफडे के तीन और बायें के दो भाग होते हैं । सूक्ष्म वायुवाहिनियों के छोर में वायुकोश की अनेक थैलियाँ रहती हैं जिनपर फेफडों की धमनी की केशवाहिनियों का जाल रहता है । इन दोनों के आवरण अत्यन्त झीने होने के कारण वायुकोशों की ऑक्सिजन रक्त में जाकर लाल रक्तकण के हिमोग्लोबिन से मिल जाती है और कार्बन-डायॉक्साइड पानी आदि रक्त के निरुपयोगी पदार्थ वायुकोश में आकर फेफडों के मार्ग से बाहर निकल जाते हैं । ये दोनों क्रियाएँ श्वासोच्छ्वास से होती रहती हैं ।

श्वास लेते समय श्वासपटल स्नायु सिकुड कर नीचे जाता है और उसीके साथ छाती की हड्डी आगे ढकेली जाती है । पसलियों के स्नायु पसलियों को ऊपर उठा कर छाती के आडे घेर को बढाते हैं । इस रीति से छाती तीनों ओरसे फूलती है और साथ ही फेफडे भी फूलते हैं जिससे हवा भीतर घुस जाती है ।

श्वास छोडते समय श्वासपटल स्नायुओं को आकुंचित होने का काम नहीं करना पडता । श्वासपटल और पसलियाँ अपनी पूर्वस्थिति में आ जाती हैं और स्थितिस्थापकत्व के कारण फेफडे भी सिकुडते हैं जिससे उनके भीतर की हवा बाहर फेंकी जाती है ।

यह क्रिया विशिष्ट स्नायुओं के कारण पूरी होती है । मस्तिष्क की लम्बनाडी में रहनेवाले श्वसन-केन्द्र के नाडीतन्तुओं द्वारा उनपर नियंत्रण किया जाता है । भिन्न २ पेशी में ऊपर वर्णन की गई क्रिया के विरुद्ध क्रिया होती है । रक्त में रहनेवाली ऑक्सिजन उन्हें प्रदान की जाती है जिसके ऐवज में कार्बन-डायॉक्साइड, पानी आदि निरुपयोगी पदार्थ रक्त में ग्रहण कर लिये जाते हैं । आदान-प्रदान के इस कार्य को पेशीजाल में होनेवाली श्वसनक्रिया कहते हैं ।

प्रश्न

१. फेफडे और श्वास-नलिका का वर्णन कर श्वासोच्छ्वास के कार्य बतलाइये । (बं. वि. वि. १९३१, १९४९).

२. श्वासोच्छ्वास की कौनसी इन्द्रियाँ हैं ? श्वासोच्छ्वास की हमें क्यों आवश्यकता पडती है ? (बं. वि. वि. १९३३, १९४०, १९४२).

३. फेफडों का क्या कार्य है ? (बं. वि. वि. १९२७, १९३६).

४. फेफडों और श्वासनलिका का वर्णन कर उनके कार्य बतलाइये। (बं. वि. वि. १९२९, १९३९, एस्. एस्. सी. १९५२).

५. श्वासनलिका के विषय में आप क्या जानते हैं, बतलाइये। (बं. वि. वि. १९३४, १९३६, एस्. एस्. सी. १९५३, १९५४, १९५६, १९५८).

६. श्वासोच्छ्वास के बारे में आप क्या जानते हैं? (बं. वि. वि. १९३४).

७. वक्षस्थल के खोखले भाग के समस्त बाजुओं की दीवार का वर्णन कर यह बतलाइये कि इस में कौन कौनसी इंद्रियाँ हैं? इस खोखले भाग में भिन्न २ इन्द्रियाँ किस किस स्थान पर हैं? स्थान की दृष्टि से उनका परस्पर क्या सम्बन्ध है? (१९३६).

८. जब रक्त फेफडों में से जाता है तब उसमें क्या परिवर्तन होते हैं? (१९३९, १९४२, एस्. एस्. सी. १९५३, मार्च, अक्तूबर १९५५, १९५६, १९५७).

९. टिप्पणियाँ लिखिये :—१. वायुवाहिनी (१९३७), २. फेफडे (१९४१, १९४३, १९५५), ३. श्वासपटल (१९४१, १९५५, १९५६).

१०. श्वासोच्छ्वास की क्रिया कैसे होती है? (Mechanism of Respiration) वर्णन कीजिये। (१९३१, ४०, ४७, ४८, ५२, १९५४).

११. छाती का पिंजरा कैसा बना हुआ है, बतलाइये। (एस्. एस्. सी. १९५२, १९५४, ५७).

१२. श्वासोच्छ्वास की क्रिया में छाती का खोखला भाग बडा और छोटा कैसा होता है इसका वर्णन करो। (१९५७).

१३. फेफडों की रचना (Structure) का वर्णन करो। (१९५७).

अध्याय चौथा

पाचन-प्रणाली (The Digestive System)

४७. भोजन और उसकी आवश्यकता—बाहर की हवा चाहे जितनी ठंडी या गरम हो पर हमारे शरीर का तापमान सदा ही साधारणतः ९७° से ९८·४° फैरनहाइट रहता है। इसका कारण यह है कि रक्त के भोजन-रस का भिन्न २ अवयवों में लगातार ज्वलन होता रहता है। इसी प्रकार हृदय, मस्तिष्क (Brain), स्नायु (Muscles) आदि अवयवों को काम में प्रेरित करने की शक्ति (Energy) भोजन से ही प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त जो पेशियाँ (Cells) कुछ समय काम करने के पश्चात् नष्ट हो जाती हैं, शरीर में उनकी कमी की पूर्ति और शरीर की बाढ़ के लिए नयी पेशियों का निर्माण भी भोजन द्वारा ही होता है। नयी पेशियों का निर्माण बचपन और तरुणावस्था में विशेष रूप से होता है। इससे स्पष्ट है कि ऊष्णता और शक्ति पैदा करने, शरीर की छीजन पूरी करने और उसकी वृद्धि करने के लिए भोजन की अत्यन्त आवश्यकता है।

४८. अन्न के प्रमुख घटक—भोजन में उन सब पदार्थों का समावेश होता है जो खाने के बाद पच कर रक्त में ग्रहण कर लिये जाते हैं और उनका उपयोग ऊपर लिखे एक या अनेक कार्यों में हो सकता है। शरीर की भिन्न २ पेशियाँ भोजन से ही तैयार होती हैं। इससे भोजन में उन सब पदार्थों का रहना आवश्यक है जिससे इन पेशियों का निर्माण हो सकता है। शरीर की पेशियों (Cells) का यदि शास्त्रीय रीति से पृथक्करण करें तो प्रकट होगा कि भोजन में निम्न ६ घटकों की आवश्यकता है।

१. नायट्रोजन-युक्त पदार्थ (Proteins)—इनकी शरीर की छीजन को पूरा करने और शरीर की बाढ़ के लिए आवश्यकता पडती है क्योंकि शरीर की पेशियाँ इसी पदार्थ की बनी रहती हैं। इस पदार्थ में नायट्रोजन वायु प्रमुखता से है, । इसलिए इसे नायट्रोजन-युक्त (Nitrogenous) पदार्थ कहते हैं। बटाना, गेहूँ, भिन्न २ द्विदल धान्य, दूध, मांस, अंडा, मछली आदि पदार्थों में यह विशेष रूप से मिलता है।

२. कर्बोज पदार्थ (Carbohydrates)—इसमें कार्बन, प्राणवायु और हायड्रोजन का मिश्रण रहता है। हायड्रोजन और प्राणवायु का परिमाण २ : १ याने पानी के समान (H_2O) रहता है। यह चावल, आलू, सागुदाना, जैसे पिष्ट पदार्थ, श्वेतसार (Starch), ज्वार, शक्कर आदि वनस्पतिजन्य पदार्थों में पाया जाता है। इससे ऊष्णता और शक्ति मिलती है। यदि ये पदार्थ अधिक परिमाण में खाये जायँ और उचित व्यायाम न किया जाय तो उसका शरीर में योग्य रीति से ज्वलन नहीं होता जिससे वह शरीर में जमा होता रहता है और तब उसका चर्बी में परिवर्तन होता है।

३. स्निग्ध पदार्थ (चिकनाई – Fats)—ये पदार्थ चर्बीयुक्त आम्ल (Farty acids) और ग्लिसरिन के सम्मिश्रण से बनते हैं। चर्बी के पृथक्करण करने पर उसमें कार्बन, हायड्रोजन और ऑक्सिजन वायु मिलेंगी। मक्खन, घी, सूखा नारियल,

तिल, मूँगफली और राई आदि पदार्थों के तेल स्निग्ध पदार्थ के उदाहरण हैं। इनका उपयोग शरीर की उष्णता और शक्ति उत्पन्न करने में होता है। परंतु कार्बोज पदार्थों की अपेक्षा इन पदार्थों से शरीर में अधिक उष्णता पैदा होती है। भोजन में स्निग्ध पदार्थों का आवश्यकता से अधिक मिकदार बढ़ जाने से शरीर में जब उनका ज्वलन नहीं होने पाता तो शरीर में वे त्वचा के नीचे जम कर स्थूलता पैदा करते हैं।

४. लवण (Salts) — आम्ल (Acids) और क्षार (Alkalies) के मिश्रण से भिन्न २ लवण बनते हैं। इनसे शरीर की छीजन पूरी होने और उसकी बाढ़ होने में सहायता पहुँचती है। नमक या सोडियम क्लोराइड – यह लवण रक्त और अन्य शरीर घटकों में मिलता है। कैलशियम फास्फेट हड्डियों को बलवान बनाने और लोह (Iron) रक्त को हिमोग्लोबिन नामक पदार्थ तैयार करने के काम में आते हैं। इनके अतिरिक्त हमारे शरीर में सोडियम, कैलशियम, पोटेशियम आदि अनेक लवणों की आवश्यकता होती है। सोडियम क्लोराइड याने नमक नामक लवण के अतिरिक्त ऊपर कहे गये अन्य लवणों को हम स्वतंत्र रूप से अपने भोजन में नहीं मिलाते। शाक-भाजी, फल और अन्य बहुत से पदार्थों में वे लवण रहते हैं। अतः इनके खाने से हमें आवश्यक लवणों की भरपूर प्राप्ति हो जाती है।

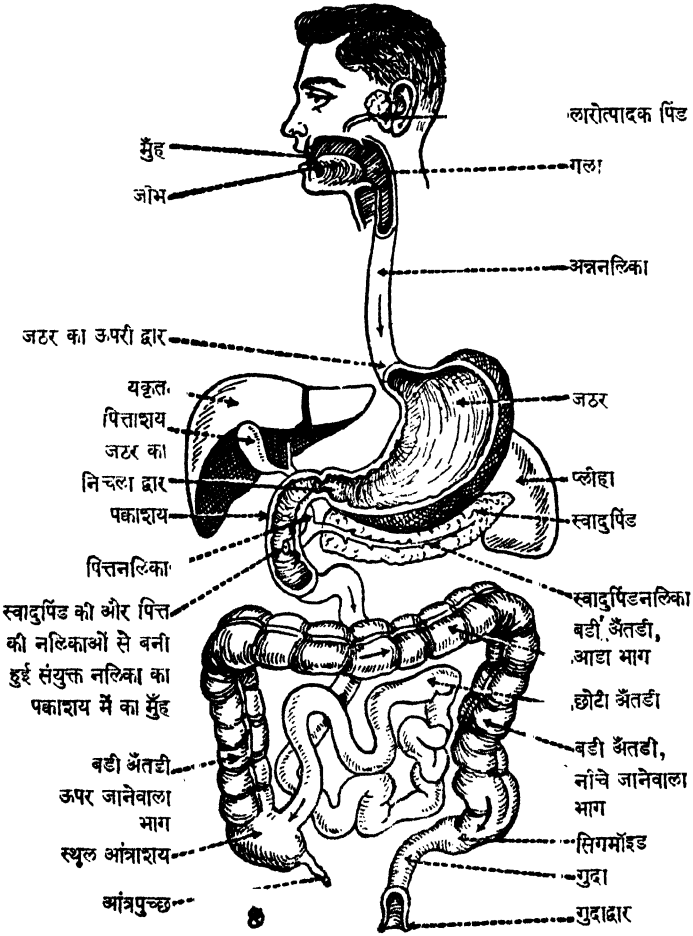
५. पानी (Water)— हमारे शरीर में $\frac{२}{३}$ भाग पानी का है। पेशी के निर्माण के लिए पानी अत्यन्त आवश्यक पदार्थ है। भोजन का पचन और उसका शोषण, रुधिराभिसरण और मलोत्सर्जन आदि शारीरिक क्रियाएँ पानी की सहायता से ही सम्पन्न होती हैं।

६. जीवन-सत्त्व (Vitamins) — शरीर में ऊपर बतलाये गये पाँच घटकों के भोजन द्वारा पहुँचने पर भी शरीर उचित बाढ़ और आरोग्य के लिए उसे एक और घटक की आवश्यकता पड़ती है। उसे जीवन-सत्त्व कहते हैं। शरीर को सब प्रकार के जीवन-सत्त्व पर्याप्त मात्रा में न मिलें तो स्कर्वी (Scurvy), सूखा (Rickets) आदि रोग पैदा हो जाते हैं। हरी भाजी, फल, दूध, अंडा, मक्खन, अंकुरित द्विदल धान्य आदि अनेक पदार्थों में ये सत्त्व पाये जाते हैं। ताजे पदार्थों में इनका परिणाम अधिक रहता है परंतु उनके अधिक समय तक रख छोड़े जाने से बासी होने पर तथा उनको ज्यादा तपाने पर उनके परिमाण में कमी आ जाती है। हमें अपने दैनिक आहार में विभिन्न जीवन-सत्त्वों का समावेश करते रहना चाहिये।

उक्त भोजन-घटकों की अधिक विस्तारपूर्वक जानकारी लेखक के 'आरोग्यशास्त्र' नामक ग्रन्थ के " भोजन " शीर्षक अध्याय में मिलेगी।

४९. पचनेन्द्रियाँ और पाचन-क्रिया — भोजन का पाचन जिस मार्ग से होता है उसे भोजन-मार्ग या **अन्न-मार्ग** (Alimentary canal) कहते हैं। अन्नमार्ग एक स्नायु (Muscle) की लचीली, लम्बी, पोली नली है, जो हमारे मुँह से शुरू होती है और छाती तथा उदर भागों से होती हुई अन्त में गुदद्वार में (Anus)

समाप्त हो जाती है । यह नली कहीं सँकरी कहीं चौड़ी है । उसमें मुँह, गला (Pharynx), अन्ननलिका (Food-pipe), जठर (Stomach), छोटी अँतड़ी, और बड़ी अँतड़ी और गुदा तथा मलाशय आदि भाग हैं। इनके

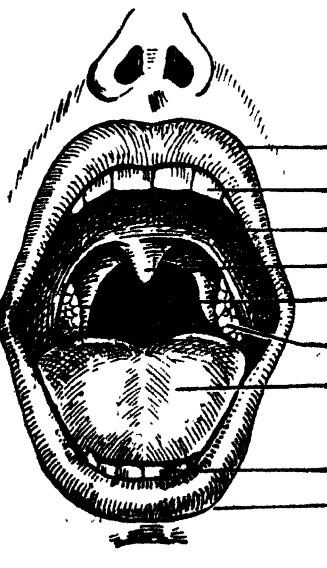


आकृति ४० — **अन्नमार्ग** (Alimentary canal)

मुँह, गला, अन्ननलिका, और पक्काशय इन इंद्रियों का अंदर का भाग दिखाने के लिये उसका खड़ा काटा हुआ छेद बतलाया गया है। (आकृति रचनात्मक है।)

अतिरिक्त लारोत्पादक पिण्ड (लार पैदा करनेवाली ग्रन्थियाँ), यकृत (Liver), स्वादुपिण्ड (Pancreas) आदि पिण्ड भिन्न २ पाचक रस तैयार कर छोटी नलिकाओं के मार्ग (Ducts) से अन्नमार्ग में उंडेल देते हैं। ये सब पिण्ड भी पचनेन्द्रियों में

सम्मिलित हैं। यह अन्नमार्ग की दीवार मुख्यतः स्नायुओं से बनी हुई है। स्नायुओं के आकुंचन के कारण भोजन धीरे २ आगे बढ़ता है। अन्नमार्ग के भीतरी ओर अन्तस्त्वचा (Mucous membrane) की झिल्ली रहती है, जिसके नीचे रहनेवाली सैकड़ों सूक्ष्म ग्रन्थियाँ जो रस तैयार करती हैं वह अन्नमार्ग में पहुँच जाता है। उसीसे अन्तस्त्वचा तर रहती है जिससे भोजन के पचनकार्य में भी सहायता पहुँचती है। जिन पेशियों का समूह रक्त के पदार्थों की सहायता से किसी रस को तैयार करता है उसे हम **ग्रन्थि** अथवा **पिण्ड** (Gland) कहते हैं। उस रस का शरीर की किसी क्रिया में यदि उपयोग होता है तब उसे **स्राव** (Secretion) कहते हैं। इसके विपरीत यदि किसी रस के निरुपयोगी पदार्थों को बाहर निकालना हो तो उसे **उत्सर्ग-रस** (Excretion) कहते हैं। अन्नमार्ग के भिन्न २ अवयवों अथवा ग्रन्थियों में जो स्राव तैयार होता है उसमें खास २ गुण-धर्म के **पाचक द्रव्य** (Ferments, or enzymes) रहते हैं। पाचक द्रव्य का अर्थ यह है कि उनकी सहायता से भोजन में महत्त्वपूर्ण रासायनिक परिवर्तन तो होता है, परन्तु स्वयं उनमें (द्रव्यों में) बिलकुल परिवर्तन नहीं होता। इसी क्रिया याने पाचक द्रव्यों के रासायनिक परिवर्तन के कारण ही **न घुलनेवाले पदार्थों का घुल जानेवाले पदार्थों में रूपान्तर** (Digestion) **हो जाता है**। हम जो भोजन करते हैं वह अन्न-मार्ग में आनेवाले भिन्न २ रसों के पाचक-द्रव्यों की सहायता से घुल जाता है और उसको हम कहते हैं कि अन्न का पचन हुआ (Digestion)। भोजन में जब इस तरह का परिवर्तन हो जाता है याने जब खाया हुआ भोजन घुल जाता है तभी उसका रक्त में **शोषण** (Absorption) हो सकता है। इस रीति से रक्त में शोषित किया गया भोजन-रस रक्त के ही जरिये भिन्न २ पेशियों तक पहुँचता है और उससे शरीर की छीजन पूरी हो कर शरीर की बाढ़ होती है इस क्रिया को भोजन का **सात्मीकरण** (Assimilation) कहते हैं।



आकृति ४१ — मुख-गुहा

५०. मुँह (Mouth) — यह अन्नमार्ग का पहिला भाग है। मुँह की अगली ओर होंठ और उसके पीछे, ऊपर तथा नीचे दाँतों की कतार है। बाहरी ओर कपोल के

स्नायु, नीचे के हिस्से में जीभ और ऊपर कड़ा और नर्म तालु (Hard and soft palate) हैं। तालुके पिछली ओर बीचों बीच अलिजिव्हा (Uvula) होती है। मुँह के पीछे गला अथवा ग्रसनिका है जिसके दोनों ओर गलग्रन्थियाँ (Tonsils) हैं। इनके अतिरिक्त लार पैदा करनेवाली तीन ग्रन्थियाँ (Salivary glands) मुँह के प्रत्येक बाजू में हैं ; उनसे उत्पन्न होनेवाली लार, जो पाचक रस कहलाती है, मुँह में आकर मिलती है।

५१. **दांत** (Teeth) – मुँह के ऊपरी और निचले जबड़े में (Upper and lower jaw) दाँतों की एक २ कतार जड़ी हुई है। दाँत भोजन चबाने के काम में आते हैं। प्रत्येक दाँत के जड़ (Root), गर्दन (Neck) और चोटी (Crown) ये तीन भाग होते हैं।



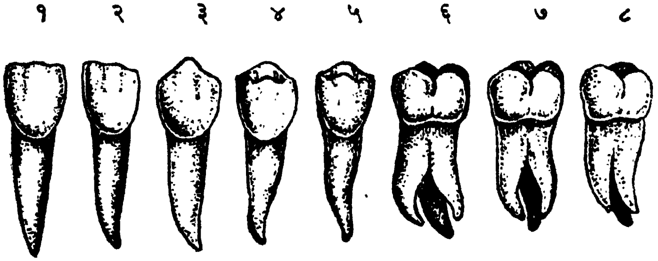
आकृति ४२ – **दाँत की रचना**
(खड़ा काटा हुआ भाग)

जबड़े की हड्डी में दाँत का जो भाग दृढ़ता से जमा रहता है उसे दाँत की **जड़** (Root) कहते हैं। मसूड़ों के नीचे दाँतों के आकुंचित भाग को दाँतों की **गर्दन** (Neck) कहते हैं और मसूड़ों के बाहर दिखनेवाले दाँत के खुले भाग को दाँत का **सिर** या **चोटी** (Crown) कहते हैं। प्रत्येक दाँत का भीतरी हिस्सा पोला है जिसमें **दन्त-मज्जा** (Tooth-pulp) नामक एक नरम पदार्थ रहता है। रक्तवाहिनी और नाड़ीतन्तु जड़ में रहनेवाले छेद के द्वारा भीतर प्रविष्ट होते हैं। दाँत का अधिकांश भाग **दन्तिन** (Dentine) नामक कड़े पदार्थ का बना रहता है। उसके सिर का भाग अधिक कड़ा और स्वच्छ सफेद **दन्तवेष्ट** (Enamel) नामक द्रव्य से बना रहता है। दाँत की जड़ पर **सीमेंट** (Cement) नामक दृढ़ पदार्थ होने से दाँत जबड़े की हड्डी में मजबूती से जमा रहता है।

छोटे बच्चे के दाँतों को **दूध के दाँत** (Milk teeth) कहते हैं। साधारणतः आठ से दस महीने के बच्चे को दाँत आने लगते हैं और जब यह दो वर्ष का हो जाता है तब उसके सब दाँत निकल आते हैं। आठ डाढें (Molars), चार कीलियाँ (Canines) और आठ चपटे काटनेवाले दाँत (Incisors) मिल कर कुल दूध के २० दाँत होते हैं। चूंकि इन्हें हल्का काम करना पडता है, इसलिए ये **स्थायी दाँतों** की (Permanent teeth) अपेक्षा छोटे और नाजुक होते हैं। छः वर्ष की आयु के बाद में इन दाँतों का गिरना शुरू हो जाता है और उनके स्थान पर स्थायी दाँत आने लगते हैं। स्थायी दाँत कुल ३२ होते हैं। ऊपरी और निचले जबड़े में १६ के क्रम से जमे रहते हैं।

चार टुकड़े करनेवाले दाँत (Incisors) – ये मुख की अगली और प्रत्येक बाजू दो दो हिसाब से जमे हुए हैं। प्रत्येक दाँत की एक जड़ और एक चोटी होती। उसकी तीक्ष्ण कोर के कारण भोजन के टुकड़े बनाने में सहायता मिलती है।

दो कील के दाँत (Canines)—ये ऊपरी दाँतों के पीछे हैं। प्रत्येक बाजू एक २ दाँत जमा रहता है। प्रत्येक में तेज़ नोक रहती है।

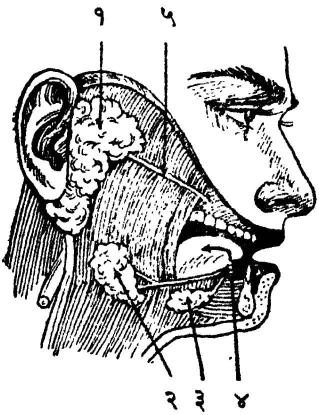


आकृति ४३—**स्थायी दाँत** (Permanent teeth)

एक जबडे के एक ही बाजू के आठ दाँत दिखलाये गये हैं। १, २ टुकडे करनेवाले दाँत (Incisors), ३ कीलियाँ (Canine), ४, ५, छोटी डाढें (Bicuspids), ६, ७, ८, बडी डाढें (Molars)।

चार **छोटी डाढें** (Bicuspids)--कील के दाँतों पीछे प्रत्येक बाजू दो के हिसाब से ये दाढें उगती हैं।

छः **बड़ी डाढ़ें** (Molars)—प्रत्येक बाजू तीन के हिसाब से ये डाढें रहती है। ये मोटी होती हैं और प्रत्येक डाढ में दो या अधिक जडें रहती हैं। उसका ऊपरी भाग फैला हुआ होता है इसलिए उसकी चोटी चार भागों से मिलकर बनती है। भोजन को बारीक बनाने में डाढों का बडा हाथ रहता है। चार डाढें लगभग १८ वर्ष की आयु तक नहीं ऊगतीं। तभी उसे बुद्धिडाढ (Wisdom tooth) कहते है।

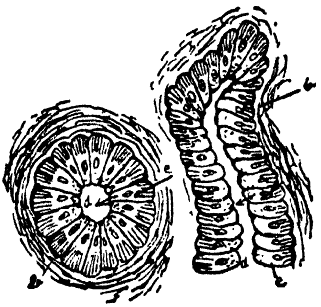


आकृति ४४—**लारोत्पादक पिण्ड** (Salivary glands)

निचले जबडे का एक बाजू निकाल कर और चेहेरे का कटा भाग लेकर दाहिने बाजू के लारोत्पादक पिण्ड बताये गये हैं। १ परॉटिड (Parotid). २ सबमॉक्झिलरी (Submaxillary). ३ सबलिंग्वल (Sublingual). ४ जिव्हा. ५ परॉटिड डक्ट (Parotid duct).

५२. लारोत्पादक पिण्ड (Salivary glands)–मुख के प्रत्येक बाजू में तीन लारोत्पादक पिण्ड रहते है। उनमें से एक परॉटिड पिण्ड (Parotid gland), कान के सामने कपोल-भाग में और दूसरा, सबमॅक्झिलरी पिण्ड (Submaxillary gland), जबडे की हड्डी के नीचे रहता है। तीसरा, सबलिंग्वल पिंड (Sublingual gland), जीभ के नीचे है। इन सब पिण्डों या गिल्टियों में उत्पन्न होनेवाली लार (Saliva) छोटी नलिकाओं के मार्ग (Ducts) से मुँह में पहुँचती है। प्रत्येक पिण्ड

छोटी छोटी गाँठों (Lobules) से मिलकर बना है। इन गाँठों को सूक्ष्मदर्शकयंत्र से देखें तो ऐसा दिखलाई देगा कि एक छोटे पोले भाग के आसपास पेशियों की चक्राकार रचना बनी हुई है और उनके आसपास केशवाहिनियों का जाल है। इन केशवाहिनियों के रक्त से जो रस (Lymph) झरता है, उनसे पिण्ड की पेशियाँ लार को तैयार करती हैं। लार नामक रस सूक्ष्मनलिकामें (Duct) जमा होकर एक बड़ी नलिका में जाता है जहाँ से वह मुँह में उँडेला जाता है। लार-रस या लार, पानी के समान पतली है। उसकी यदि लिटमस कागज़ से परीक्षा की जाय तो उसमें क्षार (Alkali) का होना सिद्ध हो जाएगा। लार के कारण मुँह गीला रहता है जिससे स्पष्ट बोलने और भोजन चबाने में सहायता मिलती है और भोजन के कर्बोज पदार्थ पचते हैं। और भोजन निगलने के योग्य लुगदी के रूप में बन जाता है। जीभ की अन्तस्त्वचा में स्वाद का संवेदनावाहक नाडी-तन्तु होने के कारण ज्योंही भोजन मुँह में जाने लगता है त्योंही लार पैदा होने लगती है। किसी स्वादिष्ट पदार्थ की गंध आते ही अथवा उसके दिखलाई पडते ही, नहीं नहीं, उसका स्मरणमात्र होते ही, हमारे मुँह में पानी छूटने लगता है। यह हम सब का अनुभव है।

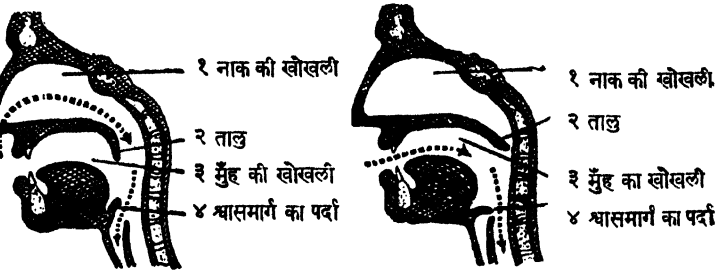


आकृति ४५ – लारोत्पादक पिण्ड (Salivary glands) का सूक्ष्मदर्शकयंत्र से दिखने-वाला काटा हुआ भाग।

c रसोत्पादक पेशी (Secreting cells), *d* सूक्ष्म नलिका का आधा काटा हुआ भाग, *b* सूक्ष्म केशवाहिनियाँ।

५३. मुँह में भोजन का पाचन-कार्य — चक्की में जिस प्रकार अनाज पीसा जाता है उसी प्रकार दाँतों में भोजन चबाया जाकर बारीक पीसा जाता है। और जीभ की सहायता से लार के रस के साथ वह खूब साना जाता है। लार में **टायलीन** (Ptyalin) नामक जो खास पाचक द्रव (Ferment) रहता है उसकी सहायता से भोजन के कर्बोज (Carbohydrates) का माल्टोज नामक शक्कर (Malt-sugar) में रूपान्तर हो जाता है। रोटी का टुकड़ा चबा कर जब हम निगलने लगते हैं तब वह पहले की अपेक्षा हमें अधिक मीठा लगता है। इसका कारण यह है कि उसमें ऊपर कहे अनुसार शक्कर हो जाती है। श्वेतसार (Starch) आदि कर्बोज पदार्थ (Carbohydrates) पानी में न घुल सकने के कारण उसी रूप में रक्त में नहीं मिल सकते। परन्तु उसमें तैयार होनेवाली शक्कर घुल सकती है। इस तरह टायलिन की सहायता से न घुलनेवाले कर्बोज का घुलनेवाली शक्कर में जो रूपान्तर होता है उसे ही कर्बोज पदार्थों का पचन कहते हैं। इस पचन के योग्य रीति से होने के लिए लार की टायलिन की क्रिया को काफी समय मिलना चाहिये। इसी लिए हमें भोजन को आराम से, धीरे २ और अच्छी तरह से चबा कर खाना चाहिये।

५४. गला या ग्रसनिका (Pharynx)—भोजन और हवा दोनों का ग्रसनिका के मार्ग से ही भीतर प्रवेश हो जाता है; परन्तु ग्रसनिका के चबाये हुए भोजन की जीभ की सहायता से अच्छी लुगदी बन जाती है और वह जीभ के पिछले भाग से गले में ही ढकेली जाती है।



आकृति ४६

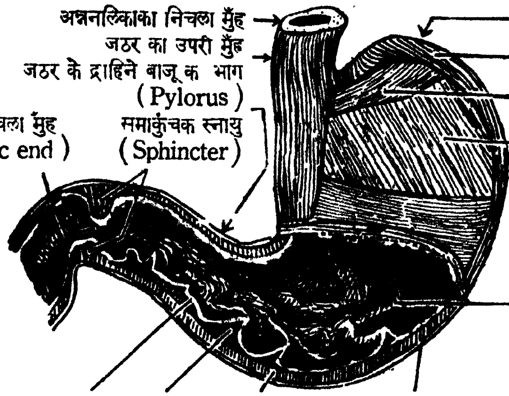
श्वासोच्छ्वास के समय की स्थिति भोजन निगलने के समय की स्थिति

श्वासोच्छ्वास के समय और भोजन निगलने के समय श्वासमार्ग का पर्दा (Epiglottis) और नरम तालु (Soft palate) किस स्थिति में रहते हैं यह इस आकृति में दिखलाया गया है।

नीचे ही उनके भिन्न २ मार्ग बने हुए हैं। जो भोजन हम करते हैं, उसका ग्रास भूल कर भी श्वासनलिका में नहीं जाता। वह अन्ननलिका (Gullet) में ही जाता है। इसका कारण यों है—भोजन निगलते समय जब गलगुण्डी ऊपर उठाई जाती है तब श्वास-नलिका ऊपर खींच जाती है। इसका ऊपरी मुख जिव्हा की जड़ के नीचे आ जाता है और श्वासमार्ग बंद होता है। उसी समय श्वासमार्ग का पर्दा भी नीचे आकर श्वासमार्ग को बंद करने में सहाय्यक होता है (आकृति ४६ देखिये)। गले या ग्रसनिका के स्नायुओं के आकुंचन के कारण भोजन अन्ननलिका में ही ढकेला जाता है।

५५. अन्ननलिका (Gullet or food-pipe or œsophagus)—इसकी लम्बाई लगभग दस इंच है यह ग्रसनिका (Pharynx) के निचले पिछले बाजू से प्रारंभ होती है और श्वासनलिका के पीछे से छाती में जाकर श्वासपटल के स्नायुओं में से उदर-गह्वर में जाती हुई जठर में पहुँचती है। यही इसका अंतिम छोर समझना चाहिये। यह श्वासनलिका (Trachea) के पीछे रहती है। उसकी भीतरी ओर अन्तस्त्वचा (Mucous membrane) का आवरण रहता है। और उसकी मोटाई लम्बे और गोल दोनों तरह के स्नायुओं से बनी हुई है। जब भोजन का कौर (ग्रास) अन्ननलिका में पहुँचता है तब उसके ऊपरी बाजू के वर्तुलाकार स्नायु आकुंचन होते है और निचले शिथिल होते हैं जिससे कौर आगे ढकेला जाता है। वर्तुलाकार स्नायुओं का आकुंचन ऊपर से नीचे जठर तक एक लहर के समान आगे बढता जाता है। इस क्रिया को **आकुंचन-लहरी** (Peristalsis) कहते हैं। इस क्रिया से भोजन जठर में पहुँचता है।

५६. जठर (Stomach) — यह एक स्नायुओं की पोली थैली है; जिसकी चौड़ाई अन्न-मार्ग के सब भागों से अधिक है। जठर, उदर-गह्वर के बायें और ऊपरी भाग में श्वासपटल (Diaphragm) के नीचे है; उसकी लम्बाई लगभग १० इंच और चौड़ाई ४½ इंच है। इसका अधिक चौड़ा भाग बायीं ओर, और बहुत कम चौड़ा भाग



आकृति ४७ — **जठर का भीतरी भाग दिखानेवाला कटा हुआ छेद।**

जठर की दीवार के चार आवरण दिखाने के लिए केवल निचले भाग को काटा गया है। ऊपरी तरफ स्नायु के एक २ स्तर क्रम क्रम से काटकर निचले स्नायु का स्तर दिखलाया गया है।

दायीं ओर है। इसके ऊपरी ओर अन्ननलिका खुलती है, जिसे Cardiac opening कहते हैं और निचले तथा दाहिने बाजू के छोर से, जिसे Pyloric opening कहते हैं, छोटी अँतड़ी शुरू होती है। इन दोनों स्थानों पर वर्तुलाकार संकोचक स्नायु (Sphincters) जठर के दोनों मुखों को बन्द करने में सहायक होते हैं। भोजन के आगे जाने के समय ही ये खुलती हैं। जठर आकार में साधारणतः भिश्ती की मशक के समान है, जो जठर में रहनेवाले भोजन के मिकदार के अनुसार कम-ज्यादा होती है।

जठर चार आवरणों से मिल कर बना है —

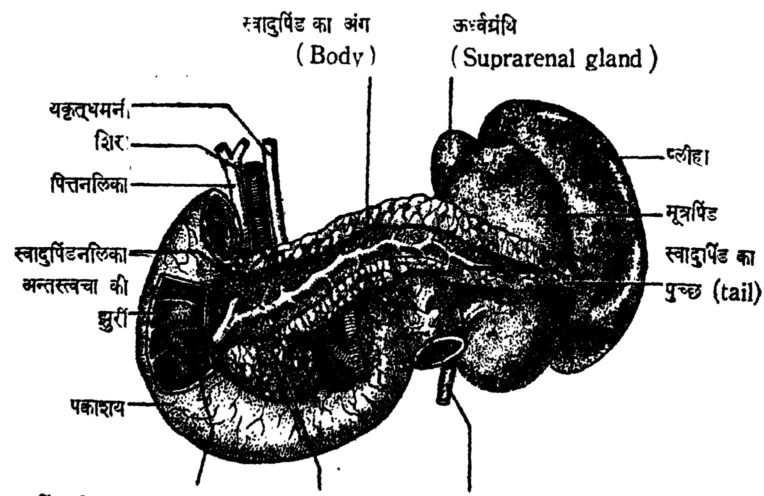
(१) जठर के भीतरी भाग में अन्तस्त्वचा (Mucous membrane) का आवरण रहता है। जठर जब खाली रहता है तब उसपर झुर्रीसी पड़ी रहती है।

(२) अन्तस्त्वचा से लगा हुआ और उसके नीचे दूसरा आवरण (Submucous coat) है, जिसमें **जठर-ग्रंथि** (Gastric glands) हैं । इससे उत्पन्न होनेवाला **जठर-रस** (Gastric juice) छोटी नलिका के द्वारा जठर में पहुँचता है।

(३) तीसरा आवरण **स्नायुओं** का बना हुआ है। इन स्नायुओं के खड़े, आड़े और तिरछे तीन स्तर रहते हैं। इनमें से आड़े अथवा वर्तुलाकार स्नायु (Sphincters) के कारण जठर का अन्ननलिका (Gullet) के पास का मुख और छोटी अँतड़ी के पास का मुख सदा बन्द रहते हैं। भोजन के आगे जाते समय ही मुख खुलते हैं।

(४) जठर के ऊपर **उदरान्तर्वेष्टन** (Peritoneum) नामक एक चमकनेवाला गुलगुला आवरण रहता है। यही आवरण उदर की अन्य इन्द्रियों पर भी रहता है।

अन्न के जठर में आने पर लार की टायलिन की क्षार माध्यम में होनेवाली पिष्ट पदार्थों पर की क्रिया कुछ देर तक जारी रहती है; लेकिन अधिक आम्ल पदार्थ उत्पन्न होने लगा कि वह बंद हो जाती है। भोजन के जठर में पहुँचते ही जठर के भिन्न २ स्नायु सिकुड़ने और फैलने लगते हैं जिससे उत्पन्न होनेवाली आकुंचन-लहरी



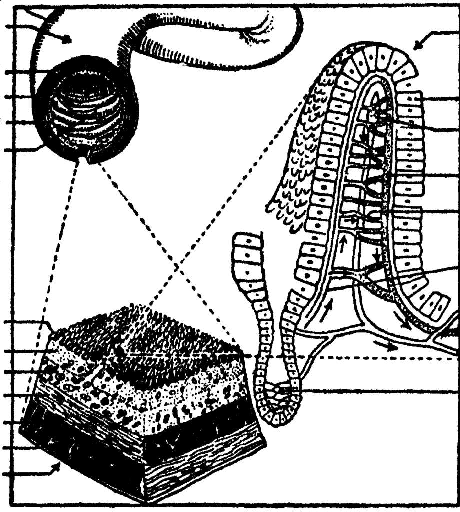
आकृति ४८ — पक्वाशय, स्वादुपिण्ड, प्लीहा और मूत्रपिण्ड

अन्तस्त्वचा की झुर्रियाँ दिखाने के लिए अगला कटा हुआ पक्वाशय एवं स्वादुपिंड, प्लीहा और मूत्रपिंड। स्वादुपिंडनलिका का भाग देखने के लिए स्वादुपिंड का शिर काटा दिखाया है।

के कारण भोजन मिल सन कर जठर के पाचन-रस में बराबर मिल जाता है। पाचक-रस के तैयार होने के पूर्व जठर को रक्त पहुँचानेवाली रक्तवाहिनियाँ फैलकर जठर में अधिक रक्त पहुँचाया जाता है। जिसके कारण अन्तस्त्वचा के नीचे रहनेवाली हजारों सूक्ष्म ग्रंथियों से पाचक-रस तैयार होता है और वह जठर के भीतर में उंडेला जाता है। यह **जठर-रस** (Gastric juice) पानी के रंग का होता है और स्वाद में खट्टा लगता है। उसमें पानी और **हायड्रोक्लोरिक ॲसिड** के अतिरिक्त **पेप्सिन** (Pepsin) और **रेनिन** (Rennin) नामक दो पाचक द्रव्य (Ferments) भी रहते हैं। भोजन के नायट्रोजनयुक्त पदार्थ (Proteins) पर पेप्सिन नामक पाचक द्रव्य का हायड्रोक्लोरिक ॲसिड की सहायता से घुलनेवाले (Soluble) पदार्थ पेप्टोन (Peptone) में रूपान्तर हो जाता है। उसी प्रकार रेनिन (Rennin) नामक पाचक द्रव्य का दूध के केसिइन (Casein) नामक नायट्रोजनयुक्त पदार्थ (Proteins) पर असर पडने से दूध का दही बन जाता है। तत्पश्चात् पेप्सिन और हायड्रोक्लोरिक ॲसिड की मदद से यह दही आसानी से पच जाता है। भोजन के नायट्रोजनयुक्त पदार्थ इसी रीति से पचते हैं। भोजन जठर में लगभग तीन से चार घंटे तक रहता है। इस अवधि के बाद जठर में रहनेवाले भोजन में कुछ नायट्रोजनयुक्त पदार्थ, और कुछ पेप्टोन बने पदार्थ, कुछ कर्बोज पदार्थ, कुछ शर्करा में परिवर्तित पदार्थ और स्निग्ध पदार्थ, घुली हुई स्थिति में रहते हैं। इन समस्त पदार्थों के आम्ल-मिश्रण को **काइम** (Chyme) कहते हैं। इनमें की बहुतही थोडी पेप्टोन और शक्कर जठर की केशवाहिनियों द्वारा सोखी जाकर यकृत की ओर ले जायी जाती है। शेष भोजन जठर की अँतडियों की ओर रहनेवाले मुँह का वर्तुलाकार स्नायु (Pyloric sphincter) ढीला होकर छोटी अँतडी में धीरे धीरे पहुँचता रहता है।

५७. **छोटी अँतडी** (Small intetsine) — यह लगभग २२ फूट लम्बी और १ इंच चौडी स्नायुओं की बनी हुई पोली नली है; जिसकी गिडुली उदर-गह्वर में अच्छी तरह बैठी हुई है। इस अँतडी का प्रारम्भ जठर के निचले मुँह से होता है और अन्त दाहिने और निचले बाजू, बडी अँतडी के निकट होता है। छोटी अँतडी के प्रारंभिक दस इंच के भाग को **पक्वाशय** (Duodenum) कहते हैं। उसका आकार घोडे की नाल के समान है। उसके वृत्त्याकार में क्लोम या स्वादुपिण्ड के सिर का भाग आडा जमा हुआ है। यह भाग शेष छोटी अँतडी की अपेक्षा अधिक चौडा है। वह अन्य छोटी अँतडी के भाग के समान स्वच्छन्द रीती से हिल नहीं सकता। स्वादुपिण्ड या क्लोम से निकलनेवाली स्वादुपिण्डनलिका (Pancreatic duct) और यकृत से निकलनेवाली पित्तनलिका (Bile duct) एकत्रित होकर पक्वाशय में अपने रसको लाकर छोडती हैं। जठर के समान छोटी अँतडी भी चार आवरणों की बनी हुई है।

१. **अन्तस्त्वचा का आवरण** (Mucous membrane) – यह झुर्रियोंदार है; जिससे पाचक रस का भोजन पर क्रिया होने के लिए और अभिशोषण (Absorption) होने के लिए थोडी जगह में अधिक क्षेत्र मिल सकता है। मखमल के कपडे पर जिस



आकृति ४९ — **छोटी अँतडी के चार आवरण और शोषणेंद्रियाँ** (Villi)

१ छोटी अँतडी × २/३ – छोटी अँतडी का आडा छेद बतला कर उसके एक पर एक रहनेवाले चार आवरण बतायें है ।

२ छोटी अँतडी का छेद × १० – छोटी अँतडी का एक बाजू का काटा हुआ छोटा भाग उसके आवरण ठीक समझने के लिये दस गुना बडा बतलाया है ।

३ शोषणेंद्रिय × ५०० – छोटी अँतडी के अन्तस्त्वचा की शोषणेंद्रिय की रचना समझने के लिए वह (सूक्ष्मदर्शकयंत्र से देखने पर) ५०० गुना बडाकर बतलाया है।

प्रकार कोमल रोएँ रहते हैं उसी प्रकार के रोएँ इस अन्तस्त्वचा पर भी रहते हैं। उसमें सूक्ष्म रसवाहिनियाँ (Lymphatic capillaries or lacteals) और रक्तवाहिनियाँ हैं, जिनका उपयोग भोजन के अभिशोषण के लिए होता है । अन्तस्त्वचा के प्रत्येक कोमल उठे हुए भाग को **शोषणकेन्द्र** (Villus) कहते हैं।

२. अन्तस्त्वचा के नीचे (Submucous coat) और उससे सटी हुई पाचक-रस पैदा करनेवाली **ग्रन्थियाँ** होती हैं; जिनसे स्रवित होनेवाला **आंत्ररस** (Intestinal juice) उपर्युक्त झुर्रियों के निचले भाग से अँतडी की नली में पहुँचता है।

३. तीसरा आवरण (Muscular coat) **स्नायुओं** का बना हुआ है। जिसके भीतरी हिस्से में वर्तुलाकार और बाहरी हिस्से में खडे स्नायु रहते हैं। इस प्रकार स्नायुओं के दो स्तर रहते हैं। अन्ननलिका के समान इसके वर्तुलाकार स्नायु एक स्थानपर जब आकुंचित होते हैं तब साथही उसके निचले भाग में शिथिल हो जाते हैं। इस तरह **आकुंचन-लहरी** (Peristalsis) उत्पन्न होती है और भोजन की गति आगे बढती है।

४. जठर के समान इसका बाहरी आवरण भी **उदरान्तर्वेष्टन** (Peritoneum) का बना हुआ है। भोजन जठर से पक्काशय में (Duodenum) जब पहुँचता है तब उसमें स्वादुपिंड-रस (Pancreatic juice), पित्त (Bile) और आन्त्ररस (Intestinal juice) आ कर मिलते हैं।

५८. **स्वादुपिण्ड रस** (Pancreatic juice)—पक्काशय के चक्कर में जो **स्वादुपिण्ड** या **क्लोम** (Pancreas) नामक ग्रन्थि है उससे यह रस उत्पन्न होकर एक नलिका के मार्ग (Pancreatic duct) से पक्काशय में पहुँचता है। (आकृति ४८ देखिये)। यह क्षारीय (Alkaline) है तथा पानी के समान पतला और रंगविहीन है। उसमें पानी, लवण, नायट्रोजनयुक्त पदार्थ (Protein) आदि द्रव्य रहते हैं। इनके अतिरिक्त उसमें **ॲमिलॉप्सिन** (Amylopsin), **ट्रिप्सिन** (Trypsin) और **लायपेज** (Lipase) नामक तीन महत्त्व के पाचक द्रव्य (Ferments) हैं जिनकी क्रिया केवल क्षार (अल्क) के माध्यम में ही हो सकती हैं। ॲमिलॉप्सिन के कारण कर्बोज पदार्थों (Carbohydrates) की माल्टोज नामक शक्कर बनती है। ट्रिप्सन की क्रिया नायट्रोजनयुक्त पदार्थों (Proteins) पर होती है। उससे पेप्टोन अथवा रासायनिक दृष्टि से उससे भी अधिक सरल रचना के **पेप्टाइड** (Peptides) और **ॲमिनो ॲसिड** (Amino acid) तैयार होते हैं। पित्त-रस की सहायता से लायपेज नामक पाचकद्रव्य भोजने के **स्निग्ध पदार्थों** पर अपना असर डालता है जिससे स्निग्ध पदार्थों की अत्यंत बारीक गोलियाँ बनकर दूध के समान (Emulsion) पदार्थ तैयार होता है। इस दूध जैसे पदार्थसे अथवा स्निग्ध पदार्थों से ग्लिसरीन और चर्बीयुक्त आम्ल (Fatty acids) तैयार होते हैं। आम्ल अँतडियों के अल्क पदार्थों से मिलते हैं जिसके साबुन (Soap) के कण तैयार होते हैं। इस प्रकार मक्खन, घी आदि के समान शोषण के लिए सर्वथा कठिन पदार्थों से साबुन के समान सोखा जानेवाला पदार्थ **लायपेज** (Lipase) के कारण ही तैयार होता है। जो कर्बोज और नायट्रोजनयुक्त पदार्थ लार की टायलिन और जठर के पेप्सिन (Pepsin) से नहीं पच पाते वे सब स्वादुपिंड रस के ॲमिलॉप्सिन (Amylopsin) और ट्रिप्सिन (Tripsin) द्रव्यों की सहायता से अनुक्रम से पच जाते हैं।

५९. **पित्त-रस** (Bile)—यह एक क्षारीय (Alkaline) हरे पीले रंग का कडुवा, पतला पदार्थ है, जो यकृत में तैयार होता है और पित्तनलिका के मार्ग से पक्काशय में पहुँचता है। इस रस में पाचन क्रिया के लिए आवश्यक कोई भी विशिष्ट पाचकद्रव्य (Ferment) नहीं रहता फिर भी क्लोम-रस लायपेज नामक पाचक द्रव्य चर्बीयुक्त पदार्थों को पचाने का जो काम करता है इसमें उसे इससे बडी सहायता मिलती है। साथ ही स्निग्ध पदार्थों के शोषण के लिए (Absorption of fats) भी इसका उपयोग होता है। इसी प्रकार यह अँतडी में जन्तुप्रतिबंधक (Antiseptic) का भी काम करती है। इससे कारण अन्न सडने नहीं पाता। पित्त के कारण अँतडी के स्नायुओं को आकुंचन की प्रेरणा मिलती है और भोजन की गति आगे बढती जाती है। पित्तरस के रेचक-गुण के कारण (Laxative action) प्रतिदिन साफ शौच होता है। रक्त के

पुराने लालकणों (Red blood corpuscles) के नष्ट होनेपर जो निरुपयोगी पदार्थ बनता है वह पित्त के रूप से अँतडियों के जरिये के शरीर के बाहर निकलता रहता है।

६०. अँतडी का पाचकरस अथवा आंत्ररस (Intestinal juice)— यह रस अँतडी की अन्तस्त्वचा के नीचे रहनेवाली ग्रन्थियों से तैयार होता है। उसमें दो प्रकार के पाचकद्रव्य (Ferments) रहते हैं। इनमें से **इरेप्सिन** (Erepsin) नामक पाचकद्रव्य के कारण **पेप्टोन** के **पेप्टाइड** और **ॲमिनो ॲसिड** जो आसानी से शोषित किये जा सकते हैं, तैयार होते हैं। अन्य कई पाचकद्रव्यों के कारण भोजन की भिन्न २ प्रकार की शक्करों से (उदाहरणार्थ Lactose, Maltose आदि शक्करों से) ग्लूकोज और फ्रक्टोज (Fructose) नामक सहज शोषित की जानेवाली शक्कर तैयार होती है। नायट्रोजनयुक्त और कर्बोज पदार्थों को पचाने का जो कार्य इसके पूर्व रसों से संपन्न नहीं होता उसे पूरा करने का काम इन रसों को उठाना पडता है।

इस रीति से तीनों प्रकार के पदार्थों को पूर्ण रीति से पचा कर उन्हें रक्त में शोषित करने का काम छोटी अँतडी का है।

६१. ऊपर वर्णन की गई पाचन-क्रिया का संक्षेप में नीचे निष्कर्ष दिया जाता है।

भोजन के **कर्बोज पदार्थ** (Carbohydrates) पहले मुँह में लार के टायलिन नामक रस से पचाये जाते हैं। उनसे जो भाग नहीं पचाया जाता वह पक्वाशय (Duodenum) के क्लोम-रस के ॲमिलॉप्सिन नामक रस (Amylopsin) की सहायता से पचाया जाता है; जिससे भिन्न २ प्रकार की शक्कर तैयार होती है। आंत्ररस (Intestinal juice) की क्रिया से इन सब शर्कराओं का ग्लूकोज में रूपान्तर होता है।

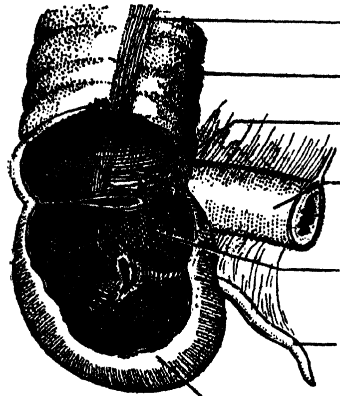
भोजन के **नायट्रोजनयुक्त पदार्थ** (Proteins) पहले जठर के रेनिन, पेप्सिन और हायड्रोक्लोरिक ॲसिड की क्रिया के कारण और बादमें पक्वाशय में क्लोमरस क ट्रिप्सिन नामक पाचक-द्रव्य के कारण पेप्टोन, पेप्टाइड और ॲमिनो ॲसिड के रूप में अनुक्रम से पचता है। आंत्ररस के इरेप्सिन के कारण पेप्टाइड से शोषण कार्य में आसानी पहुँचानेवाला ॲमिनो ॲसिड तैयार होता है।

स्निग्ध पदार्थों का पाचन-कार्य केवल छोटी अँतडी ही में होता है। क्लोमरस के लायपेज नामक पाचकद्रव्य (Ferment) के कारण स्निग्ध पदार्थों से साबुन का द्रव तैयार होता है। इस क्रिया में यकृत से आनेवाला पित्तरस भी सहायक होता है।

इसी रीति से कर्बोज, नायट्रोजन-युक्त (Proteins) अथवा स्निग्ध पदार्थों का क्रमशः ग्लूकोज, पेप्टोन या ॲमिनो ॲसिड, दुग्धसदृश द्रव (Emulsion) और साबुन इन घुलनेवाले पदार्थों में रूपान्तर होने लगता है। जब उक्त पदार्थ इस तरह घुल जाते हैं तभी उनका रक्त में शोषण होता है। जिनका रक्तमें शोषण नहीं होता वे बचे हुए निरुपयोगी पदार्थ मल या विष्ठा (Fœces) के रूप में शरीर से बाहर निकलते रहते हैं।

६२. बडी अँतडी (Large intestine) — छोटी अँतडी बडी अँतडी के दाहिने बाजू और उसके प्रारम्भ के भाग के कुछ ऊपर आकर मिलती है। बडी अँतडी के नीचे

निचले बाजू में जो बन्द अँतडी का भाग है उसे **स्थूल आंत्राशय** (Caecum) कहते हैं। इसके निचले हिस्से से तीन से चार इंच लम्बी डोरी के समान जो एक हिस्सा लटकता रहता है उसे **आंत्रपुच्छ** (Appendix) कहते है। बडी अँतडी लगभग छः



आकृति ५० — **बडी अँतडी और छोटी अँतडी का संयोग.** स्थूल आंत्राशयका (Caecum) अगला भाग काट कर दिखलाया है।

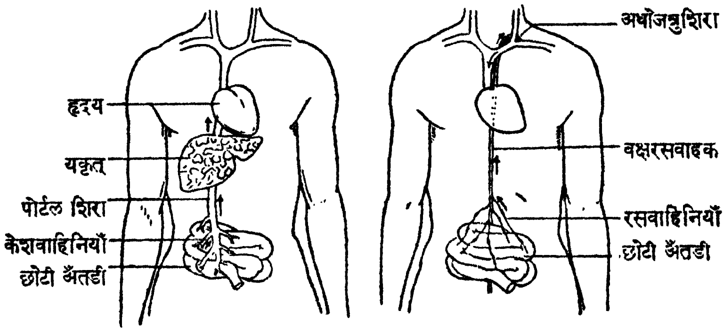
फूट लम्बी और ढाई इंच चौडी है। नीचे बतलाये अनुसार वह निम्नलिखित भागों में विभाजित की गयी है (आकृति ४० देखिये)। पहिला भाग दाहिनी ओर **सीधा ऊपर** की ओर जाता है। इसे Ascending colon कहते हैं जो यकृत तक जाकर बायीं ओर मुड गया है। दूसरा **आडा भाग** जो Transverse colon कहलाता है, यकृत से बायीं ओर प्लीहा (Spleen) तक जाकर नीचे मुडता है और तीसरा **नीचे जानेवाला भाग** जो Descending colon कहलाता है, बायीं ओर प्लीहा से नीचे जाकर कटिर (Pelvis) में उतरता है। कटिर का हिस्सा (Pelvic colon) अंदर की ओर मुडकर कटिर के कशेरुके पर से नीचे उतरता है। अन्नमार्ग के ५–६ इंच के अन्तिम मार्ग को गुदा या **मलाशय** (Rectum) कहते हैं, जो बाहर के बाजू **गुदाद्वार** (Anus) में समाप्त होता है। गुदाद्वार के दो वर्तुलाकृति स्नायु (Anal sphincter) के कारण मल-विसर्जन क्रिया अपने इच्छानुसार हो सकती है।

बडी अँतडी की सूक्ष्म रचना साधारणतः छोटी अँतडी के समान ही है। परंतु उसकी अन्तस्त्वचा पर झुर्री अर्थात् सलवट और शोषणेन्द्रियों (Villi) के सूक्ष्म उठे भाग या अंकुर नहीं रहते। इसी प्रकार इस अँतडी के बाहरी भाग पर स्नायुओं के बने हुए तीन लम्बे पट्टे रहते हैं। ये पट्टे अँतडी की अपेक्षा कम लम्बे होने से छोटी अँतडी के सदृश बडी अँतडी चिकनी नहीं होती, किंतु जगह २ पर फूली हुई दिखाई देती है।

शोषण योग्य भोजन का सब भाग छोटी अँतडी में शोषित कर लिया जाता है। इस लिए छोटी अँतडी में आनेवाला पदार्थ अर्धद्रवरूप में ही रहता है। यहाँ पानी का

अधिकांश शोषित कर लिया जाता है। और जो शेष निरुपयोगी पदार्थ बचा रहता है वह **मल** कहलता है। शक्कर अथवा लवण इन पदार्थों में से कुछ हिस्सा छोटी अँतडी में नहीं शोषित किया गया हो तो बडी अँतडी उसका शोषण कर सकती है। परन्तु बडी अँतडी का मुख्य काम उसमें पहुँचनेवाले भोजनद्रव्य से पानी के भाग को शोषण करना है। इसी लिए शेष बचे हुए निरुपयोगी पदार्थों का गाढा **मल** (Fœces) तैयार होता है और कुछ कीटाणुओं की क्रिया के कारण मल से दुर्गन्धि छूटती है। अन्न के सेल्युलोज जैसे न पचनेवाले पदार्थ भी उसमें होते हैं। अँतडी के स्नायुओं के आकुंचन के कारण मल आगे ढकेला जाता और शरीर के बाहर फेंका जाता है।

६३. भोजन का अभिशोषण (Absorption of food)—शरीर के पेशियों (Cells) को जो भोजन-रस आवश्यक होता है वह रक्त से ही प्राप्त होता है। इसी लिए अन्न-मार्ग में पचे हुए भोजन का रक्त में मिलना आवश्यक है। अभिशोषण-क्रिया यही कार्य करती है।



आकृति ५१ — **भोजन का अभिशोषण**

पिष्ट और नैट्रोजनयुक्त पदार्थ अन्नमार्ग की सूक्ष्म केशवाहिनियों द्वारा शोषित होकर किस मार्गसे रक्त में मिल जाते हैं, यह बायें बाजू के आकृति में बताया है और स्निग्ध पदार्थ रसवाहिनियों द्वारा शोषित होकर किस मार्ग से रक्त में मिल जाते है वह दाहिनी आकृति में बताया है।

यह अभिशोषण-क्रिया दोन प्रकार से सम्पन्न होती है। भोजन के लवण (Salts), पानी और पचे हुए कर्बोज (Carbohydrate) और नैट्रोजन-युक्त पदार्थ (Protein), दूसरे शब्दों में ग्लूकोज, पेप्टाइड, ॲमिनो ॲसिड आदि, अन्नमार्ग की सूक्ष्म केशवाहिनियों (Blood-capillaries) द्वारा शोषित किये जाते हैं। मुख में भोजन का बिलकुल शोषण नहीं हो सकता क्योंकि पहिले तो मुख-गुहा की अन्तस्त्वचा मोटी रहती है और दूसरे वहाँ भोजन बहुत समय तक ठहरता भी नहीं है। पानी, लवण, शक्कर और पेप्टोन पदार्थ जठर में शोषित किये जा सकते हैं, परन्तु यहाँ भी शोषण कार्य तेजी से नहीं होता। अभिशोषण का मुख्य स्थान छोटी अँतडी है, जो बाईस फूट लम्बी है। उसके अन्तःपृष्ठ पर रहनेवाली **झुर्रियों** (सलों) और उसकी **शोषणेन्द्रियों** (Villi) के उठे हुए अंकुरमय भाग के कारण, शोषण-कार्य के

लिए अँतडी के हिस्से का क्षेत्रफल कई गुना बढ जाता है। शोषणेन्द्रियों के प्रत्येक उठे हुए अंकुर में केशवाहिनियाँ (Blood-capillaries) और रसवाहिनियाँ (Lymphatic capillaries) रहती है। भोजन में पानी, लवण, ग्लूकोज, पेप्टाइड और ॲमिनो ॲसिड को अँतडी की शोषणेन्द्रियों की केशवाहिनियों में शोषित कर लिया जाता है और उन केशवाहिनियों से बनी हुई शिरा का जठर से आनेवाली केशवाहिनियों से बनी हुई शिरा से संयोग होता है जिनसे ही आगे कोष्ठशिरा (Portal vein) बनती है। इस शिरा से ऊपर कहे गये भोजनतत्त्व यकृत म पहुँचते हैं और वहाँ ग्लूकोज से ग्लायकोजेन नामक पदार्थ बनकर यकृत में संचित किया जाता है। पेशियों को जब शक्कर की आवश्यकता पडती है तब ग्लायकोजेन से ग्लूकोज बनायी जाती है और उन्हें पहुँचायी जाती है।

अन्नके स्निग्ध पदार्थों का शोषण अँतडी की शोषणेन्द्रियों की रसवाहिनियों में होता है। अँतडी की अंतस्त्वचा में से साबुन के द्रव के शोषित किए जाते ही फिर उससे स्निग्ध पदार्थों के सूक्ष्म कण तैयार हाते हैं और इसी स्वरूप में वे रसवाहिनियोंमें रहते हैं। स्निग्धपदार्थयुक्त भोजन खाने के बाद कुछ घंटों में रसवाहिनियाँ उसे भीतर शोषित करनेके कारण सफेद दिखलाई देती हैं। इसी लिए इनका नाम **दुग्धवाहिनियाँ** (Lacteals, lac-milk) पडा है। उसमें रहनेवाले दुग्धसदृश-सफेद द्रव पदार्थ को **काईल** (Chyle) कहते हैं। ये सब रसवाहिनियाँ एकत्रित होकर उदर की बडी रसवाहिनियाँ बनाती हैं। इस प्रकार इन रसवाहिनियों में शोषित किये गये पदार्थ सब से बडी वक्ष-रसवाहिनी द्वारा (Thoracic duct) गर्दन की निकटवर्ती बाईं शिरा में उँडेले जा कर शेष रक्त में मिल जाते हैं।

६४. चयापचय (Metabolism) — हमारे शरीर में क्षण २ परिवर्तन होता रहता है। यह परिवर्तन दो प्रकार का होता है। जब कोई अवयव कार्य करता है तब उसका थोडा बहुत छीजन होता ही है जिससे कुछ पेशियों का नाश होकर शरीर का निरुपयोगी पदार्थ तैयार होता है। इस क्रिया को **अपचय** (Katabolism) कहते हैं। इसके विपरीत, शरीर के छीजे हुए भागों का पुनर्जीवन होता रहता है। और शरीर की बाढ होने के लिए नवीन पेशियाँ तैयार होती रहती हैं। इस दूसरी क्रिया को **चय** (Anabolism) कहते है। इन दोनों क्रियाओं के कारण शरीर में जो लगातार उथल-पुथल, बनना-बिगडना, जारी रहता है, उस संयुक्त क्रिया को **चयापचय** (Metabolism) कहते हैं। छोटे बच्चों में लगातार बाढ होती रहने के कारण चय (Anabolism) की क्रिया विशेष रूप से जारी रहती है और उसके विपरीत उतरती हुई उम्र में अपचय (Katabolism) की क्रिया अधिक परिमाण में होती रहती है।

६५. कर्बोज पदार्थों की चयापचय क्रिया (Metabolism of carbohydrates) — हमारे आहार में जो कर्बोज पदार्थ रहता है वह पचकर ग्लूकोज बन जाता है। सूक्ष्म केशवाहिनियों में (Blood capillaries) उसका शोषण होने के बाद

वह कोष्ठशिरा (Portal vein) में से यकृत में पहुँचती है, जहाँ वह ग्लायकोजेन नामक पदार्थ में परिवर्तित होकर जमा हो जाती है। उष्णता और शक्ति उत्पन्न होने के लिए ऑक्सिजन की सहायता से शक्कर का पेशी में ज्वलन होता रहता है इस कार्य के लिए शरीर की पेशियों (Cells) को शक्कर की जब जिस परिमाण में आवश्यकता पडती है तब उस परिमाण में ग्लायकोजेन से पुनः ग्लूकोज तैयार कर उन्हें पहुँचायी जाती है। इससे कार्बन-डायॉक्साइड वायु और पानी जैसे निरुपयोगी पदार्थ तैयार होकर फेफडों, मूत्रपिण्ड (Kindey) और त्वचा के मार्ग से शरीर के बाहर फेंके जाते हैं। कर्बोज पदार्थों का यदि अधिक आहार किया जाता है तो पेशियों में के ज्वलन के पश्चात् जो भाग उनका शेष रह जाता है वह चर्बी में परिवर्तित होकर त्वचा के नीचे जमता जाता है।

६६. स्निग्ध पदार्थों का चयापचय (Metabolism of fats)—भोजन में रहनेवाली चर्बी जब पच जाती है तो उससे प्रथम दुग्धसदृश द्रव (Emulsion) और पीछे साबुन तयार होता है। स्निग्ध पदार्थ रसवाहिनियों में (Lymphatic capillaries) शोषित होकर सबसे बडी रसवाहिनी (Thoracic duct) के मार्ग से गर्दन की निकटवर्तिनी शिरा के रक्त में मिल जाता है। स्निग्ध पदार्थों का उपयोग भी कर्बोज पदार्थों के समानही शक्ति और ऊष्णता उत्पन्न करने में होता है परन्तु उनमें अन्तर इतना ही है कि उनकी ज्वलन से जो ऊष्णता तैयार होती है वह कर्बोज पदार्थों से उत्पन्न होनेवाली ऊष्णता से दुगुनी होती है, जिससे जाडे के दिनों में अधिक ऊष्णता उत्पन्न करने में उसका उपयोग होता है। स्निग्ध पदार्थों के ज्वलन होने के बाद उससे उत्पन्न होनेवाले कार्बन-डायॉक्साइड वायु और पानी, ये दोनों निरुपयोगी पदार्थ फेफडे, मूत्रपिण्ड और त्वचा के मार्ग से शरीर के बाहर फेंके जाते है। जिस चर्बी का उपयोग शीघ्रही ऊष्णता उत्पन्न करने में नहीं होता वह चर्बी, त्वचा के नीचे शरीर के समस्त भागों में, जमा होती रहती है।

६७. नायट्रोजन-युक्त पदार्थों का चयापचय (Metabolism of Protiens)—नायट्रोजनयुक्त पदार्थ पच कर पेप्टोन, पेप्टाइड, ॲमिनो ॲसिड आदि बने हुए पदार्थ सूक्ष्म केशवाहिनियों में (Blood capillaries) शोषित किये जाते हैं। ये कोष्ठशिरा (Portal vein) के मार्ग से पहले यकृत में जाते हैं। और फिर रक्त में मिल जाते हैं। इनसे शरीर की पेशियों की छीजन पूरी होती है और नवीन पेशियों का भी निर्माण होता है। कुछ दिनों के पश्चात उनमेंसे जो शरीर की पेशियाँ नष्ट होती हैं उनसे मूत्रीय (Urea) और मूत्राम्ल (Uric acid) यकृत में तैयार होते हैं और बाद में त्वचा या मूत्रपिण्ड के मार्ग से शरीर के बाहर फेंक दियें जाते हैं।

अन्न-मार्ग के भिन्न २ भागों से भोजन जाते समय उसमें कौनसे रस मिलते हैं और रसों में रहनेवाले पाचक-द्रव्य भोजन के घटकों का किस तरह पाचन करते जाते हैं और अन्त में शोषण-योग्य कौनसे पदार्थ तैयार होते हैं, आदि जानकारी आगे के दो कोष्टकों में संकलित कर दी गई है।

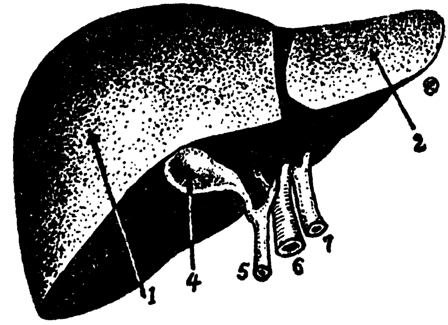
कोष्ठक १ : भोजन के प्रमुख घटकों का पाचन

	भोजन का प्रकार	मुख में भोजन का पाचन			जठर में भोजन का पाचन			छोटी अँतडी में भोजन का पाचन			पूर्ण पाचन के पश्चात् शोषणयोग्य पदार्थ	किसके द्वारा शोषण होते हैं ?	कहाँ शोषित किए जाते हैं।
		रस का नाम	पाचक द्रव्य	तैयार होनेवाला पदार्थ	रस का नाम	पाचक द्रव्य	तैयार होनेवाला पदार्थ	रसका नाम	पाचक द्रव्य	तैयार होनेवाला पदार्थ			
१	कर्बोज (Carbohydrates)	लार Saliva	टायलिन	माल्टोज शक्कर	क्रिया नहीं होती			१ स्वादुपिंडरस २ आंत्ररस	ॲमिलॉप्सिन इन्व्हर्टेज माल्टेज आदि	माल्ट शक्कर ग्लूकोज, फ्रक्टोज	ग्लूकोज	रक्तवाहिनी	जठर, अल्प परिमाण में परंतु मुख्यतः छोटी अँतडी (कोष्ठ-शिरा में से यकृत में जाता है)
२	नैट्रोजनयुक्त पदार्थ (Proteins)	क्रिया नहीं होती			जठर-रस	रेनिन पेप्सिन और हैड्रोक्लोरिक ॲसिड	दुध के नैट्रोजन-युक्त पदार्थ का दही बनता है पेप्टोन	१ स्वादुपिंडरस २ आंत्ररस	ट्रिप्सिन इरेप्सिन	पेप्टाइड और ॲमिनो ॲसिड पेप्टाइड व और ॲमिनो ॲसिड	पेप्टाइड और ॲमिनो ॲसिड	रक्तवाहिनी	जठर, अल्प परिमाण में परंतु मुख्यतः छोटी अँतडी (कोष्ठ-शिरा में से यकृत में जाता है)
३	स्निग्ध-पदार्थ (Fats)	क्रिया नहीं होती			क्रिया नहीं होती (शरीर की उष्णता से केवल पिघलते हैं)			१ स्वादुपिंडरस २ पित्तरस	लायपेज ...	दुग्धद्राव और साबुन लायपेज की क्रिया में सहायता	दूध के समान पदार्थ और साबुन	रसवाहिनी (Lacteals)	छोटी अँतडी वक्षरसवाहक से सबक्लॅव्हियन शिरा में पहुँचती है

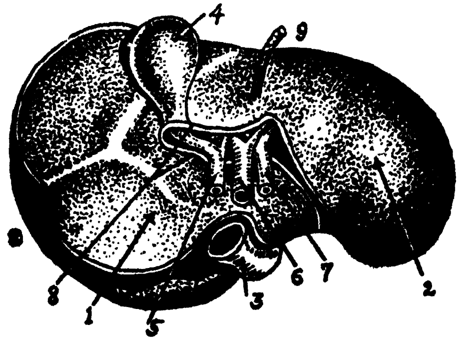
६९. **कोष्ठक २ : भोजन का अन्नमार्ग के विभिन्न भागों में होनेवाला पाचन**

	अवयव	रस का नाम	उसमें रहनेवाले पाचक द्रव्य	किस भोज्यपदार्थ पर क्रिया होती है ?	पाचन के पश्चात् उससे बननेवाले पदार्थ	किस प्रकार के द्रव्य में क्रिया होती है ।	कौन से पदार्थ शोषित किये जाते हैं ।
१	मुख	लार	टायलिन	कर्बोज पदार्थ	माल्टोज साखर	अल्क	
२	जठर	जठररस	१ रैनिन २ पेप्सिन और हैड्रोक्लोरिक ॲसिड	दूध के नैट्रोजन-युक्त पदार्थ (Casein) नैट्रोजनयुक्त पदार्थ (Proteins)	दहीं पेप्टोन	आम्ल	पानी, लवण, शक्कर और पेप्टोन अल्प परिमाण में
३	छोटी अँतडी (पक्वाशय)	१ स्वादुपिंडरस	१ ॲमिलॉप्सिन २ ट्रिप्सिन ३ लायपेज	कर्बोज पदार्थ नैट्रोजनयुक्त पदार्थ स्निग्ध पदार्थ	शक्कर पेप्टाइड और ॲमिनो ॲसिड, दूध के समान पदार्थ और साबुन	अल्क ,, ,,	पानी, लवण, शक्कर पेप्टाइड, ॲमिनो ॲसिड साबुन का द्रव
		२ पित्तरस	विशिष्ट पाचक द्रव्य नहीं	स्निग्ध पदार्थ	लायपेज के कार्य में दूध के समान पदार्थ और साबुन बनाने में सहायता	अल्क	
		३ आंत्ररस	१ इरेप्सिन २ इन्व्हर्टेज, माल्टेज आदि	पेप्टोन भिन्न २ शर्कराएँ	ॲमिनो ॲसिड और पेप्टाइड, ग्लूकोज और फ्रक्टोज	अल्क	

७०. यकृत (Liver)—यकृत शरीर की सबसे बडी ग्रन्थि है। यकृत का रंग कत्थे के समान, और वजन लगभग तीन से चार पौंड रहता है। वह उदरगह्वर (Abdominal cavity) की दाहिनी ओर श्वासपटल (Diaphragm) के नीचे उसीसे संलग्न है। परन्तु उसका कुछ भाग बाईं ओर जठर थोड़ा ढँक देता है। दाहिनी ओर तक उसकी लम्बाई ८ इंच और चौडाई ६ इंच तक रहती है। उसका ऊपरी भाग चिकना रहता है और वह श्वासपटल स्नायु (Diaphragm) के निचले खाली भाग में जमा हुआ होने के कारण मेहराब की तरह गोलाकृति दिखलाई देता है। नीचे का पृष्ठभाग खुरदरा रहता है। एक खडी कोष्ठदरार (Portal fissure) के कारण दाहिना और बायाँ ऐसे दो भाग (Lobes) हो जाते हैं। सीधा भाग दाहिने भाग की अपेक्षा लगभग ६ गुना बडा होता है। और इन दोनों के बीच में नीचे की ओर पित्ताशय (Gall-bladder) नामक लम्बी बैंगन के समान स्नायु की थैली रहती है। इस थैली में यकृत में तैयार हुआ पित्त (Bile) इकठ्ठा किया जाता है और पचने के लिए जरूरत पडे तब पित्तनलिका से अँतडी में पहुँचाया जाता है।



—यकृत, आगेसे और जरा नीचेसे देखने पर।



ब—यकृत नीचेसे देखने पर।

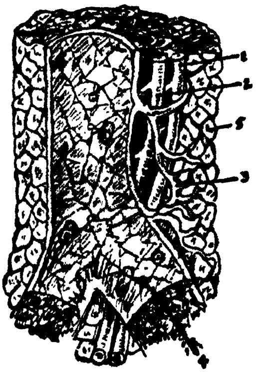
आकृति ५२—**यकृत** (Liver). 1 यकृत का दाहिना भाग (Lobe). 2 यकृत का बायाँ भाग. 3 अधोमहाशिरा (Inferior vena cava). 4 पित्ताशय. 5 पित्त-नलिका (Bile duct). 6 कोष्ठाशिरा (Portal vein). 7 यकृतधमनी (Hepatic artery). 8 कोष्ठदरार (Portal fissure).

यकृत के निम्नपृष्ठभाग की कोष्ठदरार में (Portal fissure) **यकृत की धमनी** (Hepatic artery) और **कोष्ठशिरा** (Portal vein) दोनों पहुँचती हैं और वहीं से **यकृतनलिका** (Hepatic duct) बाहर निकलती है। यकृत की धमनी उदर की महाधमनी (Abdominal aorta) से निकलती है। उसीके द्वारा यकृत को शुद्ध रक्त पहुँचाया जाता है। **कोष्ठशिरा जठर** (Stomach,), **अँतडियाँ** (Intestines), **स्वादुपिंड** (Pancreas) और

प्लीहा (Spleen) आदि अवयवों से अशुद्ध रक्त संचित करती है (आकृति १४, नं. १ देखिये)। इसीसे पचनेन्द्रियों से शोषण किया हुआ भोजनरस भी उसमें रहता है। इन दोनों रक्तवाहिनियों के यकृत में जाने पर उनकी बारीक २ शाखाएँ होती जाती हैं, जिनसे यकृत की पेशी में सूक्ष्म केशवाहिनियों का जाल तैयार हो जाता है। इसी तरह यकृत की पेशी में रहनेवाली छोटी २ पित्तकेशनलिकाएँ (Bile capillaries) यकृत में बननेवाले पित्त को जमा करती हैं और उनके संयोग से बननेवाली यकृतनलिका (Hepatic duct) यकृत की कोष्ठ-दरार से (Portal fissure) बाहर निकलती है। यकृत का सब अशुद्ध रक्त यकृत की शिरा में (Hepatic vein) जमा होकर अधोमहाशिरा में पहुँचता है।

७१. यकृत के कार्य —

१. यकृत के सूक्ष्म काटे हुए भाग को लेकर यदि सूक्ष्मदर्शकयंत्र से देखा जाय तो पता चलेगा कि यकृत असंख्य बहुकोणाकृति (Polygonal) यकृतपेशियों का बना हुआ है। उसमेंकी प्रत्येक पेशी रक्त के कुछ विशिष्ट पदार्थों से पित्त (Bile) नामक हरा-पीला रस तैयार करती है। रस की जीर्ण शीर्ण लाल पेशियों का नाश यकृत और प्लीहा में होता है और इन रक्त की नष्ट होनेवाली लाल पेशियों (Rea blood corpuscles) से पित्त में कुछ द्रव्य तैयार होने के कारण इसे उत्सर्ग-रस (Excretion) मान लेने में भी कोई आपत्ति नहीं है। क्योंकि ये द्रव्य छोटी अँतडी में आकर बाद में बडी अँतडी के द्वारा मैले के साथ शरीर के बाहर फेंके जाते हैं। इसके अतिरिक्त जैसा कि नीचे वर्णन किया गया है इसका शरीर में उपयोग होने के कारण यह एक प्रकार का स्राव (Secretion) भी है। सूक्ष्म पित्तवाहक केशनलिकाओं (Bile capillaries) से बडी यकृतनलिका (Hepatic duct) में यह पित्त जमा होता है। और पित्ताशय की नलिका (Duct-of gall-bladder) उसमें मिलकर बडी पित्तनलिका (Commonbile duct) तैयार होती है। इसी पित्तनलिका से वह (रस) पक्वाशय (Duodenum) में जाता है। पित्तरस (Bile) हमेशा बनता रहता है और जब पाचनकार्य के लिए उसकी आवश्यकता नहीं रहती तब वह पित्ताशय में आ कर जमा होता है। भोजन के स्निग्ध पदार्थों के पचाने में और उनके शोषण में पित्त सहायक होता है। इसके अतिरिक्त वह रेचक (Laxative) भी होता है।



आकृति ५२ — **सूक्ष्मदर्शक यंत्र के नीचे दिखाई देनेवाला यकृत का छेद।**

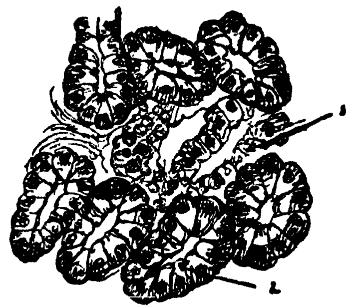
1 यकृतधमनी (Hepatic artery). 2 यकृतनलिका (Hepatic duct). 3 यकृत पेशियोंमें दिखाई देनेवाली कोष्ठशिरा की सूक्ष्म शाखायें. 4 कोष्ठशिरा. 5 यकृत की पेशी (Liver cell).

२. पचनेन्द्रियों द्वारा शोषण की गई ग्लूकोज नामक शक्कर कोष्ठशिरा में से यकृत में जाती है। उससे यकृत **ग्लायकोजेन** (Glycogen) नामक पदार्थ बनाता है, तब ग्लायकोजेन यकृत में ही जमा रहता है। जब २ शरीर में ऊष्णता और शक्ति निर्माण करने के लिए शक्कर की आवश्यकता पडती है तब २ उचित परिमाण में ग्लायकोजेन द्वारा पुनः ग्लूकोज तैयार होकर रक्तमार्ग से शरीर के समस्त भागों में पहुँचाया जाता है।

३. शरीर के विभिन्न घटक (पेशियाँ) नैट्रोजनयुक्त पदार्थों के बने होते हैं। जब वे छीज जाते तब उनमेंसे मूत्रीय (Urea) और मूत्राम्ल (Uric acid) नामक निरुपयोगी पदार्थ यकृत ही बनाता है। ये पदार्थ त्वचा और मूत्रपिंड के मार्ग से रक्त से बाहर निकलते रहते है।

४. जठर या अँतडी में यदि कोई विषैला पदार्थ रहता है तो वह शोषण के बाद यकृत में जाता है और यकृत उसको निरुपद्रवी पदार्थ बना देता है।

७२. स्वादुपिंड या क्लोम (Pancreas)—यह एक लम्बा और चपटा पिंड है, जो जठर (Stomach) के जरा नीचे और पीछे आडा जमा हुआ है (आकृति ४८ देखिये)। उसकी लम्बाई लगभग ६ इंच है, उसका रंग कत्थे के समान है। उसका चौडा हिस्सा पक्वाशय (Duodenum) के चक्र में है। उसे उसका **सिर** (Head) कहते हैं। बीच के आडे भाग को उसका **शरीर** (Body) और प्लीहा के पास के नुकीले हिस्से को उसका **पूँछ** (Tail) कहते हैं। इसकी सूक्ष्म रचना लार पैदा करनेवाले पिंड के समान (Salivary gland) (आकृति ४४ देखिये) है। क्लोम में **स्वादुपिंडरस** या क्लोमरस (Pancreatic juice) तैयार होता है। इस रस को बहा ले जानेवाली नलिका (Pancreatic duct) पहले पित्तनलिका (Bile buct) में मिलती है। फिर इस संयुक्त नलिका-मार्ग से वह रस पक्वाशय (Duodenum) में ले जाया जाकर उंडेला जाता है। इस रस में रहनेवाले पाचक द्रव्य के कारण कर्बोज पदार्थ, नैट्रोजनयुक्त पदार्थ और स्निग्ध पदार्थ भली-भाँति पच जाते हैं। इस संबंध में पहले विस्तार के साथ कहा ही जा चुका है। ऊपर वर्णन किये अनुसार क्लोमरस (Pancreatic juice) जिस पेशी से उत्पन्न होता है उसके अतिरिक्त **आयलेटस् ऑफ लैंगरहॅन्स** (Islets of Langerhans) नामक और भी कुछ पेशियों का समूह क्लोम में रहता है। इन पेशियों से एक विशिष्ट रस तैयार होता है। और इसमें **इन्स्युलिन** (Insulin) नामक महत्त्वपूर्ण



आकृति ५४ – **आयलेट्स् ऑफ लैंगरहॅन्स दिखानेवाला स्वादुपिण्डका** (Pancreas) **सूक्ष्म छेद**। (सूक्ष्मदर्शक यंत्र से दिखाई देनेवाला) 1 आयलेटस् ऑफ लैंगरहॅन्स, 2 स्वादुपिंड की पेशियाँ।

द्रव्य रहता है। अन्य रसों के समान वह किसी नलिका द्वारा कहीं बाहर नहीं ले जाया जाता। परंतु क्लोम या स्वादुपिंड में ही रहनेवाली केशवाहिनियों (Blood capillaries) और रसवाहिनियों (Lymphatics) में ही वह सोख लिया जाता है और इस तरह रक्त में मिल जाता है। इस प्रकार के रस को **अंतःस्राव** (Internal secretion) कहते हैं। शरीर के भिन्न २ भागो में ऊष्णता उत्पन्न करने के लिए सब भागों में शक्कर की जो ज्वलनक्रिया होती रहती है, उसे इस अन्तःस्राव के इन्स्युलिन की बडी आवश्यकता पडती है। 'आयलेटस् ऑफ लँगरहॅन्स' में यदि इन्स्युलिन अच्छी तरह तैयार न हुआ तो शक्कर की अच्छी तरह ज्वलनक्रिया नहीं हो पाती। इसीसे रक्त में शक्कर का परिमाण बढ जाता है और पेशाब में शक्कर जाने लगती है। पेशाब में शक्कर का जाना एक रोग का लक्षण है जो **मधुमेह** (Diabetes) कहलाता है।

प्रश्न

१. मुख और जठर (Stomach) में भोजन किस तरह पचता है? (बम्बई विश्वविद्यालय १९३२, १९३४, १९३८).

२. मानव शरीर में जठर नामक अवयव का वर्णन कीजिये। (बम्बई वि. वि. १९२८, १९१८).

३. निम्न अवयवों का सूक्ष्मरचनासहित वर्णन कीजिये — जठर (Stomach), अँतडियाँ (Intestines), लारोत्पादक (लार पैदा करनेवाले) पिंड (Salivary glands)। (बम्बई वि. वि. १९३०).

४. निम्न अवयवों का शरीर में स्थान और वर्णन देकर कार्य बतलाइये। लारोत्पादक पिंड, (बं. विश्वविद्यालय-१९२९, १९३३), अँतडी (१९२९, १९३७, १९४२).

५. जिनमें प्रोटीन्स (Proteins) बहुत हैं उन कुछ पदार्थों के नाम लिखिये। अन्नमार्ग में ये पदार्थ किस तरह पचते हैं? (बम्बई वि. वि. १९३५, १९३६, १९४१).

६. जीभ और जठर के भोजन के आम्ल मिश्रण (Chyme) के सम्बंध में आप क्या जानते हैं? (बम्बई वि. वि. १९३५, १९४१).

७. यकृत के कार्यों का सविस्तर वर्णन कीजिये (बम्बई वि. वि. १९२७, १९३९, १९४३).

८. यकृत का विस्तार के साथ वर्णन (Anatomy) कर उसके कार्यों (Functions) का निर्देश कीजिये। (बं. वि. वि. १९२९, १९३२, १९३३, १९४२, १९४३, एस्. एस्. सी. १९५३, १९५५, १९५७).

९. चयापचय (Metabolism) का क्या अर्थ है? उसकी दोनों क्रियाएँ याने चय (Anabolism) और अपचय (Katabolism) किस तरह होती हैं? (बम्बई वि. वि. १९२८, १९३१).

१०. स्वादुपिंड (Pancreas) के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं? (बम्बई वि. वि. १९३४, १९३९, एस्. एस्. सी. १९५१, १९५२, १९५४, १९५६).

११. जठर के विषय में आप क्या जानते हैं? जठररसकी रचना और विभिन्न अन्नों पर उसके परिणाम का वर्णन कीजिये। (बम्बई वि. वि. १९३७, १९४२, एस्. एस्. सी. १९५२, १९५४, १९५७).

१२. अन्नों का वर्गीकरण कैसे किया जाता है सोदाहरण बतलाइये। प्रत्येक वर्ग का संक्षिप्त वर्णन और उसका उपयोग लिखिये। (बम्बई वि. वि. १९३७).

१३. छोटी अँतडी का वर्णन कीजिये। उसमें अन्न का पचन एवं शोषण कैसे होता है (बम्बई वि. वि. १९३७, १९४०, १९४२, एस. एस. सी. १९४९, १९५३, १९५५, १९५६, १९५८).

१४. प्रोटीन्स (नत्रयुक्त-पदार्थ) का पचन और शोषण कैसे होता है। (१९४१).

१५. टिप्पणियाँ लिखिये — १ दाँत की रचना। (बं. वि. वि. १९४२); २ दाँत। (१९३८); आयलेट्स ऑफ लैंगरहॅन्स (१९५७).

१६. भिन्न २ पाचक रसों के नाम बतलाइये। वे कहाँ पैदा होते है और उनकी रासायनिक बनाबट क्या है? (१९४५, एस. एस. सी. १९५१); स्वादुपिंड रस की विभिन्न अन्नोंपर क्या क्रिया होती है? (१९४५).

१७. बडी अँतडी के अलग २ कौन २ हिस्से हैं? उनकी रचना कैसी हैं और उनके कार्य क्या है? (१९४६).

१८. पिष्ट पदार्थों का पाचन तथा शोषण कैसे होता है? (१९४६).

१९. मुँह को पूर्णतया खोलनेपर मुह की खोखली म क्या २ दिखाई देता है? इनमें से तीन महत्त्व के भागों के कार्य बतलाइये। (१९४६).

२०. जीभ के विषय में आप क्या जानते हैं? (एस. एस. सी. १९५१).

२१. पक्काशय (Duodenum) की बाहर की और भीतर की रचना का वर्णन करो। समझाओ कि उसके भीतर जा कर खाद्य पदार्थ में क्या परिवर्तन होते हैं? (१९५६).

अध्याय पाँचवाँ

उत्सर्जक-प्रणाली (The Excretory System)

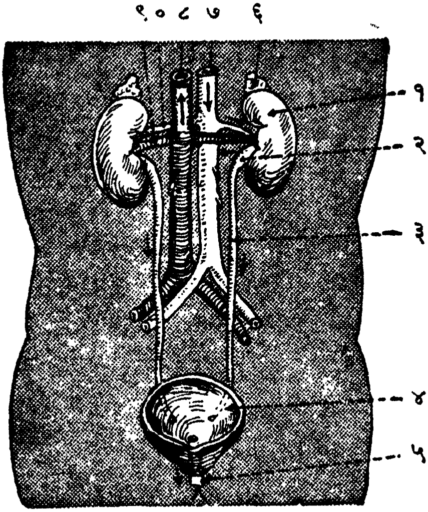
७३. हम जो अन्न खाते हैं वह पचता है और पचे हुए भोजन-रस का रक्त में शोषण होता है। भोजन-रस और प्राणवायु रक्तवाहिनियों द्वारा भिन्न २ अवयवों को मिलते है जिससे शरीर की बाढ होती है तथा उसकी छीजन दूर होती है। इस क्रिया को **चय** (Anabolism) कहते हैं। इसके विपरीत शरीर के घटक (पेशी) कुछ काल काम करने पर छीज कर नष्ट हो जाते हैं। इस क्रिया को **अपचय** (Katabolism) कहते हं। इस तरह नये घटकों के तैयार होने और पुरानों के छीज कर नष्ट होने की दोनों क्रियाएँ शरीर में हमेशा जारी रहती है। इन दोनों क्रियाओं का नाम **चयापचय** (Metabolism) है। इनमें से दूसरी याने अपचय (Katabolism) की क्रिया होते समय छीजी हुई पेशियों से अनेक निरुपयोगी द्रव्य उत्पन्न होते हैं। उदाहरणार्थ, प्रोटीन पदार्थों से मूत्रीय (Urea) और मूत्राम्ल (Uric acid) तैयार होते हैं तथा कर्बोज (Carbohydrates) और स्निग्ध पदार्थ (Fats) जल कर उनसे कार्बन-डायॉक्साइड, पानी आदि द्रव्य तैयार होते हैं। इसके सिवाय गंधक, फास्फरस और क्लोरिन के ऑक्सिजन वायु से संयोग होनेपर उनसे सल्फेट, फास्फेट और क्लोरेट के समान लवण (Salts) उत्पन्न होते हैं। इन सब निरुपयोगी द्रव्यों (Waste products) को शरीर के बाहर फेंकने की आवश्यकता है क्योंकि उनके शरीर में जमा रहने से शरीर का अहित हो सकता है।

७४. जो अवयव निरुपयोगी पदार्थों को शरीर के बाहर निकलने में मदद करते हैं उन सबका समावेश उत्सर्जक-प्रणाली में होता है। प्रत्येक उच्छ्वास के साथ फेफडों से कार्बन-डायॉक्साइड, पानी की भाफ आदि पदार्थ बाहर फेंके जाते हैं और बडी अँतडी से आहार का बिना पचा हुआ भाग मल के रुप में शरीर के बाहर फेंका जाता है। छीजे हुए लाल रक्तकण (Red blood corpuscles) और उनसे तैयार हुए निरुपयोगी पदार्थ पित्त के मार्ग से यकृत (Liver) के बाहर निकल जाते हैं। नत्र-युक्त पदार्थों के चयापचय से बने हुए मूत्रीय (Urea), मूत्राम्ल (Uric acid), अमोनिया इत्यादि पदार्थों के अतिरिक्त पानी और भिन्न २ लवण (Salts) आदि निरुपयोगी पदार्थ मूत्रपिंड (Kidneys) द्वारा मूत्र (Urine) के रूप में बाहर फेंके जाते हैं। इसी प्रकार पानी, कार्बन-डायॉक्साइड, मूत्रीय (Urea) आदि पदार्थों को पसीने के रूप में बाहर निकाल कर त्वचा भी मूत्रपिंड के काम में सहायता पहुँचाती है।

मूत्रविषयक इंद्रियाँ (Urinary organs) निम्नानुसार हैं।—(१) **मूत्र** नामक द्रव को तैयार करनेवाले मूत्रपिण्ड (Kidneys), (२) मूत्रपिंड से मूत्र नीचे बहा ले जानेवाले मूत्रवाहक (Ureters), (३) मूत्र एकत्र करनेवाली थैली याने

मूत्राशय (Urinary bladder) और (४) मूत्राशय से बाहर निकालनेवाली नलिका याने मूत्रनलिका (Urethra) ।

७५. **मूत्रपिण्ड** (Kidneys) **और मूत्रमार्ग** (Urinary passages)—**मूत्रपिण्ड** (Kidneys) दो हैं और उदरगह्वर में (Addominal cavity) मेरुदण्ड (Vertebral column) के दोनों ओर और गह्वर के ऊपरी और पिछली ओर रहते हैं। वे उदरान्तर्वेष्टन (Peritoneum) के पिछले भाग में चर्बी में जमे हुए हैं। इसलिए उन्हें सहसा किसी प्रकार का आघात सहना नहीं पडता। और वे अपनी जगह से हिल भी नहीं सकते। दाहिना मूत्र पिण्ड बाएं मूत्रपिण्ड की अपेक्षा जरा नीचे की ओर है। प्रत्येक मूत्रपिण्ड के ऊपरी भाग पर सुप्रारीनल (Suprarenal body) नामक एक नलिकारहित पिण्ड (Ductless gland) है। मूत्रपिण्ड का आकार काजू के बीज के समान और उसका रंग जरा ललाई लिये हुए है। उसकी लम्बाई लगभग ४ इंच तथा वजन लगभग ४॥ औंस रहता है। उसकी बाहरी किनार बहिर्गोल (Convex) और भीतरी किनार अंतर्गोल (Concave) रहती है। भीतरी बाजू में मध्यभाग में एक गढा सा (Hilum or Hilus) रहता है;

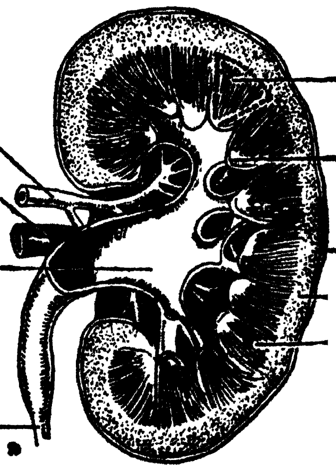


आकृति ५५ — **मूत्रपिंड** (Kidneys) **और उसकी रक्तवाहिनियाँ, मूत्रवाहक** (Ureter) **और मूत्राशय** (Bladder)
(आगे से दिखाई देनेवाला दृश्य)
१ मूत्रपिंड, २ मूत्रवाहक का कटिर (Pelvis), ३ मूत्रवाहक, ४ मूत्राशय, ५ मूत्रनलिका (Urethra) का प्रारम्भ, ६ मूत्रपिंड के ऊपर की ग्रन्थि (Suprarenal gland), ७ अधोमहाशिरा (Inferior vena cava), ८ महाधमनी (Aorta), ९ मूत्रपिंड की शिरा (Renal vein), ० मूत्रपिंड की धमनी (Renal artery).

उससे **मूत्रपिण्ड की धमनी** (Renal artery) और नाडीतन्तु भीतर प्रविष्ट होते हैं तथा **मूत्रपिण्ड की शिरा** (Renal vein) और **मूत्रवाहक** (Ureter) बाहर आते हैं। मूत्रवाहक लगभग १२ इंच लम्बा रहता है और मूत्रपिण्ड से निकलने वाला उसका ऊपरी मुँह काफी चौडा रहने के कारण उसे **मूत्रवाहक का कटिर** (Pelvis of the Ureter) कहते हैं। प्रत्येक मूत्रवाहक (Ureter) उदरगह्वर के पिछले भाग से नीचे उतरता है और कटिबन्ध के खोखले भाग (Pelvic cavity) में रहनेवाली **मूत्राशय** (Urinary bladder) नामक थैली में तिरछा होकर प्रविष्ट होता है। मूत्रपिंड में बननेवाला मूत्र (Urine) मूत्रवाहक में से मूत्राशय

में उतरता है और वहीं जमा होता रहता है। मूत्राशय (Urinary bladder) एक अंडाकृति पोली थैली है जो स्नायुओं की बनी हुई है। उसमें लगभग पाँच औंस मूत्र समाता है। उसके भीतरी ओर अन्तरत्वचा का आवरण रहता है। उसके पोले हिस्से के ऊपरी भाग में दोनों मूत्रवाहकों (Ureters) के मुँह हैं और निचले भाग में मूत्रनलिका (Urethra) का द्वार है। इस द्वार पर वर्तुलाकृति स्नायु का पट्टा (Sphincter) होने के कारण वह द्वार सदा बन्द रहता है। मूत्रपिण्ड (Kidney) से आनेवाले मूत्र के कारण जब मूत्राशय के बाजुओं पर भीतर से काफी दबाव पडता है तब यह द्वार हमारी इच्छा से खुलता है और भीतर का मूत्र मूत्रनलिका के (Urethra) मार्ग से बाहर फेंका जाता है।

७६. मूत्रपिंड की सूक्ष्म रचना (Structure of the Kidney) — मूत्रपिंड के बाहरी बहिर्गोल किनारे से भीतरी अन्तर्गोल किनारे तक यदि खडा भाग काटें (आकृति ५६ देखिये) तो भीतरी भाग के दो हिस्से दिखाई देंगे। उसका बाहरी भाग दानेदार (Granular और काला तथा भीतरी भाग जरा पहले की अपेक्षा फीके रंग का दीख पडेगा। बाहर के भाग को **कॉर्टेक्स** (Cortex) कहते हैं। यहीं मूत्र बनता है। भीतरी भाग को **मेड्यूला**

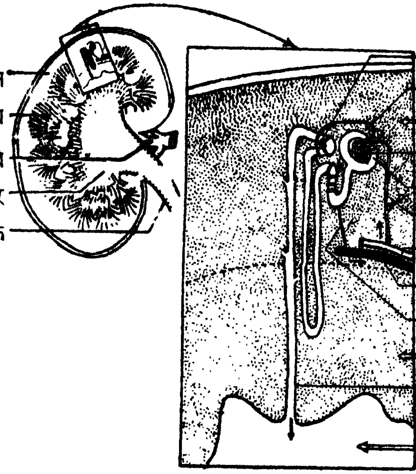


आकृति ५६ — **खडा काटा हुआ मूत्रपिंड**

(Medulla) कहते हैं। यह भाग अत्यंत सूक्ष्म नलिकाओं द्वारा बना होने के कारण उसपर अस्पष्ट लकीरें और उसमें **पिरामिड** (Pyramid) नामक त्रिकोणाकृति हिस्से हैं। प्रत्येक त्रिकोण की चौडाई बाहर की ओर और छोटा छोर भीतर की ओर रहता है। मूत्रवाहक (Ureter) का **कटिर** (Pelvis) नामक जो ऊपर का चौडा भाग रहता है उससे **केलिसीज** (Calyces) नामक शाखाएँ फूटती हैं और प्रत्येक शाखा के कटोरी के समान गढे में ऊपर वर्णन किये गये पिरामिड का छोटा छोर गया हुआ दिखाई देता है।

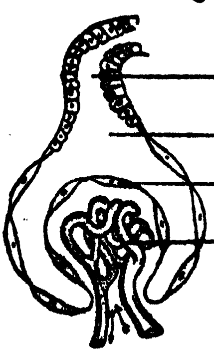
मूत्रपिंड के अतिसूक्ष्म कटे हुए भाग को लेकर सूक्ष्मदर्शक यंत्र के नीचे यदि देखा जाय तो हमें दिखाई देगा कि मूत्रपिंड असंख्य सूक्ष्म पोली नलिकाओं का बना हुआ है और

उसमें नाडीतन्तु, संयोगी पेशीजाल (Connective tissue) और सूक्ष्म केशवाहिनियों का जाल है। मूत्रपिंड की धमनी (Renal artery) के मूत्रपिंड में प्रविष्ट होने पर उसकी अनेक शाखाएँ और उपशाखाएँ फूटती जाती हैं। प्रत्येक उपशाखा के अन्त में **ग्लोमेरुलस** (Glomerulus) नामक केशवाहिनियों का एक गुच्छा तैयार होता है। और उसपर अतिशय पतले पर्दे की **थैली** (Capsule) टोपी के समान बैठी रहती है और उस थैली का मुँह एक पोली नलिका से जुडा रहता है। केशवाहिनियों का गुच्छा



आकृति ५७–**सूक्ष्मदर्शक यंत्र से दिखलाई देनेवाली मूत्रपिंड की सूक्ष्म रचना** (रचनात्मक, Diagramatic), इसमें सूक्ष्म मूत्रनलिका और रक्तवाहिनियाँ मुख्यतः दिखलाई देती हैं।

और उसपर जमी हुई थैली मिल कर **मॅलपिघिअन बॉडी** (Malpighian body) कहलाता है। यह भाग प्रायः मूत्रपिंड के कॉर्टेक्स में ही रहता है और वहीं मूत्रीय (Urea), मूत्राम्ल (Uric acid) आदि निरुपयोगी पदार्थ केशवाहिनियों से अलग किये जाते हैं और उपर वर्णन की गयी थैली में (Capsule) डाल दिये जाते हैं। थैली में से निकलने-वाली सूक्ष्म मूत्रनलिका (Urinry tubule) मूत्रपिंड के बाहरी भाग में (Cortex) पहिले बहुत से चक्कर लेती है परंतु फिर



आकृति ५८
मॅल्पीघिअन बॉडी

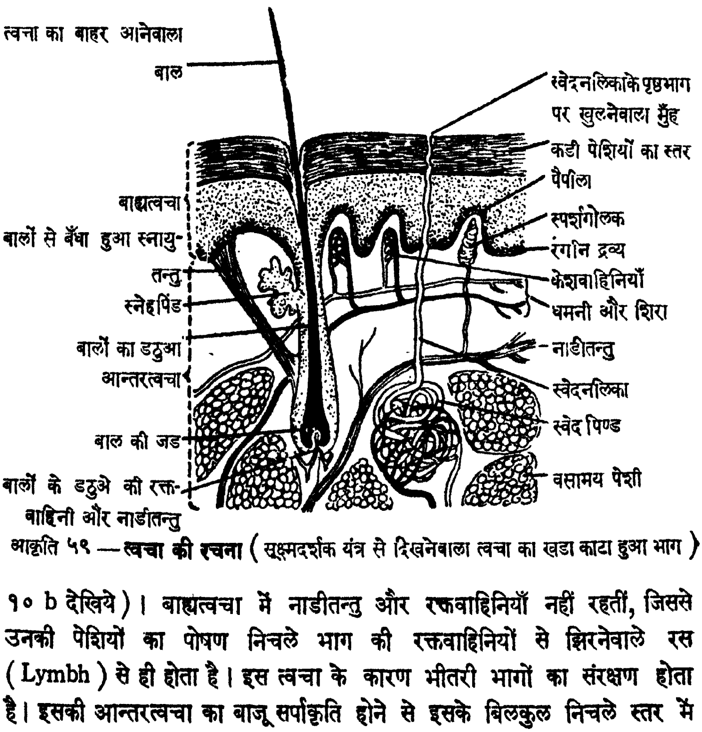
भीतरी भाग में (Medulla) जाने पर सीधी होकर अन्त में पिरामिड के छोर में मूत्रपिंड के **कटिर** में (Pelvis) खुलती है। मॅल्पीघियन बॉडी में पृथक होनेवाले मूत्र इस रीति से मूत्रपिंड के **कटिर** में आकर छोड़ा जाता है। मूत्रपिंड की सूक्ष्म केशवाहिनियाँ (Blood capillaries) फिर एकत्र होकर मूत्रपिंड की शिरा को बनाती हैं। और उसके रक्त में कार्बन-डायॉक्साइड होने के कारण यद्यपि वह अशुद्ध समझी जाती है फिर भी मूत्राम्ल (Uric acid) आदि पदार्थ चूँकि उसमें से निकल गये हैं इसलिए एक प्रकार से वह अधिक शुद्ध रहती है।

७७. मूत्रपिंड का कार्य (Function of the kidney)—प्रोटीन, कर्बोज (Carbohydrate) और स्निग्ध पदार्थों (Fats) के चयापचय से जो निरुपयोगी द्रव्य तैयार होते हैं वे मूत्रपिंड की धमनी के साथ ही मूत्रपिंड में प्रविष्ट होते हैं; मूत्रपिंड धमनी की केशवाहिनियों का आवरण तथा केशवाहिनियों से घिरी रहनेवाली थैली (Capsule) का आवरण इतना पतला रहता है कि केशवाहिनियों में रहनेवाले अशुद्ध पदार्थ पृथक होकर इस थैली में पहुँच जाते हैं और वहाँ से फिर मूत्रनलिका में से (Urinary tubules) मूत्रपिंड के कटिर में (Pelvis) उतरते हैं। अशुद्ध द्रव्य का रक्त में से पृथक होकर मूत्र बनने का कार्य हमेशा इस प्रकार २४ घंटे जारी रहता है और हर कुछ सेकन्डों में एक २ बूँद मूत्र मूत्रवाहक से (Ureter) मूत्राशय में उतर कर वहीं जमा होता रहता है। मूत्राशय जब पूरा भर जाता है तब उसके निचले द्वार पर रहनेवाला वर्तुलाकृति स्नायु हमारे इच्छानुसार शिथिल होता है और मूत्राशय के सिकुड़ने के कारण उसके भीतर का मूत्र मूत्रनलिका द्वारा बाहर निकल जाता है। २४ घंटे में लगभग ५० औंस मूत्र तैयार होता है। परिस्थिति के अनुसार यह मिकदार कम ज्यादा हो सकता है। उदाहरणार्थ, पानी या चाय के समान पेय अधिक पीने से पेशाब अधिक होगा। उसी प्रकार जाडे के दिनों में त्वचा के नीचे रक्तवाहिनियों के सिकुडे रहने से बहुत कम पसीना आता है। इसलिए ऐसी ऋतु में अधिक मूत्र तैयार होता है। इसके विपरीत ग्रीष्म ऋतु में ज्यादा पसीना आने के कारण पेशाब कम होता है। इससे यह जाहीर होता है कि त्वचा और मूत्रपिंड, मूत्रीय (Urea), पानी आदि निरुपयोगी पदार्थों को शरीर के बाहर फेंकने में एक दूसरे की परस्पर सहायता करते हैं।

मूत्र (Urine) जरा पीले रंग का द्रव पदार्थ है। उसकी रासायनिक प्रतिक्रिया आम्ल (Acid in reaction) रहती है। उसका विशिष्ट गुरुत्व (Specific gravity) १०१० से १०२५ तक रहता है। उसमें मूत्रीय (Urea), मूत्राम्ल (Uric acid) कार्बोनेट के रूप में कार्बन-डायॉक्साइड, तथा सोडियम, पोटैशियम, कैलशियम और मैग्नेशियम का क्लोराइड, सल्फेट और फॉस्फेट जैसे लवण, आदि पदार्थ रहते हैं।

७८. त्वचा (Skin)—यह शरीर का बाहरी आवरण है। इसके **बाह्यत्वचा** (Epidermis) और **आंतरत्वचा** (Dermis or true skin) नाम के दो भाग हैं।

बाह्यत्वचा (Epidermis) बाहरी आवरण होने के कारण मोटी और मजबूत रहती हैं। जलने पर जब छाला आता है तब यह बाहरी त्वचा भीतरी त्वचा से अलग होकर ऊपर उठ आती है। बाह्यत्वचा की मोटाई भिन्न २ भाग में कम अधिक रहती है। पाँव और हाथ के तलुवों की बाह्यत्वचा अधिक घिसी जाने के कारण सहज ही मोटी रहती है। यह पेशियों (Cells) के अनेक स्तरों से बनती है। ऊपरी स्तर की पेशियाँ चपटी होती हैं और सींग के समान कडे पदार्थ की बनी रहती हैं। वे छीज कर धीरे २ गल जाती हैं और उनके स्थान को निचले स्तर की नयी पेशियाँ भर देती हैं। नीचे के स्तर की पेशियाँ चपटी न होकर घन (Cubical) रहती हैं (आकृति



आकृति ५९ — **त्वचा की रचना** (सूक्ष्मदर्शक यंत्र से दिखनेवाला त्वचा का खडा काटा हुआ भाग)

१० b देखिये)। बाह्यत्वचा में नाडीतन्तु और रक्तवाहिनियाँ नहीं रहतीं, जिससे उनकी पेशियों का पोषण निचले भाग की रक्तवाहिनियों से झिरनेवाले रस (Lymbh) से ही होता है। इस त्वचा के कारण भीतरी भागों का संरक्षण होता है। इसकी आन्तरत्वचा का बाजू सर्पाकृति होने से इसके बिलकुल निचले स्तर में एक प्रकार का कालासा **रंगीन द्रव्य** (Pigment) रहता है। आकृति ५९ देखिए।) उसके कम-ज्यादा होने पर मनुष्य का गोरा या कालापन निर्भर रहता है।

आन्तरत्वचा अथवा सच्ची त्वचा (Dermis or true skin)— यह बाह्यत्वचा के भीतरी ओर है। उसमें सफेद तन्तुमय (Fibrous) और लचीले पेशीजाल (Elastic tissue), केशवाहिनियाँ (Blood capillaries), रसवाहिनियाँ

(Lymphatics), नाडीतन्तु (Nerves), **स्वेदपिंड** (Sweat glands), **स्नेहपिंड** (Sebaceous glands), बालों की जडें और कुछ स्नायु रहते हैं। बाह्यत्वचा के निचले भाग के अनुसार आन्तरत्वचा का ऊपरी भाग भी सर्पाकृति रहता है। इसमें उठे भाग को **पैपीली** (Papillæ) कहते हैं। इसमें केशवाहिनियाँ (Blood capillaries) और स्पर्शज्ञान करनेवाले नाडीतन्तु के छोर रहते हैं; कुछ भागों में, विशेष कर हाथों के तलुओं और अँगुलियों के छोरों में, नाडीतन्तुओं के छोर सूक्ष्मदर्शक यन्त्र में से देखने पर उठे हुए से दिखते हैं और चूँकि इन्हीं के जरिये स्पर्शज्ञान होता है इसलिये इन्हें **स्पर्शगोलक** (Touch corpuscles) कहते हैं। त्वचा के निचले भाग में चर्बी का स्तर रहने के कारण शरीर की गर्मी बाहर नहीं जा पाती।

७९. **स्वेदपिंड** (Sweat glands)—ये त्वचा के निचले भाग में रहते हैं। प्रत्येक पिंड सूक्ष्म रक्तवाहिनियों से वेष्टित एक प्रकार की नलिका है। उससे निकलनेवाली **स्वेदनालिका** (Sweat duct) ऊपर जाकर त्वचा के पृष्ठभाग पर खुलती है। हमें अपने शरीर की चमडी के ऊपर जो बहुत से छेद दिखलाई देते हैं वे इन स्वेद-नलिकाओं के मुँह ही हैं। आन्तरत्वचा से ऊपर जाते समय ये स्वेदनलिकाएँ सीधी रहती हैं; परन्तु बाह्यत्वचा में जाते समय सर्पाकृति बन जाती हैं। स्वेदपिंड में केशवाहिनियों का जो जाल रहता है उसमें स्वेदपिंड की पेशियाँ (Cells) अशुद्ध पदार्थ पृथक करती हैं और पसीने के रूप में उन्हें स्वेदनलिका द्वारा शरीर के बाहर फेंक देती हैं। जरासा ही पसीना आनेपर शरीर की गर्मी के कारण वह शीघ्र ही भाफ बनकर उड जाता है। इस लिए हमें पसीना आया है या नहीं, इसीका भान नहीं रहता (Insensible perspiration)। परन्तु पसीना खूब आता है तब हमें फौरन ज्ञात हो जाता है (Sensible perspiration)।

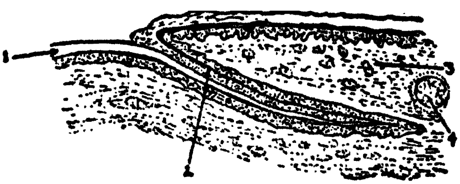
स्वेद या पसीने की रासायनिक प्रतिक्रिया आम्ल (Acid in reaction) होती है और वह स्वाद में खारा लगता है। उसमें मूत्रीय (Urea), कार्बोनिक-ॲसिड-वायु, नमक या सोडियम क्लोराइड और पानी नामक पदार्थ रहते हैं। जब ऊष्ण वातावरण होता है तब स्वेदपिंड की केशवाहिनियाँ गर्मी के कारण फैलती हैं जिससे उनमें अधिक रक्त बहने लगता है, इसलिए ज्यादा पसीना तैयार होकर चमडी के ऊपर आता है और चमडी की गर्मी से उसकी भाफ बन जाती है। इस वजह से आसपास की ऊष्ण हवा की अपेक्षा हमारी चमडी ज्यादा ठंडी रहती है। इसके विपरीत, ठंडी हवा में रक्तवाहिनियाँ सिकुडती हैं जिससे पसीना बहुत थोडा आता है और शरीर की ऊष्णता बहुत कम परिमाण में बाहर निकलती है। बाहर की गर्मी जितनी कम ज्यादा होगी उतने परिमाण में पसीना भी कम ज्यादा आयेगा। इस तरह स्वेदपिंड शरीर की ऊष्णता के नियमन (Regulation) करने में उपयोगी सिद्ध होते हैं। त्वचा में से निरुपयोगी पदार्थ शरीर के बाहर फेंके जाते हैं और इस काम में त्वचा का मूत्रपिंडों को सहयोग प्राप्त होता है। यदि शरीर पर पसीने को बिना पोंछे बहने दिया गया तो उसपर धूल जमेगी

और उससे त्वचा पर रहनेवाली स्वेदनलिकाओं के छेद बन्द हो जायेंगे जिससे निरुपयोगी पदार्थों को बाहर फेंकने और मौसमी वातावरण के अनुसार शरीर के तापमान को कायम रखने के काम में बाधा पैदा हो जाएगी। इसलिए त्वचा को सदा धो-पोंछ कर स्वच्छ रखने की आवश्यकता पडती है।

८०. केश — ये सींग के समान कडे पदार्थ के बने होते हैं। बाह्यत्वचा (Epidermis) से इनकी उत्पत्ति होती है। बाह्यत्वचा का ही एक **रन्ध्र** (Hair-follicle) आन्तरत्वचा तक गया हुआ है। उसके नीचे रहनेवाले केस के मोटे हिस्से को केश की **जड** (Root) कहते हैं। जड की निचली ओर सूक्ष्म रक्तवाहिनियाँ और नाडीतन्तु जुडे हुए हैं। केश की जड से एक सूक्ष्म स्नायु जुडा रहता है, शीत या भय के कारण इस स्नायु का आकुंचन होता है। उसीसे केश या बाल खडे हो जाते हैं। जड से निकल कर केश का जो काला भाग चमडी के बाहर आता है उसे **डठुआ** (Stem) कहते हैं। केशों से सौंदर्य बढता है, ठंड से रक्षा होती है और स्पर्शज्ञान में सहायता मिलती है। नाक और कान में जो बाल या केश रहते हैं उनके कारण बाहर की धूल के कण भीतर नहीं जाने पाते।

स्नेहपिंड (Sebaceous glands) — ये सूक्ष्म ग्रन्थियाँ आंतरत्वचा में केश के बाजू ही में रहती हैं। इनसे तेल के समान एक पदार्थ (Sebum) निकलकर त्वचा पर फैलता है। इसीसे केश और त्वचा कोमल तथा चमकदार रहते हैं।

८१. नाखून (Nails) – बाह्यत्वचा से बढनेवाले नाखून भी केश के समान ही सींग जैसे कडे पदार्थ के बने रहते हैं। नाखून उन्हींके लिए बने हुए स्थानों में (Bed of nail) मजबूत जमे रहते हैं। नाखूनों की बाढ उनकी जडों और उन्हींके नीचे के स्तर से रहती है।



आकृति ६० — **नाखून की रचना**

(सूक्ष्मदर्शक यंत्र से दिखलाई देनेवाले नाखून का खडा काटा हुआ भाग।)

1 नाखून, 2 नाखून की दरार (Nail groove), 3 नाखून का स्थान (Bed of nail), 4 रक्तवाहिनी (आडी काटी गयी)।

८२. त्वचा के कार्य (Functions of the skin) —

(१) **स्पर्शज्ञान** — त्वचा हमारी स्पर्शेंद्रिय है। स्पर्श, वेदना, ऊष्णता और शीत अनुभव करनेवाले नाडी-तन्तु त्वचा के नीचे सब जगह फैले हुए हैं। इसलिए हमें बाह्य वस्तुओं का ज्ञान होता रहता है।

(२) **संरक्षण**—त्वचा सारे शरीर को वेष्टित किये याने ढँके हुए है जिससे भीतरी अंगों का, घावों और जाडे तथा गर्मी से रक्षण होता रहता है। उनमें रोगकीटाणु (Germs) सहसा प्रविष्ट नहीं हो पाते ; इसके अतिरिक्त त्वचा में के स्पर्शज्ञान के कारण शरीर के रक्षण में मदद मिलती है।

(३) **अभिशोषण**—शरीर के ऊपर जो तेल आदि की मालिश की जाती है उससे तेल आदि त्वचा के द्वारा भीतर सोख लिए जाते हैं, इससे मरहम और कॉडलीवर आइल की ऊपरी मालिश से भी शरीर को लाभ हो सकता है।

(४) **स्निग्ध (तैल) द्रव्यों का स्राव** (Secretion of sebum)—इससे केश और त्वचा नरम और चमकीले रहते है।

(५) **व्हिटॅमिन डी तैयार करना**—हड्डियों की वृद्धि तथा रोगों के प्रतिकार के लिए आवश्यक व्हिटॅमिन डी सूर्यप्रकाश की सहायता से त्वचा में तैयार होता है।

(६) **स्वेद का उत्सर्जन** (Excretion of sweat)— इससे मूत्रीय (Urea), कार्बोनिक ॲसिड वायु, लवण और पानी शरीर के बाहर फेंके जाते हैं। इन द्रव्यों को निकाल शरीर से बाहर करने के कार्य में त्वचा मूत्रपिंड की सहायता करती है।

(७) **शरीर का तापमान कायम रखना**—हमारे आसपास की हवा अधिक गर्म होती है तो पसीना अधिक उत्पन्न होता है और उसकी भाफ बन जाती है जिससे शरीर ठंडा रहता है। यदि हमारे आसपास की हवा ठंडी हुई तो त्वचा के रक्तवाहिनियों का आकुंचन होता है जिससे शरीर की ऊष्णता शरीर ही में रक्षित रहती है।

८३. शरीर की ऊष्णता का नियमन (Heat regulation)— बाहरी वातावरण कितना भी ठंडा या गरम रहे, पर शरीर की गर्मी सदा ९७° से ९८.४° फैरेनहाइट ही रहती है। शरीर में लगातार ऊष्णता उत्पन्न होती रहती है और उसमेंसे कुछ शरीर के बाहर जाती रहती है। ये दोनों कार्य इस तरह से होते हैं कि उससे शरीर की ऊष्णता हमेशा निश्चित डिग्री तक रहती है।

ऊष्णता का उत्पादन—शरीर की पेशियों में कर्बोज (Carbohydrates) और स्निग्ध पदार्थों (Fats) का लगातर ज्वलन होने के कारण उष्णता उत्पन्न होती है। कर्बोज और स्निग्ध पदार्थों के अधिक परिमाण में खाने और व्यायाम करने से शरीर में अधिक ऊष्णता पैदा की जा सकती है।

ऊष्णता का विभाजन—अभिसरण क्रिया के कारण शरीर के सब भागों में रक्त लगातार दौडता रहता है और पेशियों में के ज्वलन से पैदा हुई ऊष्णता उससे सब

विभागों में बाँटी जाकर विभिन्न विभागों का तापमान एक जैसा और निश्चित अंदाजन ९७° से ९८·४° फैरेनहाइट इतना रहा करता है।

ऊष्णता का विसर्जन कई प्रकार होता है—

(१) मूत्र, मल आदि शरीर के बाहर फेंके जानेवाले उत्सर्ग (Excreta) मार्ग से ऊष्णता बाहर जाती है।

(२) उच्छ्वास के द्वारा जो हवा बाहर छोडी जाती है उसके साथ भी ऊष्णता जाती है क्योंकि इस हवा का तापमान अधिक रहता है और उसमें जो पानी की भाफ रहती है वह भी शरीर की ऊष्णता से ही बनती है।

(३) बाहरी हवा यदि ठंडी रहती है तो शरीर के पृष्ठ (ऊपरी) भाग से ऊष्णता हवा में जाती है।

(४) शरीर की त्वचा पर जब पसीने के पानी की भाफ बनती है तो उसके लिए शरीर की ऊष्णता ही काम में लायी जाती है।

ऊष्णता का नियमन—इस रीति से शरीर के बाहर जानेवाली उष्णता को हम अंगों पर गरम कपडा पहनकर बचा सकते हैं। रक्तवाहिनियों और स्वेदपिंड में जानेवाले नाड़ी-तन्तु (Vasomotor and secretory nerves) हैं। उनकी ओर से नाडीसंस्था शरीर में ऊष्णता कायम रखने का काम नियमित रूप से करती है। बाहरी तापमान शरीर की अपेक्षा कम होते ही नाडीतन्तुओं के नियंत्रण के कारण त्वचा की रक्तवाहिनियाँ सिकुड जाती हैं और इस तरह शरीर की ऊष्णता बाहर नहीं जाने पाती। ऐसे समय पसीना भी कम परिमाण में उत्पन्न होता है; जिससे उनकी भाफ बनने के लिए अधिक ऊष्णता की आवश्यकता नहीं पडती। बाहर की हवा जब गर्म हो जाती है तब ये रक्तवाहिनियाँ फैलती हैं और अधिक परिमाण में रक्त पहुँचने के कारण त्वचा की अधिक ऊष्णता नहीं सी हो जाती है। ऐसे समय पसीना भी अधिक परिमाण में पैदा होता है जिससे उसकी भाफ बनाने के लिए जब शरीर की ऊष्णता का उपयोग होता है तब शरीर ठंडा रहता है।

इसके अतिरिक्त मस्तिष्क में **ऊष्णता नियामक केन्द्र** (Heat regulating centre) है, जिससे ये सब क्रियाएँ नियमित रूप से संचालित होती रहती है। संक्षेप में (१) ऊष्णता नियामक केन्द्र (Heat regulating centre), (२) रक्तवाहिनियों के नाड़ीतन्तु (Vasomotor nerves) और (३) आवश्यकतानुसार कम ज्यादा पसीना पैदा करनेवाले स्वेदपिंड, इन तीनों के कार्य से हमारे शरीर का तापमान नियमित रहता है। इनकी क्रिया को हम योग्य वस्त्र, भोजन और व्यायाम द्वारा सहायता पहुँचाते हैं।

प्रश्न

१. त्वचा के भिन्न २ कार्यों का वर्णन कीजिये। (बम्बई वि. वि. १९२७, ३५, ३६, ४०, ४३, ४४, ४६, ४७).

२. मूत्रपिंड के कार्य का वर्णन कीजिये। (बम्बई वि. वि. १९२७).

३. मूत्रपिंड का वर्णन करके उसकी सूक्ष्म रचना के विषय में समझाकर लिखिये। (बम्बई वि. वि. १९३०, एस्. एस्. सी. १९५८).

४. मूत्रपिंड की रचना और कार्य का वर्णन कीजिये। (बम्बई वि. वि. १९२७, १९३१, १९३३, १९३६, १९३८, १९३९, १९४१, १९४८, १९५४, १९५५, १९५८).

५. मल-विसर्जन (Excretion) कार्य का संक्षेप में वर्णन कीजिये। बम्बई वि. वि. १९३२).

६. शरीर की ऊष्णता (Regulation of heat) किस तरह नियमित रखी जाता है; इसे संक्षेप में लिखिये। (बम्बई वि. वि. १९३२, एस्. एस्. सी. १९४९, १९५१, १९५३, १९५८).

७. स्वेदपिंड (Sweat glands) के विषय में आप क्या जानते है? (बम्बई वि. वि. १९३३, १९५४, १९९५६).

८. शरीर में मल विसर्जन करनेवाले अवयव (Excretory organs) कौन कौन से हैं? (बम्बई वि. वि. १९३३, १९४०, एस्. एस्. सी. १९५५). उनमें से प्रत्येक के द्वारा कौन से उत्सर्जक पदार्थ शरीर के बाहर फेंके जाते है (बम्बई वि. वि. १९४०, ४५).

९. मूत्र तैयार करनेवाली इन्द्रिय और उसे बाहर फेंकनेवाली इन्द्रिय का वर्णन कीजिये। (बम्बई वि. वि. १९३७, एस्. एस्. सी. १९५२, १९५८).

१०. मूत्र की रासायनिक बनावट लिखिये। (१९३८, १९४८, एस्. एस्. सी. १९५२, ५३).

११. त्वचा की रचना और उसके कार्य का वर्णन कीजिये। (बम्बई वि. वि. १९३७, ४३, ४७, एस्. एस्. सी. १९५१, १९५७).

१२. मूत्राशय (Urinary bladder) के सम्बध में आप क्या जानते हैं? (बम्बई वि. वि. १९४२, एस्. एस्. सी. १९५५, १९५६, १९५७).

अध्याय छटा

अस्थि-प्रणाली (The Bony System)

८४. अपने शरीर के अंग मृदु और कोमल हैं। अतः उन्हें आकार और आधार देने के लिए प्रकृति ने अस्थियों की योजना की है। परंतु इसके लिए यदि पूरे शरीर में एक ही लम्बी, लचीली और बडी हड्डी होती तो शरीर की स्थिति किसी निश्चल स्तम्भ (खम्भ) के समान होती और तब शरीर की हलचल की क्रियाएँ कठिन हो जातीं। शरीर की हलचल जारी रखने के लिए हमारे शरीर में छोटी-बडी सब मिलाकर २१३ अस्थियाँ हैं। अस्थियों का कार्य निम्नानुसार है—

१. उनसे शरीर को बल और स्थिरता की प्राप्ति होती है।

२. शरीर के मृदु भागों (अंगों) को आधार मिलता है।

३. उनसे शरीर को आकार प्राप्त होता है।

४. उनसे कोमल भागों (अंगों) का संरक्षण होता है; जैसे मस्तिष्क और हृदय के समान महत्त्वपूर्ण कोमल अंग हड्डियों की मजबूत पेटियों के अन्दर स्थित हैं।

५. स्नायुओं के दोनों छोर हड्डियों से ही बँधे हुए हैं। उससे स्नायु के सिकुडने से हड्डी खींची जाकर हलचल पैदा होती है।

६. हड्डियों से ही संधियाँ (Joints) तैयार होती हैं और उनका स्नायुओं के लिए 'हत्था' (Lever) के समान उपयोग होता है। इन दोनों कारणों से स्नायुओं का आकुंचन होने पर शरीर के भिन्न २ भाग हिल–डुल सकते हैं।

७. हड्डियों के गूदे से लाल रक्तकण (Red blood corpuscles) और कुछ जातियों की श्वेत पेशियाँ तैयार होती हैं।

हड्डियाँ भिन्न २ आकार की होती हैं और उनके मुख्यतः चार प्रकार हैं-

१. लम्बी हड्डियाँ; जैसे जंघा और बाहु की।

२. छोटी हड्डियाँ; उदाहरणार्थ टखने और कलाई की हड्डियाँ।

३. चपटी हड्डियाँ; जैसे सिर की खोपडी की हड्डियाँ।

४. आडी टेढी हड्डियाँ; जैसे रीढ और कटिबंध (कूल्हे) की हड्डियाँ।

शरीर की हड्डियों के मुख्यतः तीन विभाग किये जाते हैं—

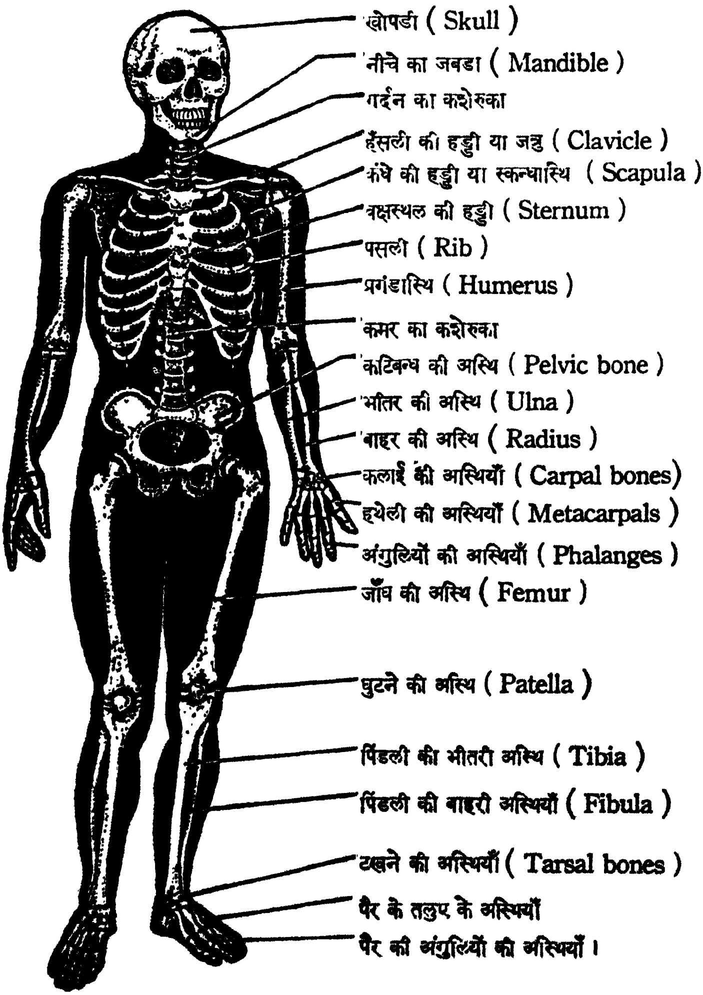
१. चेहेरे और शिर की हड्डियाँ अथवा खोपडी।

२. धड और गर्दन की हड्डियाँ (रीढ की हड्डियाँ इसी विभाग के अंतर्गत आती हैं।

३. हाथ-पाँव की हड्डियाँ।

८५ (१). **शिर और चेहरे की हड्डियाँ** (Skull bones)— इनकी कुल संख्या २२ है। इनसे मस्तिष्क, नेत्र और कान के समान नाजुक अवयवों का संरक्षण होता है।

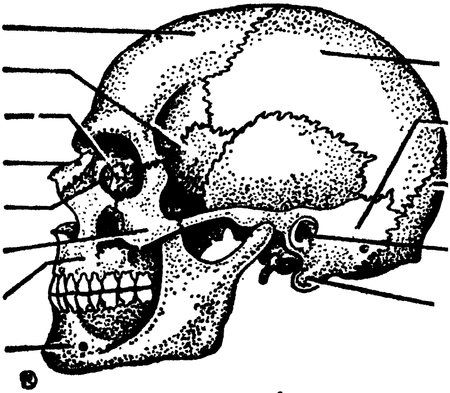
(अ) **शिर अथवा खोपडी की हड्डियों** (Cranium) की संख्या ८ है। इनके करवत के समान दाँत होने के कारण ये एक दूसरे में मजबूती से बैठा हुई हैं। इनमें बिलकुल ही हलचल नहीं हो सकती। जब बच्चा पैदा होता है तब कुछ दिन तक ये हड्डियाँ परस्पर एक दूसरे में मजबूती से जकडी नहीं रहतीं और जिसे हम तालू कहते हैं, उस स्थान के कोमल भाग पर तो कम से कम बच्चे के दो वर्ष के होने तक हम हाथ से



आकृति ६१ — अस्थि-प्रणाली
(सामने से देखने पर)

स्पर्श भी कर सकते हैं। मस्तिष्क से जानेवाली शुद्धरक्तवाहिनी की धुकधुकी का अनुभव हम तालू पर, जिसे ब्रह्मरंध्र भी कहते हैं, हाथ रखकर कर सकते हैं। यह स्थान चूंकि बहुत नाजुक होता है इसलिए यह जब तक भर नहीं जाता तब तक इसकी विशेष सावधानी रखी जाती है।

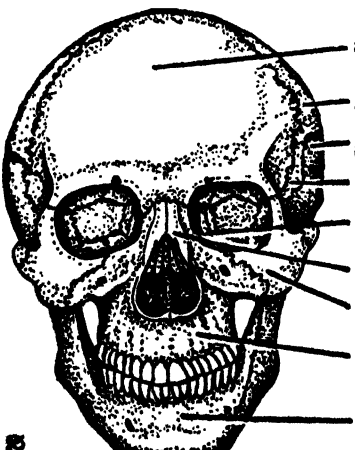
एक **कपाल की हड्डी** (Frontal bone) — यह आगे की ओर होती है और बाजू की हड्डियों से पिछले हिस्से में जुडी रहती है।



आकृति ६२ — **सिर की खोपडी** (बाजूसे देखने पर)

दो **बाजू की हड्डियाँ** (Parietal bones) — ये कनपटी की हड्डियों के ऊपर रहती हैं। इनसे खोपडी का ऊपरी और बाजू का हिस्सा बनता है।

एक **पिछली हड्डी** (Occipital bone) — यह उपर वर्णन की गई बाजू की हड्डियों के पीछे रहती है। इससे खोपडी का निचला और पिछला भाग बनता है। खोपडी



आकृति ६१ — **खोपडी** (सामने से देखने पर)

के निचले भाग में स्थित इस हड्डी में एक बड़ा छेद रहता है जिससे होकर पृष्ठवंश-रज्जु (Spinal cord) मेरुदण्ड में उतरती है। गर्दन का पहला कशेरुका इसके नीचे की ओर जुडाकर बिठाया होता है।

दो **कनपटी की हड्डियाँ** (Temporal bones) – इनमें कर्णेन्द्रिय का नाजुक और महत्त्वपूर्ण भाग रहता है। इसके निम्न भाग में निचले जबडे की हड्डी जुडी रहती है।

एक **चमगीदड के आकार की हड्डी** (Sphenoid bone) — यह पंख फैलाए हुए चमगीदड के आकार की होती है और खोपडी के निचले भाग में जमी रहती है।

एक **छेदोंवाली हड्डी** — सच्छिद्रास्थि, (Ethmoid bone) — इसमें स्पंज के समान छेद रहते हैं, जिनकी सहायता से नाक के छेद का ऊपरी हिस्सा और नेत्र के गढे का भीतर हिस्सा तैयार होता है।

(आ) **चेहरे की हड्डियाँ** (Bones of the face) — इनकी संख्या १४ है। इनमें निचले जबडे के हड्डी के सिवा शेष सब हड्डियाँ परस्पर अचल संधियों (Immovable joints) से निम्नानुसार जुडी हुई हैं।—

दो **ऊपर के जबडे की हड्डियाँ** (Superior maxillary bones) — इनसे मुख-गह्वर का ऊपरी भाग बनता है।

दो **तालू के ऊपर की हड्डियाँ** — (Palatal bones) — जबडे की हड्डियों से मुख गह्वर (भीतरी मुँह) का जो ऊपरी भाग बनता है उसीका पिछला भाग याने तालु इन दो हड्डियों से बना है।

दो **नासिकास्थियाँ** (Nasal bones) — ये कपाल के नीचे हैं। इससे नासिका का ऊपरी भाग तैयार होता है।

दो **अश्रुपिण्ड की हड्डियाँ** (Lacrymal bones) — उनकी प्रत्येक हड्डी छोटी होती है। ये आँखों के गढे के भीतरी हिस्से में रहती हैं। इन हड्डियों में रहनेवाले मार्ग के द्वारा ही आँखों से नाक की ओर आँसू ले जानेवाली अश्रुनलिका जाती हैं।

दो **शंखाकृति हड्डियाँ** (Inferior turbinate bones) — ये प्रत्येक नासिकाछिद्र (गुहा) की बाहरी दीवारों से स्पर्श करती है।

एक **नाक के पर्देवाली या फाराकृति हड्डी** (Vomer bones) – इसका आकार हल के समान रहता है। इससे नासिका के छेदों के बीच के पर्दे का पिछला भाग तैयार होता है।

दो **कपोलास्थियाँ** (Zygomatic or Cheek bones) — इन हड्डियों से कपोल उठे हुए रहते हैं।

एक **निचले जबडे की हड्डी** (Mandible or inferior maxillary bone) — इस हड्डी में नीचे के दाँतों की कतार जमी रहती है। चेहरे की हड्डियों में यही हिलनेवाली है। कनपटी की हड्डी से उसकी हिलनेवाली चूलदार संधि तैयार होती है। इसका आकार

U इस अंग्रेजी अक्षर जैसा होता है। इसकी हलचल के कारण ही भोजन को अच्छी तरह चबाया जा सकता है।

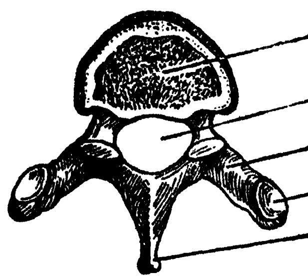
८६. (२). धड़ और गर्दन की हड्डियाँ—गर्दन की हड्डी (कंठिकास्थि, Hyoid bone), मेरुदण्ड अथवा कशेरुकों की माला (Vertebral column), २४ पसलियाँ (Ribs) और एक वक्षस्थल (छाती) की हड्डी (Breast bone)—इन सब हड्डियोंसे मिलकर यह भाग तैयार होता है।

मेरुदण्ड के कशेरुकों की माला (Vertebral column)—मेरुदण्ड की हड्डियों (कशेरुकों) की रचना इतनी सुंदर तरह से हुई है कि उससे शरीर को पूर्ण आधार मिलने के साथ ही उसकी हलचलसम्बंधी समस्त क्रियाएँ आसानी से हो सकती हैं। मेरुदण्ड के कशेरुकों की कड़ियाँ एक दूसरे पर जमी हुई हैं। ये छोटी छोटी ३३ हड्डियाँ हैं। रीढ की प्रत्येक हड्डी का नाम **कशेरुका** (Vertebra) है। दो कशेरुकों के बीच में लसलसी कूर्चिका का एक टुकडा रहता है जिससे दो कशेरुके परस्पर अस्थि-बन्धन से जुडे रहते हैं।

एक सामान्य कशेरुके (Typical vertebra) की रचना नीचे लिखे अनुसार है—

१. इसका अगला भाग मोटा, चकती के समान, भरा हुआ रहता है जिसे कशेरुके का **मुख्य शरीर** अथवा अंग (Body) कहते हैं। सब कशेरुकों का यह भाग एक दूसरे पर इस तरह जमा हुआ रहता है कि उससे शरीर को पूर्ण आधार प्राप्त हो जाता है।

अ



आकृति ६४ अ—पीठ का कशेरुका (Dorsal vertebra) (ऊपर से देखने पर)

ब



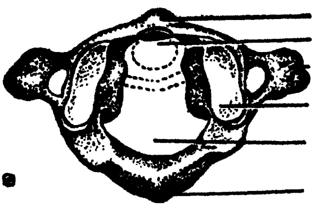
आकृति ६४ ब—पीठ का कशेरुका (दाहिनी बाजू से देखने पर)

२. कशेरुके के पीछे **कमान** (Arch) रहती है, जिससे प्रत्येक कशेरुके में एक पोला भाग तैयार हो जाता है; जिसके बीच से पृष्ठवंशरज्जु जाती है।

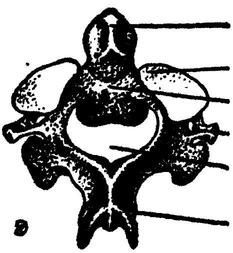
३. कमान के दोनों ओर से दो **आडे उभार** (Transverse processes), जिन्हें प्रवर्धन कहते हैं, गये हुए हैं।

४. कमान के पिछले हिस्से से एक प्रवर्धन (Spinous process) निकलता है। पीठ के मध्य भाग में ऊपर से नीचे हाथ फेरते समय यह प्रवर्धन हाथ से सहज ही स्पर्श किया जा सकता है। ऊपर वर्णन किये गये इन तीनों प्रवर्धनों से स्नायुबन्धन और अस्थि-बन्धन बँधे हुए है।

गर्दन का पहला कशेरुका शेष कशेरुकों से भिन्न होता है। यह अंगूठी की तरह है। इसके पीछे प्रवर्धन नहीं होता और न अंग ही। शिर इसी कशेरुके पर स्थित और तुला है। इसी लिए इसे **शिरोधरास्थि** (Atlas) कहते हैं।



आकृति ६५ अ—**शिरोधरास्थि** (Atlas) अथवा गर्दन का पहला कशेरुका



आकृति ६५ ब—**कीलकास्थि** (Axis) अथवा गर्दन का दूसरा कशेरुका

खोपडी के निचले भाग की ओर पूर्णरूप से फैले हुए होने के कारण गर्दन के दूसरे कशेरुके से उसकी एक संधि (Pivot joint) तैयार होती है। गर्दन के दूसरे कशेरुके (**कीलकास्थि**, Axis) के अंग से दाँत के समान एक बड़ा प्रवर्धन ऊपर की ओर आता है। और ऊपर वर्णन किये अनुसार उस पर पहला कशेरुका और शिर, ये दोनों एक बाजू से दूसरे बाजू की ओर कील के समान घूमते रहते हैं।

मेरुदण्ड (Vertebral column) ३३ कशेरुकों से (Vertebræ) मिल कर बना है; इसे हम पहले ही कह चुके है। कशेरुकों के पाँच विभाग किये गये हैं—

१. ग्रीवा (गर्दन) सम्बन्धी कशेरुके (Cervical vertebræ)—इनकी कुल संख्या ७ है। प्रत्येक आडे प्रवर्धन (Transverse process) में रक्तवाहिनी नलिका

के जाने के लिए एक छोटासा छेद रहता है। इनमेंसे पहले और दूसरे कशेरुके का आकार भिन्न रहता है। इनका वर्णन ऊपर किया जा चुका है।

२. **पृष्ठभाग (पीठ) के कशेरुके** (Dorsal or Thoracic vertebræ)– इनकी संख्या १२ है। प्रत्येक के दोनों ओर एक २ पसली जुडी हुई है। वक्षस्थल की हड्डी (Breast bone or sternum), पृष्ठभाग के कशेरुके और उनके प्रत्येक बाजू की बारह पसलियाँ मिलकर छाती (वक्षस्थल) का पिंजरा (Thorax) तैयार होता है; इससे हृदय, फेफडों आदि कोमल अवयवों का संरक्षण होता है।

३. **कटिस्थ (कमर के) कशेरुके** (Lumbar vertebræ)— इनकी संख्या पाँच है और इनका आकार सब से बडा है।

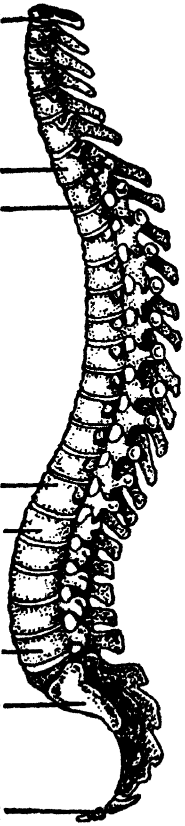
४. **त्रिकास्थि** (Sacrum)—यह पाँच कशेरुकों से मिलकर बनती है। बचपन में ये पाँच कशेरुके जुडे हुए नहीं रहते। परन्तु आयु बढने पर ये जुड जाते हैं और उनसे एक हड्डी बन जाती है। इनके दोनों ओर कटिबंध की हड्डियाँ (Pelvic bones) रहती हैं।

५. **गुदास्थि** (Coccyx)—यह चार छोटे कशेरुकों से मिलकर बनी हुई एक हड्डी है। बचपन में ये कशेरुके परस्पर मिले हुए नहीं रहते। इस हड्डी को मनुष्य जाति की अत्यंत प्राचीन काल में रहनेवाली पूँछ का अवशेष कहा जा सकता है।

इस तरह सब कशेरुके एक दूसरे पर जमा हुए होने के कारण एक बडा स्तम्भ तैयार हो गया है। इससे शरीरको पूर्ण आधार मिलता है और मस्तिश्क से नीचे तक जानेवाली पृष्ठवंश-रज्जु का भी संरक्षण होता है।

दो कशेरुकों में प्रत्येक ओर जो एक छेद रहता है (Intervertebral foramen) उससे पृष्ठवंश-रज्जु से निकलनेवाला एक नाडी-तन्तु (Nerve) प्रत्येक ओर बाहर जाता है और इस तरह निकलनेवाले नाडीतन्तुओं की ३१ जोडियाँ निकलकर शरीर के भिन्न २ भागों में फैल जाती हैं। कशेरुकों में एक का दूसरे से घर्षण नहीं होता। उनमें थोडी हलचल होती रहे, इसलिए प्रत्येक दो कशेरुकों में कूर्चे का एक टुकडा रहता है और दो कुशेरुके एक दूसरे से अस्थिबन्धन द्वारा बँधे रहते हैं। कूर्चे के कारण मेरुदण्ड को लचीलापन प्राप्त होता है; जिससे कूदने के समान क्रिया करते समय उसका स्प्रिंग की तरह उपयोग होता है।

सामने से देखने पर मेरुदण्ड यद्यपि सीधा दिखलाई देता है परन्तु उसके चार स्थानों पर टेढापन रहता है। ग्रीवा और कमर में यह टेढापन आगे की ओर रहता है; पीठ और त्रिकास्थि में टेढापन पीछे की ओर रहता है। मेरुदण्ड के टेढेपन के कारण मनुष्य शिर पर बहुत बडा बोझ उठा कर ले जा सकता है और उछलने, कूदने जैसी क्रियाओं के कारण शरीर पर जब धक्का लगता है तब उसका प्रभाव मस्तिष्क तक पहुँचते २ कम हो जाता है।



आकृति ६६—मेरुदण्ड
(Vertebral Column)
(बाईं ओर से देखने पर)
ग्रीवा और कमर के भाग में आगे की ओर टेढापन है। पीठ और त्रिकास्थि के भाग में पीछे की ओर टेढापन है।

उक्त वर्णन से मेरुदण्ड के कार्यों का निम्न ज्ञान होता है—

१. मेरुदण्ड से शरीर को आधार प्राप्त होता है और हम सीधे बैठ सकते हैं।

२. शरीर की सब अस्थियाँ प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रीति से उससे जुडी रहती हैं।

३. मेरुदण्ड के कारण ही शिर तुला हुआ रहता है।

४. कोमल पृष्ठवंश-रज्जु का रक्षण होता है।

५. अस्थि-बन्धन (सौत्रिक बन्धन, Ligaments) और स्नायु-बन्धनों (कंडराओं, Tendons) को बन्धन के लिए स्थान मिलता है।

६. मेरुदण्ड चूँकि अनेक कशेरुकों से मिलकर बना है इसलिए अपने शरीर को आगे-पीछे, मन चाहे जिस ओर, घुमा फिरा सकते हैं।

७. इसके लचीलेपन और टेढापन के कारण शरीर पर होनेवाले छोटेमोटे आघात का परिणाम सहसा मस्तिष्क तक नहीं पहुँच पाता।

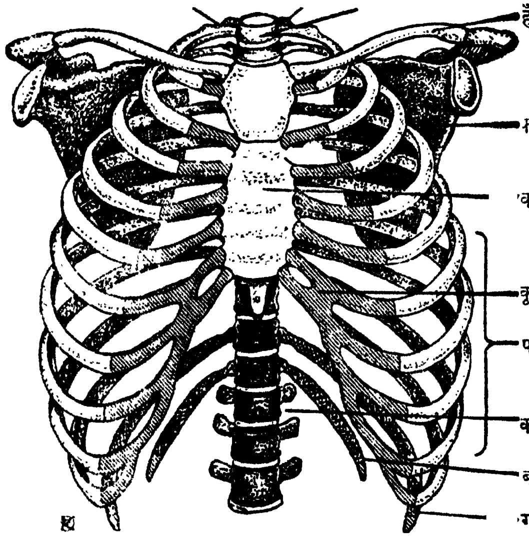
८. इसके टेढापन के कारण तौल संभाल कर भी हम शिर पर बहुत भारी बोझा ले जा सकते हैं।

८७. वक्षस्थल (छाती) का पिंजरा (Thorax)—पृष्ठभाग के बारह कशेरुके, उनके प्रत्येक बाजू की बारह पसलियाँ और सामने के वक्षस्थल की हड्डी मिलकर यह पिंजरा तैयार होता है। पसलियों के वक्षस्थल की हड्डियों से कुर्चों द्वारा जुडी हुई होने के कारण यह पिंजरा लचीला है, जिससे श्वासोच्छ्वास के लिए उसका गह्वर स्नायुओं के आकुंचन-प्रसरण के कारण आसानी से कम-अधिक हो सकता है।

इस पिंजरे का आकार जिस परिणाम में कम-अधिक होता है उसी परिमाण में फुप्फुस का आकार कम-अधिक रहता है।

वक्षस्थल की हड्डी (Breast bone or sternum)—यह **वक्षस्थल** के पिंजरे के सामने रहती है। इसका आकार चपटा रहता है। इसकी लम्बाई ६ से ७ इंच तक रहती है। उसके ऊपर की ओर हँसली की हड्डियाँ जुडी रहती हैं।

प्रत्येक ओर दस पसलियाँ कूर्चाओं की सहायता से जुड़ी रहती हैं।



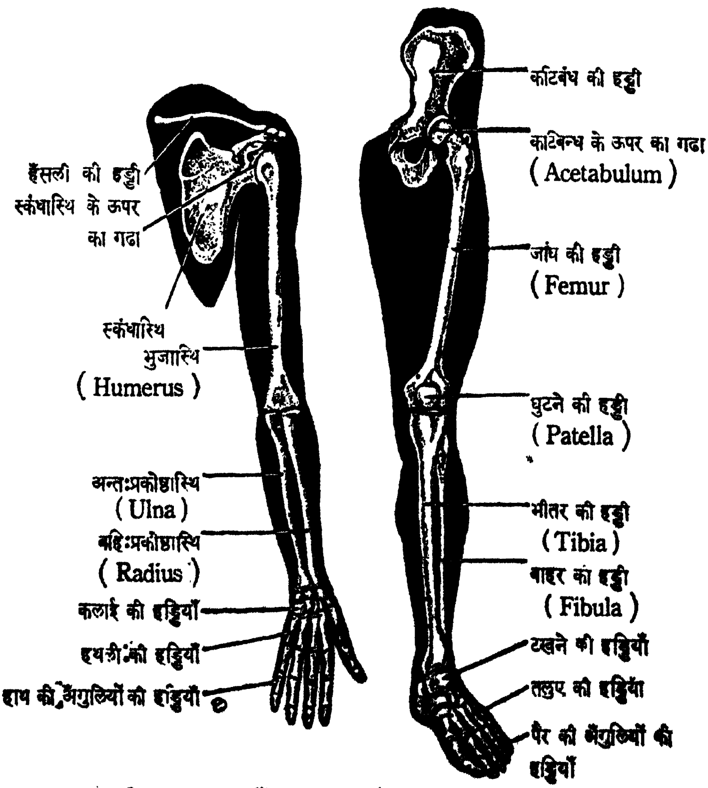
आकृति ६५—**वक्षस्थल के पिंजरे की हड्डियाँ**

पसली (Rib)—यह लम्बी, चपटी और टेढी हड्डी की बनी रहती है। छाती याने वक्षस्थल के प्रत्येक ओर बारह पसलियाँ रहती हैं, और वे पीछे की ओर पीठ के कशेरुके के अंग के हिस्से तथा आडे प्रवर्धन में–दो जगह गूँथी रहती हैं। इनमेंसे ऊपर की सात पसलियाँ अगली तरफ छाती की हड्डी से कूर्चाओं की सहायता से जुडी रहती हैं। इन्हें **सच्ची पसलियाँ** (True ribs) कहते हैं। शेष पाँच **झूठी पसलिया** (False ribs) कहलाती हैं। इन पाँच में ऊपर की तीन पसलियाँ प्रत्यक्ष छाती की हड्डी (उरोस्थि) से जुड़ी हुई न रह कर ऊपर की पसलियों की कूर्चाओं से सम्बद्ध रहती हैं। बाकी की दो पसलियों के पीछे के छोर कशेरुकों से बंधे हुए हैं। इनके आगे के छोर खुले रहने के कारण यों ही लटकते हैं। इसीलिए इन्हें **डुली हुई पसलियाँ** (Floating ribs) कहते हैं। सब पसलियाँ क्षितिज समान्तरित (Horizontal) नहीं है। वे पीछे से आगे की ओर उतरती हुई जमी हैं, जिससे श्वास भीतर लेते समय पसलियों के भीतरी स्नायु के आकुंचन से जब वे ऊपर उठती हैं तब छाती का खोखला भाग ज्यादा बड़ा हो जाता है (आकृति ३९ देखिये)।

छाती के पिंजरे के कारण हृदय और फेफडे जैसे भागों का संरक्षण होता है और उनके लचीलेपन से श्वासोच्छ्वास की क्रिया सुलभता से हो सकती है।

८८. (३) **हाथ अथवा ऊर्ध्वशाखा की हड्डियाँ** (Bones of the arms or upper limbs)—प्रत्येक हाथ में ३२ हड्डियाँ होती हैं।

(अ) **कंधे की हड्डी (स्कंधास्थि** – Scapula)—यह चौडी, सपाट और त्रिकोणाकृति है। यह छाती के पिंजरे के पीछे रहती है। स्नायुयों द्वारा ही धड से बँधी होने के कारण इसकी हलचल स्वतंत्र रीति से होती रहती है। इसके ऊपर और बाहर के कोने में एक गुलगुला गोल और खोखला भाग (Glenoid cavity) रहता है जिनमें भुजदंड या कुहनी



आकृति ६८—हाथ-पाँव की हड्डियाँ (दोनों में साम्य देखिये)

के ऊपरी हाथ की हड्डी (प्रगंडास्थि—Humerus) का ऊपरी गोल छोर (Head) जुडा रहता है जिससे ऊखल की संधि (Ball-and-socket joint) तैयार होती है।

(आ) **हँसली की हड्डी अथवा जत्रु** (Collar bone or clavicle)— यह थोडी टेढी है । छाती के ऊपरी और अगले भाग में रहती है । यह बाहर की ओर स्कंधास्थि (कंधे की हड्डी) से और भीतर की ओर छाती की हड्डी (Sternum) से जुडी रहती है ।

(इ) **ऊपरी हाथ की हड्डी** (प्रगंडास्थि, भुजास्थि, Humerus)— यह भुजदंड की लम्बी हड्डी है। इसके दो सिरे हैं। ऊपरी सिरे का गोल भाग कन्धे की हड्डी से जुडा रहता है जिससे ऊखल की संधि (Ball-and-socket joint) तैयार होती है। नीचे का सीरा चौडा रहता है और नीचे के बाहु की दोनों हड्डियों से जुडा रहता है।

(ई) **कुहनी के नीचे के हाथ की हड्डियाँ**— कुहनी के नीचे के हाथ की दो हड्डियाँ होती हैं । **बाहर की हड्डी** या बहिःप्रकोष्ठास्थि (Radius) अँगूठे की ओर होती है । इसका ऊपरी छोर छोटा और गोल होता है और हाथ को नीचे ऊपर हिलाते समय यह छोर भुजास्थि के नीचले छोर पर से घूमता है। इसकी संधि हाथ की **भीतरी हड्डी** (अंतःप्रकोष्ठास्थि – Ulna) के ऊपरी छोर से हुई है। ऊपरी छोर के पास भुजा का द्विशिरस्क (Biceps) नामक स्नायु बँधा रहता है (आकृति नं. ८४ देखिये), जिसके आकुंचन से प्रकोष्ठ ऊपर उठाया जा सकता है। इस हड्डी का नीचे का छोर भीतरी हड्डी के निचले छोर से (Ulna) और कलाई की हड्डी से जुडा हुआ है । हाथ की **भीतरी हड्डी** (Ulna) के दो छोर हैं और उसका ऊपरी छोर मोटा है। उससे त्रिशिरस्क नामक स्नायु बँधा रहता है (आकृति नं. ८४ देखिये)। कुहनी के ऊपरी हाथ की हड्डी (प्रगंडास्थि) के निचले छोर से उसकी चूलदार संधि (Hinge joint) बनती है और हाथकी बाहरी हड्डी के ऊपरी छोर से कीलदार संधि (Pivot joint) तैयार होती है। नीचे के छोटे छोर कलाई की हड्डी और हाथ की बाहरी हड्डी के नीचले छोर से जुडे हुए हैं।

(उ) **कलाई की हड्डियाँ** (Wrist or carpal bones)— ये आठ छोटी हड्डियाँ दो पंक्तियों में मिलकर बैठी हुई हैं। ये हड्डियाँ अस्थिबंधनों से जुडी हुई हैं; जिससे उनमें थोडी हलचल हो सकती है।

हस्त तल (हथेली) की हड्डी (Metacarpal bones) की संख्या पाँच है । ये अँगुलियों की हड्डियों से जुडी हुई हैं।

अँगुलियों की हड्डियाँ कुल मिलकर १४ हैं। अँगूठे में दो, और प्रत्येक अँगुली में तीन हड्डियाँ होती हैं।

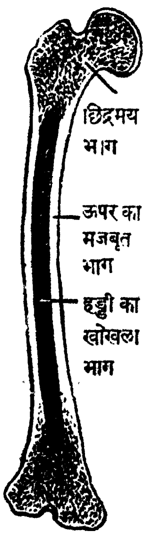
८९. **पाँव की हड्डियाँ अर्थात् अधःशाखा की हड्डियाँ** (Bones of the lower limbs)— प्रत्येक पाँव में ३१ हड्डियाँ होती हैं और उनकी रचना प्रायः हाथ की हड्डियों के समान ही होती है (आकृति ६८ देखिये)।

(अ) **कटिबन्ध (कूल्हे) की हड्डियाँ** (Pelvic bones)— ये आडी, टेढी और जरा फैली हुई हैं। ये आगे की ओर एक दूसरे से मिलती हैं और पिछली ओर

त्रिकास्थि (Sacrum) से जुडी हुई हैं जिससे उदर (Abdomen) के निचले हिस्से में एक खोखलासा भाग बन गया है। इस खोखले भाग को कटिबन्ध का गह्वर अथवा **बस्तिप्रदेश** (Pelvic cavity) कहते हैं। इसमें मलविसर्जन की और स्त्रियोंमें जनन-सम्बन्धी इन्द्रियाँ सुरक्षित रहती है। कटिबन्ध की हड्डियों की बाहरी ओर एक गढासा (Acetabulum) रहता है, जिसमें जाँघ की खड्डी के ऊपर का गोल भाग जमा रहता है।

(आ) **जाँघ की हड्डी** (Femur)—यह हड्डी शरीर की सब हड्डियों से अधिक लम्बी और मजबूत है। इसके उपरी गोल भाग (Head) के कटिबध की हड्डी से जुडने पर 'ऊखल की संधि' (Ball-and-socket joint) तैयार होती है। निचला छोर फैला हुआ होने के कारण उसके पिंडली की भीतरी हड्डी (Tibia) से जुडने पर चूलदार संधि (Hinge joint) तैयार होती है। निचले छोर के अगले बाजू में घुटने की हड्डी (पाली, Patella or knee-cap) है।

(इ) **पिंडली की हड्डियाँ—भीतरी हड्डी** (Tibia) बड़ी रहती है। इस का अगला बाजू पिंडली (Shin) कहलाता है। इस के उपर की तथा सामने की ओर छोटासा गुमटे जैसा भाग आगे आया हुआ होता है, और वहाँ चतुःशिरस्क स्नायुओंसे बंधा हुआ होता है। उसके आकुंचन से घुटना तन या ऐंठ जाता है। पिंडली की हड्डी ऊपर की ओर जाँघ की हड्डी तथा नीचे की ओर टखने (गुल्फ, Ankle) की हड्डी से जुड़ी हुई है। निचली ओर अँगूठे की तरफ बाजू से टखने का उठा हुआ भाग है। **बाहरी हड्डी** (Fibula) लम्बी और पतली होती है। यह ऊपरी आर निचले दोनों छोरों से भीतरी हड्डियों से जुडी रहती है। टखने की बाहरी ऊँचाई इसके निचले छोर के कारण होती है।



आकृति ६९
जाँघ की हड्डी का लबा काटा हुआ भाग।

(ई) **टखने की हड्डियाँ** (Tarsal or ankle bones) की संख्या सात है। उनमें से एक के कारण (Calcaneous) एडी बनती है। आगे की ओर पांच **तलुओं की हड्डियों** (Metatarsal bones) से उनकी संधि बन गई है। हाथों की अँगुलियों के समान ही पैरों की **अँगुलियों की हड्डियों** की संख्या भी १४ है। तलुए को हड्डियाँ लचीले अस्थिबंधनों से जुडी हुई हैं जिससे तलुए के भीतरी और बाहरी दो **कमानियाँ** (Arches) बन गई हैं जिनपर सारे शरीर का वजन स्प्रिंग की तरह तुला हुआ है।

९०. **हड्डियों की सूक्ष्म रचना**—सब लम्बी हड्डियाँ खोखली रहती हैं। उनके खोखले भाग (Medullary cavity) में **गूदा** या **अस्थिमज्जा** (Bone-marrow) नामक कोमल पदार्थ है। इस अस्थिमज्जा में रक्त में

मिलनेवाले श्वेत रक्तकण (White blood corpuscles) और लाल रक्तकण (Red blood corpuscles) भी रहते हैं। इसमें चर्बी का परिमाण अधिक होने के कारण इसका रंग पीला रहता है।

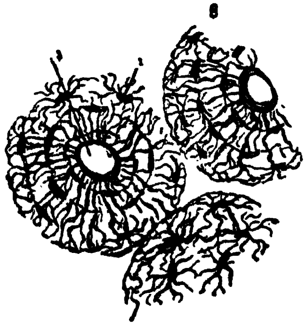
लम्बी हड्डियों के दोनों छोरों तथा छोटी, चपटी और आड़ी-टेढी हड्डियों में खोखलापन तो नहीं रहता, परन्तु उनमें भीतर स्पंज के समान छिद्र अवश्य रहते हैं। उनकी अस्थिमज्जा लाल रंग की रहती है। उनका काम रक्तकण और कुच्छ जातीयों के श्वेतकण हड्डियों का ऊपरी भाग मजबूत रहता है।

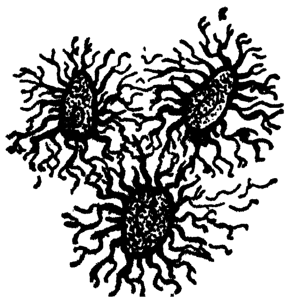
शरीर के अन्य अवयवों के समान हड्डियाँ भी पेशियों के समुदाय से तैयार हुई हैं। इतना विशिष्ट पेशियों को **अस्थिपेशी** (Bone cells) कहते हैं (आ. ७०)। एक मध्यवर्ती खोखले भाग में इन पेशियों की रचना होती है (आ. नं. ७० B देखिये)। और खोखले भाग में बारीक २ रक्तवाहिनियाँ रहती हैं। प्रत्येक पेशी का बाजू कॅल्शियम कार्बोनेट और फास्फेट से तैयार होने के कारण और सच्छिद्र होने की वजह से इन छेदोंद्वारा रक्तवाहिनी नलिकाओं से पेशियों को भोजन-रस पहुँचाया जाता है। कॅल्शियम कार्बोनेट के कारण हड्डियों में दृढता आती है। छोटे बच्चों की हड्डियाँ वयस्क व्यक्तियों के

A



B





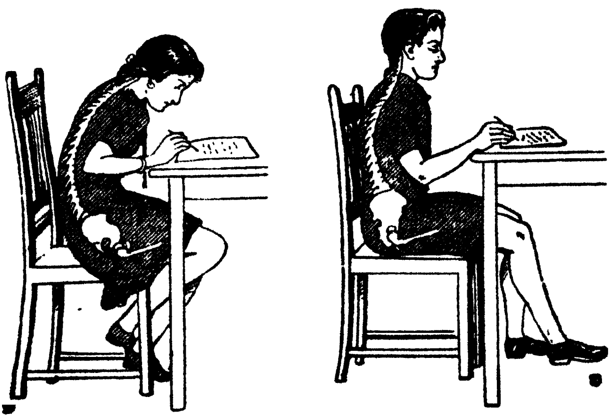
आकृति ७०—हड्डियों की सूक्ष्म रचना
(सूक्ष्मदर्शक यंत्र से देखने पर)

A हड्डियों के खडे काटे हुए भाग को लेकर देखने पर. 1 अस्थिपेशी (Bone cell). 2 रक्तवाहिनी के लिए हड्डियों के बीच की खोखली जगह.

B हड्डी का आडा काटा हुआ भाग. 1 अस्थिपेशी, 2 रक्तवाहिनी के लिए हड्डी में खोखली जगह।

C अस्थिपेशी।

समान मजबूत नहीं रहती हैं। इस लवण के अतिरिक्त हड्डियों में एक प्राणिज सत्त्व (Animal matter) भी रहता है। जिससे उनमें लसलसापन और लचीलापन रहता है। वृद्धावस्था में उनमें का यह सत्त्व क्रमशः कम होता जाता है जिससे हड्डियाँ कुडकीली और हलकी बन जाती हैं। परन्तु छोटी उम्र में उसका परिमाण अधिक होने से हड्डियों में लचीलापन रहता है। कुछ लडकों को पाठशाला में डेस्कपर बहुत झुककर बैठने या फर्शपर झुककर लिखने की बुरी आदत रहती है। इस वजह से उनकी रीढ़ में टेढ़ापन आकर हमेशा के लिए कूबड़ पैदा होता है (आकृति ७१ देखिये)। इसलिये हमेशा सीधे बैठने की



आकृति ७१ — झुककर बैठने से रीढ में कूबड पैदा होता है। सीधे बैठें।

आदत डालें। सल्फ्यूरिक एसिड में हड्डी डालने से ऊपर लिखे प्राणिज सत्त्व के अस्तित्व का पता लगता है। उसमें हड्डी डालने पर हड्डी का लवण घुल जाता है और हड्डी रबर के समान लचीली हो जाती है। हड्डी के जलने पर, उसमें का प्राणिज सत्त्व जल जाता है और केवल खनिज लवण शेष रह जाता है, जो कुडकीला और हलका होता है।

हड्डी के ऊपर परन्तु उसी से लगा हुआ एक पतला और सफेद तन्तुओंसे (Fibrous tissue) बना हुआ चीपड आवरण (अस्थिवेष्ठन, Periosteum) रहता है। उसमें से ही रक्तवाहिनी नलिकायें हड्डियों में प्रवेश कर उसका पोषण करती है।

९१. **कूर्चा** (Cartilage) — यह लचलची होती है और हड्डी की अपेक्षा नर्म रहती है। शरीर की प्रथमावस्था में वृद्धि होते समय बहुत सी हड्डियाँ कूर्चाओं की स्थिति में रहती हैं और फिर क्रमशः दृढ होती जाती हैं और अन्त में उनमें हड्डी के गुणधर्म आ जाती हैं। सूक्ष्मदर्शक यंत्रसे कूर्चा को देखनेपर कूर्चा के दो प्रकार नजर आते हैं— (१) तंतुहीन, (२) तंतुमय। कूर्चामें पेशियाँ लंबे गोल आकार की होती हैं और एक २ स्थानमें दो २ चार २ दिखाई देती हैं (आकृति १२ अ और ब देखिये)।

उनका केंद्रीय भाग बड़ा और साफ नजर आता है। कनपटी कूर्चा की बनी रहती है। कूर्चा के लचीलेपन के कारण उसका शरीर में बहुत उपयोग होता रहता है। प्रति दो कशेरुकों के बीच में कूर्चा का स्तर होने के कारण मस्तिष्क को धक्का नहीं पहुँचता और पृष्ठ-भाग की हलचल जारी रहती है। संधियों के स्थान पर प्रत्येक हड्डी के छोर पर रहनेवाली कूर्चा के कारण संधि सहज और बिना किसी घर्षण के हिल-डुल सकती है। कूर्चा के कारण ही वक्षस्थल के पिंजड़े में लचीलापन आ सका है, जिससे श्वासोच्छ्वास की क्रिया इतनी सुलभ हो गई है और कूर्चा के कारण ही श्वासनलिका (Wind-pipe) का आकार स्थिर रह सका है। इसी प्रकार स्नायुबंधन और अस्थिबंधन कूर्चा के आधार ही से हड्डियां में भली भाँति बँधे हुए है।

९२. ऊपर दिये गये वर्णन से यह प्रकट हो गया है कि शरीर की हड्डिया निम्नानुसार हैः—

मस्तक की २२ हड्डियाँ	खोपडी की ८ हड्डियाँ	१ कपाल की हड्डी ... २ कनपटी की हड्डी
		२ बाजू की हड्डी ... १ चमगीदड़-अस्थि
		१ पिछले भाग की हड्डी... १ सच्छिद्रास्थि
	चेहरे की १४ हड्डियाँ	२ ऊपरी जबड़े की हड्डी... २ शंखाकृति हड्डियाँ
		२ तालू की हड्डियाँ ... १ फालाकृति हड्डी
		२ नासिका की हड्डी ... २ कपोलास्थियाँ
		२ अश्रुपिंड की हड्डियाँ...१ निचला जबड़ा

ग्रीवा की १ हड्डी	१ कंठिकास्थि
मध्यकर्णकी हड्डियाँ	६ हड्डियाँ

मेरुदण्ड और वक्षस्थल (छाती) की ५८ हड्डियाँ	मेरुदंड के ३३ कशेरुके	... ७ ग्रीवा के कशेरुके
		... १२ पृष्ठभाग के कशेरुके
		... ५ कटिभाग के ,,
		... ५ त्रिकास्थि के ,,
		... ४ गुदास्थि के ,,
	वक्षस्थल की हड्डियाँ	... १ वक्षस्थल की हड्डी
		... २४ पसलियाँ, जिनमें १४
		... सच्ची और १० झूठी

हाथ-पाँव की १२६ हड्डियाँ

हाथ की हड्डियाँ (प्रत्येक हाथ में ३२ के हिसाब से दोनों हाथों की ६४ हड्डियाँ)

- ... २ कंधे की हड्डियाँ
- ... २ जत्रु
- ... २ भुजास्थि (प्रगंडास्थि)
- ... २ हाथ की बाहरी हड्डियाँ
- ... २ हाथ की भीतरी हड्डियाँ
- ... १६ कलाई की हड्डियाँ
- ... १० हथेली की हड्डियाँ
- ... २८ हाथ की अँगुलियों की हड्डियाँ

पाँव की हड्डियाँ (प्रत्येक में ३१ के हिसाब से दोनों पाँवों में ६२ हड्डियाँ)

- ... २ कटिबंध की हड्डियाँ
- ... २ जांघ की हड्डियाँ
- ... २ पिंडली की भीतरी हड्डियाँ
- ... २ पिंडली की बाहर की हड्डियाँ
- ... २ घुटने की हड्डियाँ
- ... १४ टखने की हड्डियाँ
- ... १० तलुए की हड्डियाँ
- ... २८ पैर की अँगुलियों की हड्डियाँ

कुल २१३ हड्डियाँ हैं।

प्रश्न

१. शरीर की समस्त हड्डियों का वर्गीकरण किस प्रकार किया गया है? उदाहरण देकर समझाइये (बम्बई वि. विद्यालय १९२७, १९४०, एस्. एस्. सी. १९५१, १९५७).

२. शरीर के दाहिने और बायें बाजू कौन २ सी हड्डियाँ रहती हैं? मनुष्य के मेरुदण्ड के कशेरुकों का वर्णन कीजिये। (ब. वि. विद्यालय १९२७).

३. कशेरुकों के भिन्न २ भागों का वर्णन कर मेरुदण्ड के बारे में जो कुछ जानते हों, लिखिये। (बं. वि. विद्यालय १९३६, १९३७, १९४०, एस्. एस्. सी. १९५८).

४. भुजास्थियों (प्रगंडास्थियों) का वर्णन कीजिये। (ब. वि. विद्यालय १९३४).

५. हाथ के बाहरी बाजू की हड्डी (Radius) के तथा जाँघ की हड्डी (Femur) के सम्बन्ध में आप जो जानते हैं, लिखिये। (१९३५, १९४०).

६. मेरुदण्ड की रचना बतलाकर उसके कार्य बताइये। (१९३७, १९४०, एस्. एस्. सी. १९५५, १९५८).

७. ऊर्ध्व शाखा की (Upper extremity) हड्डियाँ बताकर उनका वर्णन कीजिये। (बं. वि. वि. १९३८, एस्. एस्. सी. १९५१, १९५५).

८. सिर की खोपड़ी किन हड्डियों से बनी है यह बतलाकर उनका वर्णन कीजिये। (बं. वि. १९४३).

९. छाती की खोखली कैसी बनी है बताइये। (बं. वि. वि. १९३७, एस. एस. सी. १९५२, १९५५, १९५७).

१०. ऊर्ध्व शाखा (Upper extremity) तथा अधःशाखा (Lower extremity) की हड्डियाँ कौनसी हैं बताइये (बं. वि. वि. १९४४, एस. एस. सी. १९५१, १९५४).

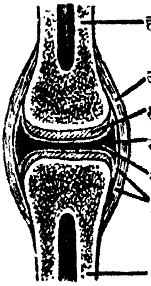
११. हड्डियों का कार्य बताइये। (एस्. एस्. सी. १९५१).

१२. हड्डी की सूक्ष्म रचना (Minute structure) का वर्णन करो (एस्. एस्. सी. १९५७).

संधियाँ (Joints)

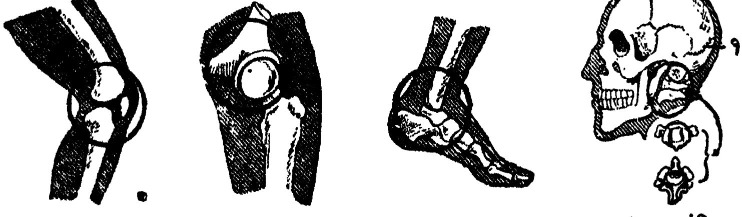
९३. जिस स्थान पर दो या अधिक हड्डियाँ एकत्रित होकर मिलती हैं उस स्थान को संधि या जोड कहते हैं।

संधि का उद्देश्य शरीर के भिन्न २ अंगों में हलचल जारी रखना है। इसलिए कतिपय अपवादों को छोडकर प्रायः संधियों में कम अधिक हलचल हो सकती है और उसके अनुसार ही उनकी रचना भी हुई है। हड्डियाँ एक दूसरे से खिसक कर दूर न चली जायें, इसलिए वे सफेद तथा लचीले तंतुओं से (Fibrous and elastic tissue) बने हुए **अस्थि-बंधनों** (Ligaments) से परस्पर बँधी हुई हैं। उनके आसपास रहनेवाले स्नायुओं का भी इसी काम के लिए थोड़ा बहुत उपयोग होता है। जिन हड्डीयों में संधि होती है, उनके छोर कूर्चा की पतली स्तर के कारण गुलगुले रहते हैं और इसीलिए संधि की हलचल होते समय उनमें घर्षण (Friction) नहीं हो पाता। संधि की भीतरी ओर अस्थिबंधन के अलावा एक और दृढ़ आवरण (Capsule of the joint) रहता है और उसके भीतर **नाजुक अन्तस्त्वचा** से (Synovial membrane) **सॉयनोविया** (Synovia) नामक तैल पदार्थ उत्पन्न होता है। बैलगाड़ी या सायकल का पहिया तेल डालनेपर जिस तरह और बिना घर्षण के घूम सकता है उसी प्रकार संधि की हड्डियाँ इस तैल पदार्थ के कारण बिना किसी खड़खड़ाहट या आवाज के बड़ी आसानी से घूम सकती हैं।



आकृति ७२ – **संधि की रचना**

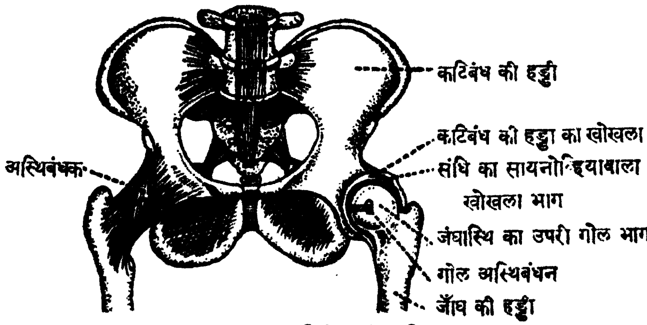
९४. संधियों के मुख्यतः दो भाग किये गये हैं। (१) **चल** (हिलने-डुलनेवाली – Movable) संधि; और (२) **अचल** (Fixed) संधि। अचल संधियाँ बहुत ही थोडी हैं। खोपड़ी की हड्डियों की संधियाँ इस भाग में आती हैं।



आकृति ७३ – शरीर की संधियों के भिन्न २ प्रकार. १ अचल संधि. जिससे कीलदार संधि बनती है वह गर्दन का पहला और दूसरा कशेरुका खोपडी के नीचे स्वतंत्र रूप से बताया है।

शरीर की प्रायः सभी संधियाँ गतिशील याने हलचल करनेवाली हैं। कुछ संधियों में (उदाहरणार्थ, कशेरुकों की संधि) थोड़ी ही हलचल हो सकती है परन्तु अन्य संधियों में अधिक परिमाण में हलचल दिखलाई देती है। इसी हलचल के प्रकार के अनुसार इन संधियों के चार विभाग किये गये हैं।

१. ऊखल-संधि (Ball-and-socket joint)—कन्धे की संधि (Shoulder joint) और जाँघ तथा कटिबन्ध की हड्डी के बीच की संधि (Pelvic joint) इसी विभाग के अन्तर्गत आती हैं। इन संधियों में एक हड्डी का गोल छोर दूसरी हड्डी के ऊखली के समान पोले भाग में जमा रहता है। इसलिए ऐसी संधियोंवाली हड्डियों की



आकृति ७४—**कटिबंध की संधि**

(जंघास्थि और कटिबंधास्थि के बीच में ऊखल-संधि, Ball-and-socket joint)
बायें बाजू की संधि का अगला अस्थिबंधन कटाकर संधि का खोखला भाग बताया है।

हलचल सब दिशाओंमें स्वतंत्र रीतिसे हो सकती है। भुजा की हड्डी कंधे के जिस गढ़े में बिठाई होती है उस के जरा उथले होने से कंधे में अधिक खुली रीतिसे हलचल होती है; लेकिन कटिबंध की हड्डी का गढा बहुत गहरा होता है (आकृति ७४ देखिये), जिससे वहाँ की हलचल कुछ मर्यादित होती है और इस संधिपर शरीर के सारे भार के पडने के कारण शरीर के स्थैर्य की दृष्टि से यह बात आवश्यक ही होती है।

२. चूलदार जोड या संधि (Hinge joint)—घरों के खिडकी-दरवाजे पेंच लगे होने के कारण आगे-पीछे हो सकते हैं। उसी प्रकार की हलचल इन संधियों के कारण हड्डियोंकी होती है। आगे और पीछे ही इनकी हलचल हो सकती है। इस प्रकार की शरीर में बहुत सी संधियाँ हैं। कुहनी की संधि (Elbow joint), घुटने की संधि (Knee joint) (आकृति ७३ देखिये) और हाथ-पाँव की अँगुलियों की संधियाँ इसी वर्ग के अन्तर्गत हैं।

३. फिसलनेवाला जोड या संधि (Gliding joint)—इस प्रकार की संधि में दो हड्डियाँ एक दूसरे पर जरा सरक सकती हैं। उनकी और अधिक हलचल नहीं हो सकती, उदाहरणार्थ, कलाई और टखने की संधिया (आकृति ७३ देखिये)।

४. घूमनवाला जोड या कीलदार संधि (Pivot joint) — इस प्रकार की संधि में एक हड्डी के खूंटी सरीखे खडे भाग के चारों ओर दूसरी हड्डी गोलाकार घूमती है। मेरुदण्ड के दूसरे कशेरुके का खूंटी के समान जो भाग ऊपर गया है (आकृति ६५ अ, ब और ७३ देखिये) उसके आसपास पहला कशेरुका (Atlas vertebra) और सिर की खोपडी मिलकर दायें बायें सहज ही घूम सकती हैं। यह घूमनेवाले जोड या संधि (Pivot joint) का एक उदाहरण है। और जब हम अपनी हथेली उलटी करते हैं तब रेडिअस का छोर अल्ना के उपरी के साथ घूमनेवाली संधि के मुताबिक फिरता है। ऊपर दिये हुए वर्णन से संधियों के आगे दिये हुए प्रकार साफ समझ में आ जाते हैं।

संधियाँ (Joints)

- अचल (Fixed) (उदा० — खोपडी की हड्डियों की संधि)
- चल (Movable)
  - थोडी हिलनेवाली (Slightly movable) (उदा० कशेरुकों की संधि)
  - स्वच्छन्द रीति से हिलनेवाली (Freely moveble)

स्वच्छन्दरीति से हिलनेवाली संधिओं के चार प्रकार हैं:—

(१) ऊखल संधि (Ball-and-socket joint) (उदा० – कंधे की संधि)

(२) चूलदार संधि (Hinge joint) (उदा० – कुहनी और घुटने की संधि)

(३) फिसलनेवाली संधि (Gliding joint) उदा० – कलई और टखने की संधि)

(४) घूमनेवाली या कीलदार संधि (Pivot joint) उदा० – पहले और दूसरे कशेरुके की संधि)

संधियों के कारण भिन्न २ भागों की हलचल होती है। इसलिए हम सब कार्य करने के योग्य बनते हैं। उनके अभाव में हमारा शरीर किसी निश्चल खम्भे के समान बन जाता, जिससे हमारे शरीर में किसी प्रकार की हलचल सम्भव न हो पाती।

प्रश्न

१. शरीर की संधियों का वर्णन कर उनके उदाहरण दीजिये। वे कैसे तैयार होती हैं और उनका क्या उपयोग है ? (बम्बई वि. विद्यालय १९२८).

२. संधियों का क्या अर्थ है? वे कैसे तैयार होती हैं? उनके भिन्न २ प्रकारों का वर्णन कीजिये और बतलाइये कि उनका कार्य क्या है? (बं. वि. विद्यालय १९३१, १९३६, १९३९, १९४१, १९४५, एस्. एस्. सी. १९५३).

३. ऊर्ध्वशाखा की हड्डियों और उनमें रहनेवाली संधियों का वर्णन कीजिये। (१९५५).

४. अधःशाखा की हड्डियों और उनमें रहनेवाली संधियों का वर्णन कीजिये। (१९५६).

५. जाँघ और कटिबंध के बीच का हड्डियों की संधि से कंधेकी संधि की तुलना, रचना और कार्य की दृष्टिसे कीजिये। (बं. वि. वि. १९४२).

६. ऊर्ध्व तथा अधःशाखा की हड्डियों में किस प्रकार की संधियाँ हैं उनका वर्णन कीजिये। (१९४८, एस्. एस्. सी. १९५१, १९५३, १९५४).

७. घूमनेवाली संधि के विषय में आप क्या जानते हैं? (एस्. एस्. सी. १९५२).

८. टिप्पणियाँ लिखो: कन्धे का जोड। (१९५६).

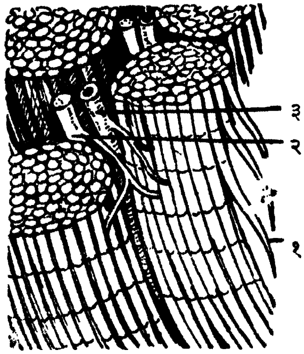
अध्याय आठवाँ

स्नायु अथवा मांस-पेशी-प्रणाली

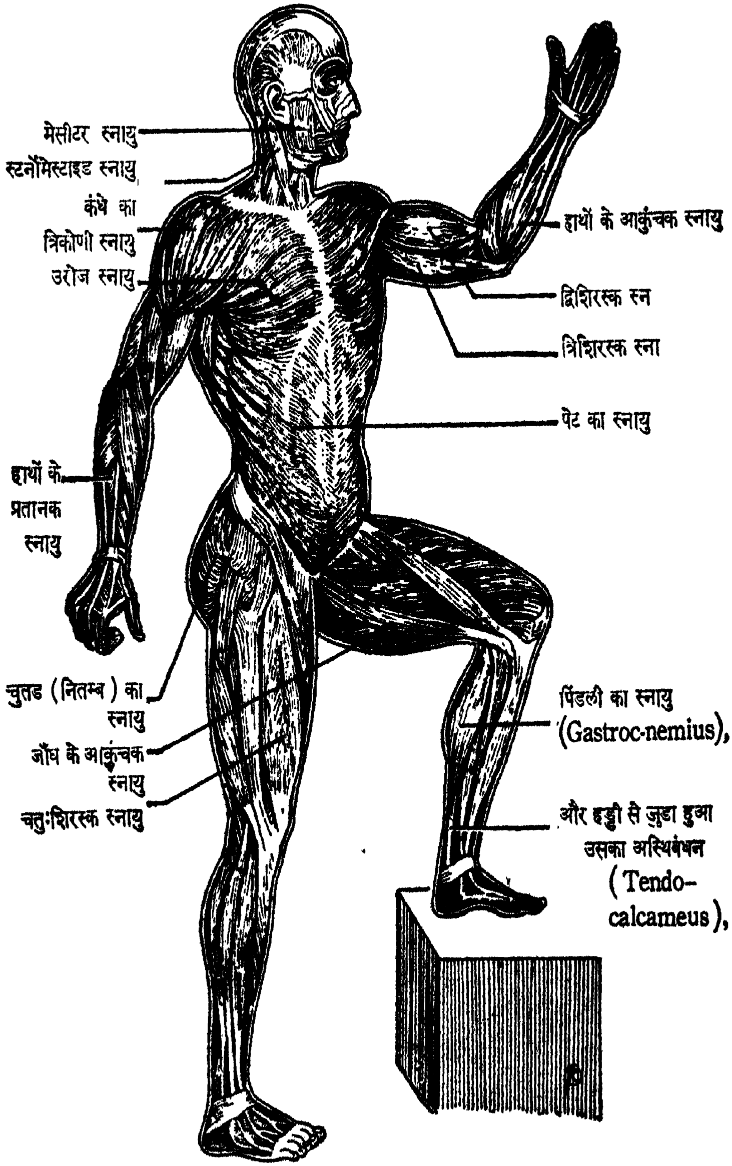
(The Muscular System)

९५. प्रत्येक प्राणी के लिए हलचल आवश्यक है। प्राण धारण करने के लिए भोजन लाना, उसे मुँह में डालकर चबाना, निगलना, इत्यादि अनेक क्रियाएँ उसे करनी ही पडती हैं। यदि हम बिलकुल शान्त ही बैठे रहें तब भी शरीर में कुछ हलचल होती ही रहती है। उदाहरणार्थ, समस्त शरीर में रक्त पहुँचाने का काम हृदय करता ही रहता है तथा श्वासोच्छ्वास के लिए वक्षस्थल का आकार स्वयं ही फैलाता-सिकुडता रहता है। ये सारी हलचलें शरीर के **स्नायुओं** की सहायता से होती रहती हैं। पिछले दो अध्यायों में कहा जा चुका है कि हड्डियों से शरीर का मजबूत ढांचा तैयार होता है और संधियों से शरीर के भिन्न २ भाग हिल-डुल सकते हैं। परन्तु इन भागों को प्रत्यक्ष गति देने का काम, शरीर में त्वचा के नीचे मांस की जो तह है, (जिसे हम **स्नायु** कहते हैं) उसके आकुंचन और प्रसरण के गुणधर्म (स्वभाव) के कारण होता है। शरीर में लगभग २/५ अंश वजन का भाग स्नायुओं से बना है। इनकी कुल संख्या ५०० है। हाथ से दबाने पर स्नायु कोमल लगते हैं। स्नायुओं के आकार में उनके कार्य के अनुसार भिन्नता रहती है। कुछ स्नायु लम्बे, कुछ खूब मोटे और कुछ बिलकुल फैले हुए चपटे रहते हैं। कुछ स्नायुओं का आकार गोल भी रहता है; ऐसे स्नायुओं को समाकुंचक स्नायु (Sphincter) कहते हैं।

९६. शरीर के स्नायु दो प्रकार के होते हैं। पहले प्रकार के स्नायु, जिन्हें हम इच्छानुसार हिलाडुला सकते हैं, **ऐच्छिक** या **इच्छानुवर्ती** (Voluntary) स्नायु कहलाते हैं। हाथ और पैरके स्नायु इसी प्रकारके स्नायु हैं। इस प्रकार के बहुत से स्नायु शरीर की भिन्न २ हड्डियों से जुडे हुए हैं। प्रत्येक स्नायु सैकडों लम्बे और बेहद बारीक तंतुओंसे बना रहता है (आ. ७५ देखिये)। उस पर एक कोमल आवरण रहता है। सूक्ष्मदर्शकयंत्र द्वारा यदि स्नायुओं का निरीक्षण किया जाय (आकृति ७७ देखिये) तो उसके प्रत्येक तन्तु में काली-आडी धारियाँ या पट्टियाँ दिखाई पडेंगी। इसी कारण उन्हें **धारियों के स्नायु** (Striated muscles) भी कहा जाता है। मस्तिष्क की प्रेरणा से स्नायु का आकुंचन होता है। इसीलिए प्रत्येक स्नायु में एक नाडीतन्तु प्रविष्ट है स्नायु को रक्तवाहिनी नलिका द्वारा रक्त पहुँचाया जाता है।

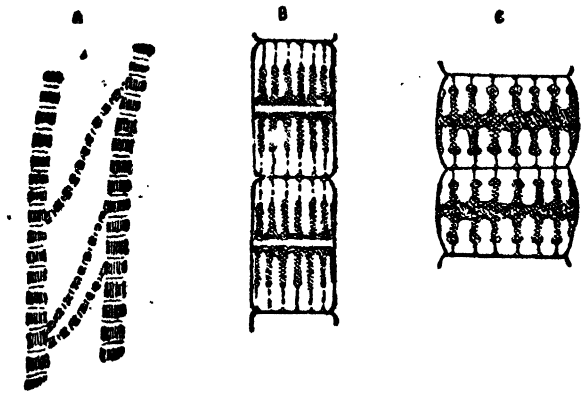


आकृति ७५—स्नायुओं की रचना
(सूक्ष्मदर्शक यंत्र से देखने पर)
१ स्नायुतन्तु, २ नाडीतन्तु, ३ रक्तवाहिनी.



आकृति ७६ — शरीर के इच्छानुवर्ती (बाहरी) स्नायु।

प्रत्येक स्नायु का मध्यभाग मोटा रहता है और दोनों छोरों की ओर पतला होता है। प्रत्येक छोर मजबूत सफेत तागों का (Fibrous tissue) बना रहता है जिसे **स्नायु-बंधन** (Tendon) कहते हैं। बंधन संधि की ऊपरी और निचली हड्डी से बँधे रहते हैं। स्नायु के आकुंचन से हलचल होते समय कम हिलनेवाले हिस्से से स्नायु का जो छोर बँधा रहता है उसे **स्नायुमूल** (Origin) कहते हैं और हिलनेवाली हड्डी से जो छोर बँधा रहता है उसे **बद्धस्थान** (Insertion) कहते हैं; उदाहरणार्थ, भुजाओं के



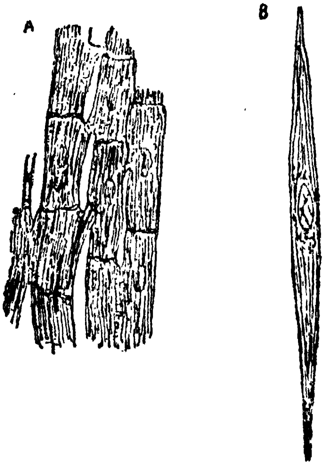
आकृति ७७—A **इच्छानुवर्ती स्नायु** (Voluntary muscle). सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा देखने पर उस पर काली धारियाँ दिखाई देती हैं। B और C इच्छानुवर्ती स्नायु के तन्तु (सूक्ष्मदर्शक यंत्र से बहुत बडे आकार में दिखाई देते हैं)।

B फैले हुए स्नायु-तन्तु का एक भाग। C आकुंचित स्नायु-तन्तु का एक भाग।

द्विशिरस्क (Biceps) स्नायु का मूल, कंधे की हड्डी में रहता है। उसका आखिरी छोर अथवा बद्धस्थान बहिःप्रकोष्ठास्थि (Radius) में रहता है (आकृति ८४ देखिये। उसके आकुंचन से वह स्नायु जब छोटा और कडा हो जाता है तब हमारा हाथ ऊँचा उठ जाता है।

९७. दूसरे प्रकार के स्नायुओं को हम अपने इच्छानुसार हिलाडुला नहीं सकते। इस लिए इन्हें **अनैच्छिक** स्नायु (Involuntary muscles) कहते हैं। हृदय, जठर, अँतडियाँ, गर्भाशय (Uterus) और रक्तवाहिनी नलिकाओं के स्नायु इसी प्रकार के होते हैं। इनके कार्य मस्तिष्क के मातहत नियमित रूपसे हमेशा जारी रहते हैं। हम अपनी इच्छा से इनके कार्य को नहीं रोक सकते। सूक्ष्मदर्शक यंत्र में ऐच्छिक स्नायुओं के समान इन स्नायुओं में धारियाँ नहीं दिखलाई पडतीं। इस लिए इन्हें **बिना धारियों के स्नायु** (Unstriated or plain muscles) कहते हैं। सिर्फ हृदय के स्नायुओं पर हलकी हलकी धारियाँ हैं। अनैच्छिक स्नायु लम्बी पेशियों के समूह के बने रहते हैं। वे चूंकि हड्डियों से बँधे नहीं रहते इसलिए वे स्नायुबंधन विहीन रहते हैं। ऐच्छिक और अनैच्छिक सब प्रकार के स्नायुओं का गुणधर्म आकुंचन और प्रसरण है। यह आकुंचन नाडी-तंतु की ओर से

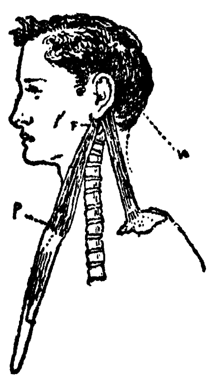
आज्ञा प्राप्त होने पर हो सकता है। इस लिए यदि नाडी-तंतु (Nerve) अस्वस्थ हो जाय या चोट खा जाय तो स्नायु का आकुंचन नहीं हो सकता।



आकृति ७८
अनैच्छिक (Involuntary) स्नायुतन्तु
A हृदयकी स्नायु पेशी
B अँतडियों की लम्बी पेशी

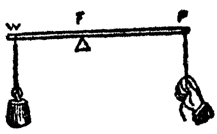
इच्छानुवर्ती स्नायु हड्डियों से जुडे हुए हैं; इसलिए जब वे आकुंचित होते हैं तब शरीर का विशिष्ट भाग सिकुडता है और उससे हलचल होती है। इस तरह के स्नायुओं का हड्डियों को हत्था या लीवर (Lever) के जैसा उपयोग होता है।

९८. थोडी शक्ति व्यय कर शरीर की समस्त हलचल स्नायुओं द्वारा कैसे सम्भव हो जाती है और उसके लिए हड्डियों का हत्था या लीवर (Lever) के समान कैसे उपयोग किया जाता है, इसे अच्छी तरह समझने के लिए हत्था सम्बन्धी समस्त ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। किसी **स्थिरबिंदु** या **टेकू** (Fulcrum) के पास फिरनेवाले और वजन के कारण सहज ही न झुकनेवाले डंडे को **हत्था** (Lever) कहते हैं। इसके एक छोर पर **वजन** (Weight) रहता है; उसे उठाने के लिए दूसरे छोर पर **शक्ति** (Power) लगाई जाती है। हत्थे का उपयोग थोडी शक्ति में बहुत भारी बोझे को आसानी से उठाने के काम में होता है। वजन, शक्ति और स्थिरबिन्दु की स्थिति के अनुसार हत्थे के तीन प्रकार होते हैं।



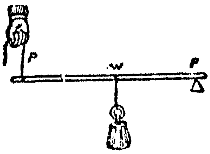
आकृति ८० — **पहले प्रकार के हत्थे का उदाहरण**
सिर आगे झुकाने की क्रिया। इसमें ग्रीवा का पहला कशेरुका स्थिरबिन्दु का काम करता है।

पहला प्रकार — (आकृति ७९ और ८० देखिये) इसमें वजन और शक्ति के बीच में स्थिरबिंदु(Fulcrum) की योजना रहती है। तराजू की रचना इसी तत्त्व पर है। सिर आगे झुकाने की क्रिया भी इसी प्रकार संपन्न होती



आकृति ७९ — **हत्थे या लीवर का पहला प्रकार**
(इसमें स्थिरबिन्दु बीच में है)

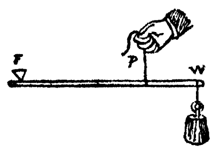
है। इस क्रिया में पहला कशेरुका (Atlas vertebra) स्थिरबिंदु; सिर का पिछला भाग वजन, और उसे उठाने के लिए ग्रीवा के अग्रभाग का स्नायु, शक्ति के समान है। खड़े होकर सामने झुकी हुई स्थिति से शरीर को सीधा करने की क्रिया भी हत्थे के इसी प्रकार से पूरी होती है। कटिबंध की संधियाँ (Pelvic joints) उसमें स्थिरबिंदु का काम करती हैं।



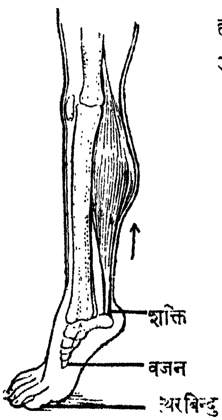
आकृति ८१
हत्थे का दूसरा प्रकार
(इसमें वजन मध्य में है)

हत्थे का दूसरा प्रकार (आकृति ८१ और ८२ देखिये)—इस प्रकार के हत्थे या लीवर में शक्ति और बिंदु के बीच में वजन रहता है। किसी बड़े पत्थर को उठाने के लिए लोहे की छड़ का एक छोर उसके नीचे रखकर दूसरे छोर को ऊपर से दबाने से इस हत्थे या लीवर का उपयोग किया जाता है। पैर के पंजे पर शरीर उठाने पर पंजा स्थिरबिंदु, एडी की हड्डी को ऊपर खींचनेवाले पिंडली के स्नायु का आकुंचन शक्ति, और पैर की हड्डी पर तौला जानेवाला शरीर, वजन के समान है।

हत्थे का तीसरा प्रकार (आ. ८३ और ८४ देखिये)—हत्थे के इस प्रकार में वजन और स्थिरबिंदु के बीच में शक्ति का उपयोग होता है। जब हाथ को ऊपर उठाते हैं तब कुहनी की संधि स्थिरबिंदु, हाथ की बाहरी हड्डी (Radius) जहाँ द्विशिरस्क स्नायु चिपटा रहता है, शक्ति और हाथ ही वजन है।



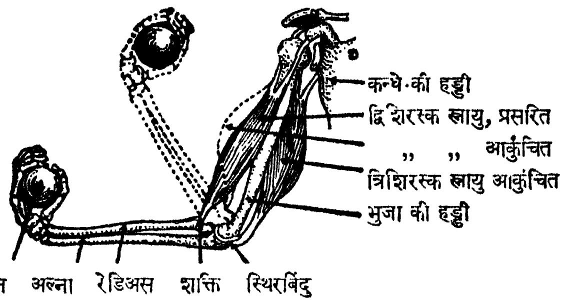
आकृति ८३
हत्थे का तीसरा प्रकार
(इसमें शक्ति बीच में है)



आकृति ८२—**दूसरे प्रकार के हत्थे का उदाहरण**

पंजे पर शरीर उठाने की क्रिया। इसमें वजन रखने पर है।

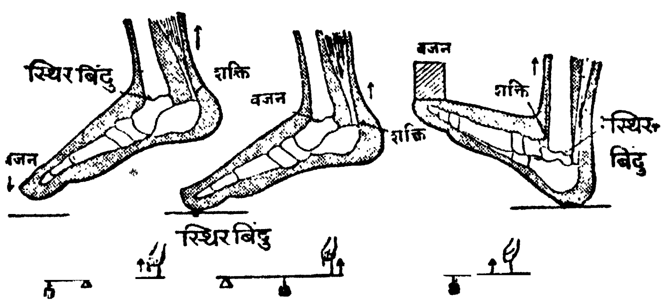
हड्डियों को हत्थे जैसे इस्तेमाल कर के शरीर में स्नायु किस प्रकार हलचल व्यवहृत करते हैं इसके उदाहरण ऊपर बताये। पर किसी भी भाग में विशिष्ट प्रकार के हत्थे की तरह हमेशा हलचल होती है यह बात नहीं। शरीर का कौन भाग स्थिरबिंदु के रूप में प्रयुक्त हुआ और शक्ति कहाँ उपयोग में लायी जाकर हलचल हुई इसपर कौन प्रकार का हत्था हम उपयोग में लाते



आकृति ८४—**तीसरे प्रकार के हत्थे का उदाहरण**

हाथ को कुहनी से ऊपर उठाने की क्रिया। इससे हाथ की बाहरी हड्डी में (Radius) द्विशिरस्क स्नायु (Biceps) का जहाँ बद्धस्थान है वहाँ शक्ति लगायी जाती है। शक्ति (Power), स्थिरबिन्दु और वजन के बीच में है।

यह अवलंबित रहेगा। यह बात पैर की विभिन्न हलचलें तीनों प्रकार के हत्थों से कैसे कर सकते हैं यह देखने पर मालूम हो जायेगा।



आकृति ८५· **पैरोंमें तीनों प्रकार के हत्थों की तरह होनेवाली हलचल**

(१) स्वयं कुर्सीपर बैठकर पैर अधर में रक्खा और पाँव का तलुआ टखनेसे एकदम जमीनकी ओर मोडा तो पहले प्रकार के हत्थे जैसी हलचल हुई।

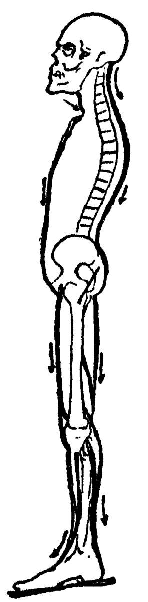
(२) दूसरे प्रकार की हलचल कैसे होती है उसका वर्णन दूसरे प्रकार के हत्थे में किया ही है।

(३) एडी जमीन पर टेककर और पाँव के पंजे पर छोटा सा वजन रखकर उसको पैरसे नीचे ऊपर किया तो तीसरे प्रकार की हलचल हुई।

स्नायु ऊपर बतलाये अनुसार किसी भी प्रकार के हत्थे के रूप में हड्डियों का उपयोग कर लेते हैं। और अपने आकुंचन के कारण शरीर में हलचल पैदा कर देते हैं। पैर में जैसे ही कांटा चुभता है वैसे ही उसकी संवेदना शीघ्र ही नाड़ी-तन्तु द्वारा

मस्तिष्क को पहुँच जाती है। और मस्तिष्क से विशिष्ट नाड़ी-तन्तुओं द्वारा उतने ही शीघ्र पैर के स्नायुओं को आकुंचित होने के लिए आज्ञा भेजी जाती है, जिससे पैर तुरंत उठ जाता है (आकृति नं. ८८ देखिये)। यह सब काम एक क्षण के भीतर ही हो जाता है। इसी प्रकार समस्त मस्तिष्क के नियंत्रण में रह कर स्नायु अपने आकुंचन द्वारा शरीर की हलचल पैदा करते हैं; साथ ही शरीर में ऊष्णता और शक्ति भी पैदा करते हैं।

९९. शरीर में मामूली हलचल के लिए अनेक स्नायुओं को काम करना पडता है। इतना ही नहीं, उसमें सबके पूर्ण सहकार्य (Co-ordination) की भी आवश्यकता पडती है। भुजदण्ड के सामने के भाग में द्विशिरस्क (Biceps) नामक कुहनी को मोडनेवाला (Flexor) स्नायु है। और दण्ड के पिछले भाग में हाथ लम्बा करनेवाला (Extensor) त्रिशिरस्क (Triceps) नाम का स्नायु है (आ. ८४ देखिये)। जब हम हाथ को अपने कन्धे पर रखने लगते हैं, तब द्विशिरस्क नामक स्नायु का आकुंचन होता है और त्रिशिरस्क स्नायु फैलता है। इस तरह एक दूसरे के विरुद्ध काम करनेवाले इन स्नायुओं के सहकार्य से ही हाथ ऊपर उठ सकता है। इस कोटि के अनेक स्नायु शरीर में हैं।



आकृति ८९

इसमें एक दूसरे के विरुद्ध काम करनेवाले स्नायुओं के कारण शरीर किस तरह सीधा रहता है यह दिखलाया गया है।

खडे होने की क्रिया—जब हम खडे होते हैं उस समय पृष्ठभाग के स्नायु शरीर को पीछे खींचते हैं और इसके विपरीत उदर के स्नायु उसे आगे सम्हाले रहते हैं। जाँघ के स्नायुओं की ओर से घुटने के नीचे का पैर को पीछे खींचता है, इसीसे घुटना सीधा रहता है। पिंडली के स्नायु पैर को पीछे खींचते हैं और टखने की संधि उसे सीधा रखती है। इसीसे हम आगे नहीं गिरते। ग्रीवा के स्नायु शिर को सीधा रखने में मदद पहुँचते हैं। इस तरह आप देखेंगे, खडे रहने से विश्रांति नहीं मिलती; प्रत्युत सब स्नायुओं के सहकार्य से ही हम खडे होने की क्रिया कर पाते हैं।

चलने की क्रिया—इस क्रिया को करते समय हमारा शरीर अदल बदल कर किसी एक पैर पर तौला जाता है। अगला पैर जमीन पर टिकते ही दूसरे पैर की पिंडली के स्नायुओं का आकुंचन होता है, जिससे शरीर पिछले पैर के पंजे पर सध जाता है। अगला पैर जोर से जमीन पर पडने के कारण पिछला पैर सीधा होकर शरीर को आगे ढकेलता है। इस तरह शरीर का सब भार अगले पैर पर पडने के कारण पिछला पैर उठ कर आगे पडता है। प्रत्येक पैर के स्नायुओं का आकुंचन क्रम २ से होकर यही क्रिया बार २ होती है, जिसे हम चलना कहते हैं।

दौड़ने में भी ऊपर लिखे अनुसार क्रिया किया जाता है। अंतर केवल इतना ही है कि वह बहुत शीघ्र होती है; जिससे पैर पर शरीर का भार बहुत थोडे समय तक रहता है। कई बार तो शरीर अधर स्थिति में रहता है। इस प्रकार शरीर में अनेक महत्त्वपूर्ण स्नायु हैं जिनका हलचल के समय उपयोग होता है (आकृति ७५ देखिये)।

कंधे का त्रिकोणी स्नायु (Deltoid) — यह भुजदंड को ऊपर उठाये रहता है।

द्विशिरस्क स्नायु (Biceps) — यह भुजदंड के अगले भाग में है। उसके दो शिर हैं, जिनके आकुंचन से हाथ कन्धे की ओर ले जाया जाता है।

त्रिशिरस्क (Triceps) नामक स्नायु भुजदंड की पिछली, ओर है। उसके तीन शिर हैं। इसके आकुंचन से हाथ कुहनी से लम्बा होने पर पीछे ले जाया जाता है।

कुहनी के नीचे के हस्त भाग में **आकुंचक स्नायु** (Flexors) कलाई, हाथ के पंजे और अंगुलियों को मोड़ते हैं और **प्रतानक स्नायु** (Extensors) उन्हें लम्बा कर सीधा बनाते हैं।

जाँघ के अगले भाग के **चतुःशिरस्क स्नायु** (Quadriceps) घुटने को सीधा रखते हैं। और पिछले भाग के स्नायुओं द्वारा घुटना मोडा जाता है।

पिंडली का स्नायु (Gastroc-nemius) — ऊपर की तरफ कुछ खास मोटा होकर नीचे की ओर उसके अस्थिबंधन का (Tendo-achilis) चपटा और मोटा भाग एडी की हड्डी के ऊपर की ओर बंधा होता है। (आकृति ८२ और ८५ देखिये) और वह अपने हाथसे आसानीसे टटोला जा सकता है। तलुएपर खडे रहते समय यह स्नायु एडी को ऊपर की ओर उठाता है।

उरोज स्नायु (Pectoralis) पंख के समान वक्षस्थल के ऊपरी भाग में फैला हुआ है। आकुंचन से यह भुजदंड की भीतरी और सामने की गति में सहायता देता है।

चेहरे के स्नायु से हास्य, क्रोध आदि अनेक प्रकार के विकार चेहरे पर प्रकट होते हैं। चेहरे के कुच्छ स्नायुओं के कारण निचला जबडा हिलता है। जिससे भोजन चबाने में सहायता मिलती है।

प्रत्येक पसलियों के बीच के स्नायु (Inter-costa muscles) — ये श्वासोच्छ्वास करते समय पसलियों को ऊपर नीचे ले जाते हैं।

वक्षस्थल और उदर के बीच में जो कमानदार स्नायु है उसे **श्वासपटल** (Diaphragm) कहते हैं। यह श्वासोच्छ्वास का महत्त्वपूर्ण स्नायु है।

प्रश्न

१. स्नायु के प्रकार बतला कर उनके उदाहरण दीजिये। (बं. वि. वि. १९४२).

२. इच्छवर्ती स्नायुओं के बारे में आपको क्या जानकारी है? (एस. एस्. सी. १९४९, १९५१, १९५२).

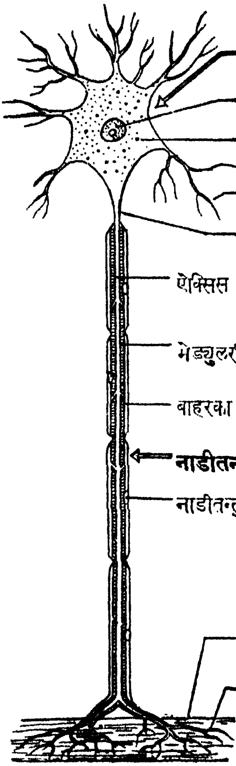
३. अनिच्छावर्ती स्नायुओं के बारे में आपको क्या जानकारी है? (एस्. एस्. सी. १९५४, १९५५).

अध्याय नववाँ

नाडी-प्रणाली (The Nervous System)

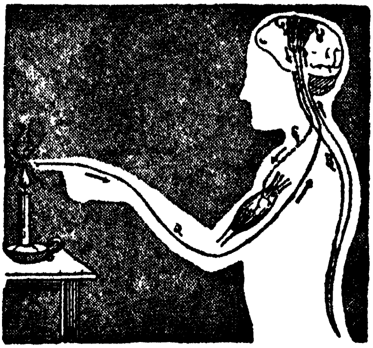
१००. शरीर की प्रत्येक इंद्रिय-प्रणाली (System) अपना कार्य करती रहती है। परन्तु इन सब का कार्य एक दूसरे की सहायतासे और अनुशासन से चलाने के लिए उनपर अनुशासन करनेवाली एक इंद्रिय-प्रणाली है, जिसे **नाडी-प्रणाली** (Nervous system) कहते हैं।

१०१. रचना— जिस प्रकार प्रत्येक इन्द्रिय असंख्य पेशियों की बनी होती है उसी प्रकार पूर्ण नाडी-संस्था **नाडीघटकों** (Neurons) (आकृति ८७ देखिये) की बनी है। प्रत्येक नाडी-घटक के **नाडी-पेशी** (Nerve cell) और **नाडीतन्तु** (Nerve fibre) दो भाग होते हैं। नाड़ीपेशी (Nerve cell) पेशीद्रव (Protoplasm) के अनियमित आकार का एक सूक्ष्म गोला ही होने के कारण उसके बीच में केन्द्रभाग (Nucleus) रहता है और उसके पास अनेक सूक्ष्म कण (Granules) रहते हैं। नाड़ीपेशी से अनेक **शिखातन्तु** (Dendrons) निकलते हैं, जिससे पास के नाड़ीघटक (Neurons) परस्पर जुडे रहते हैं और एक के संदेश को दूसरे तक पहुँचा देते हैं। इनमें एकही शाखा लम्बी लचीली रहती है जिसे **मुख्यतन्तु** (Axon) कहते हैं। नाड़ीपेशी से बाहर निकलनेपर इस पर एक आवरण (Covering) छा जाता है। इस आवरणसहित मुख्यतन्तु (Axon) को **नाडीतन्तु** (Nerve fibre) नाम दिया गया है। शरीर में जो अनेक नाड़ीतन्तु (Nerves) हमारी आँखों से दिखाई देते हैं उनमें से प्रत्येक नाडीतन्तु ऊपर वर्णन किये गये सूक्ष्म तन्तुओं (Ferve fibres) का एक समूह ही है। सब तन्तु नाड़ीपेशी (Nerves cell) से निकलते हैं और परस्पर एक दूसरे से संयोगी पेशी-जाल (Connective tissue) से गूँथे रहते हैं। सूक्ष्मदर्शकयंत्र से यदि इस सूक्ष्म नाडीतन्तु (Nerve fibre) को देखें तो ऊसमें हमें (१) **एक्सिस सिलेन्डर** अथवा **ऐक्सान** नामक मध्यवर्ती अर्धप्रवाही पदार्थ, (२) उसपर चिकने पदार्थ का **मेड्युलरी-शीथ** (Medullary sheath) नामक एक प्रकार का आवरण और (३) बिलकुल बाहर एक बहुत ही पतला आवरण दिखलाई पडता है। इस प्रकार बने हुए नाड़ीतन्तुओं को, **मेड्युलेटेड नाडीतन्तु** (Medullated nerve fibres) कहते हैं। कुछ तन्तुओ को, उदाहरणार्थ अनिच्छावर्ती नाडी-प्रणाली (Sympathetic nervous system) तन्तुओं को इस प्रकार की मेड्युलरी शीथ नहीं रहती। इसलिए उन्हें **नॉन मेड्युलेटेड** अथवा **भूरे नाडी-तन्तु** (Non-medullated or grey nerve fibres) कहते हैं। नाड़ी-प्रणाली के यदि किसी भाग में नाड़ी-पेशियाँ ही (Nerve cells) मुख्यतः रहती हैं, तो यह भाग भूरे रंग का ही दिखाई देता है। और यदि नाडी-तन्तु (Nerve fibres) अधिक हों तो यह भाग सफेद दिखाई देता है।



आकृति ८७ — **नाडीघटक** (Neuron)

१०२. नाडीघटकों (Neurons) **के कार्य और नाडीतंतुओं** (Nerves) **के प्रकार** — इलेक्ट्रिक सेल (Electric cell) में जिस प्रकार बिजली तैयार होती है और ' सेल ' से निकलनेवाले तार का काम केवल बिजली को बहा ले जाने का होता है उसी प्रकार नाडीपेशी (Nerve cell) में प्रेरणा (Impulse) उत्पन्न होकर वह नाडीतन्तु (Nerve fibre) की ओर बहा ले जाई जाती है। नाडीपेशी में उद्दीपन (Excitation) से जो चेतना (Disturbance) उत्पन्न होती है उसे प्रेरणा (Impulse) कह सकते हैं। प्रेरणा उत्पन्न करना, दूसरी ओर से आई हुई प्रेरणा को स्वीकारना तथा स्वीकार की हुई प्रेरणा को दूसरी ओर भेजना ये काम नाडीपेशियाँ करती हैं। नाडीतन्तु में अपने आप प्रेरणा उत्पन्न नहीं हो सकती। जो नाडीतन्तु शरीर के भिन्न २ भागों की प्रेरणा पृष्ठवंश-रज्जु (Spinal cord) या मस्तिष्क की ओर पहुँचा कर मस्तिष्क में संवेदना (Sensation) उत्पन्न करता है उसे **संवेदनावाहक नाडीतन्तु** (Afferent or sensory nerve) कहते हैं। मस्तिष्क या पृष्ठवंश-रज्जु से निकलनेवाले संदेश अथवा



आकृति ८८—**संवेदनावाहक** (Afferent) **और आज्ञावाहक** (Efferent) **नाडीतन्तु बतलानेवाली आकृति।**

१ जलती हुई मोमबत्ती. २ संवेदनावाहक नाडीतन्तु. मोमबत्ती की गर्मी के कारण उत्पन्न हुई प्रेरणा इस नाडीतन्तु के मार्ग से ३ इस पृष्ठवंशरज्जु (Spinal cord) की ओर जाती है और यहाँ से ४ इस मस्तिष्क के संवेदनाकेन्द्र में (Sensory area) पहुँचती है, ५ आज्ञाकेन्द्र (Motor area), ६ द्विशिरस्क स्नायु की ओर जानेवाला नाडीतन्तु.

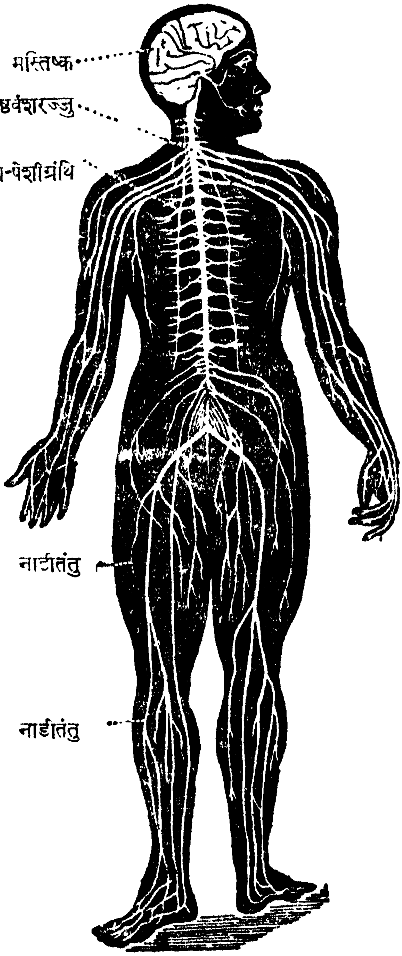
आज्ञाएँ शरीर के भिन्न २ भागों को जिस नाडीतन्तु द्वारा पहुँचायी जाती हैं उसे **आज्ञावाहक नाडीतन्तु** (Efferent nerve) कहते हैं। इन नाडीतन्तुओं के तीन प्रकार हैं:—

(१) स्नायुओं की ओर जानेवाले नाडीतन्तु (Motor nerves)– इनकी सहायता से स्नायुओं का आकुंचन होता है। (२) भिन्न २ ग्रन्थियों (Glands) की ओर जानेवाले नाडीतन्तु (Secretory nerves)– इनकी सहायता से ग्रन्थियों में स्राव उत्पन्न होता है। (३) रक्तवाहिनियों का नियंत्रण करनेवाले नाडीतन्तु (Vasomotor nerves)– इनकी सहायता से रक्तवाहिनियों की दीवार के स्नायु सिकुड़ या फैल सकते हैं; जिससे शरीर के किसी भाग में रक्त आवश्यकतानुसार कम अधिक परिमाण में भेजा जा सकता है। कई बार संवेदनावाहक (Afferent) और आज्ञावाहक (Efferent) दोनों तरह के तन्तु जिस एक ही नाडीतन्तु में रहते हैं उसे **मिश्र नाडीतन्तु** (Mixed nerve) कहते हैं।

१०३. समस्त नाडी-संस्था के दो विभाग हैं।

(१) मध्यवर्ती अथवा मुख्य नाडी-संस्था (Central nervous system)।

(२) अनिच्छावर्ती नाडी-संस्था (Sympathetic or autonomic nervous system)



आकृति ८९ — **मनुष्य की नाडी-संस्था**

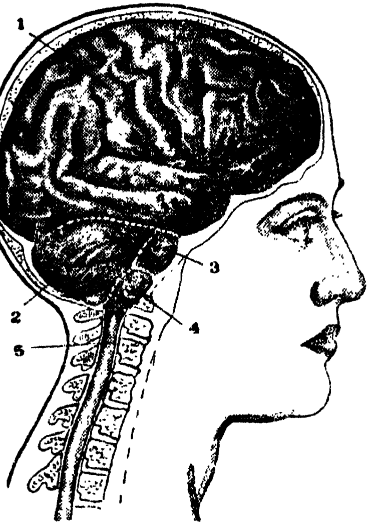
मध्यवर्ती नाडी-संस्थ (Central or cerebro-spinal nervous system) निम्न विभागों से मिल कर बनी है। (१) सिर की खोपडी में रहनेवाला **मस्तिष्क**। (२) मस्तिष्क से निकलनेवाली और पीठ के कशेरुकों (Vertebral column) में रहनेवाली **पृष्ठवंशरज्जु** (Spinal cord)। (३) मस्तिष्क और पृष्ठवंशरज्जु से निकलनेवाले **नाडीतन्तुओं** की (Nerves) अनेक शाखाएँ।

१०४. मस्तिष्क (Brain) — नाडी-संस्था का यह सब से बडा विभाग है, जो आठ हड्डियों से बनी हुई सिर की खोपडी में जमा हुआ है। इस नाजुक और महत्त्व की

इंद्रिय का संरक्षण हड्डी की खोपडी के कारण उत्तम रीति से हो जाता है। खोपडी के अन्दर जमे हुए मस्तिष्क (Brain) के तीन आवरण (Coverings) रहते हैं। जिन्हे (१) **बाह्य आवरण** (Dura mater), (२) **मध्य आवरण** (Arachnoid) और (३) **अन्तरावरण** (Pia mater) कहते हैं। बाह्यावरण (Dura mater) मोटा और मजबूत रहता है; मध्य आवरण (Arachnoid) पतला और कोमल रहता है; मस्तिष्क को रक्त पहुँचानेवाली बडी रक्तवाहिनियाँ इसीके साथ संलग्न रहती हैं। अन्तरावरण (Pia mater) मस्तिष्क से बिल्कुल लगा हुआ है और बिल्कुल पतला है। उसीमें से रक्त-वाहिनियाँ (Blood vessels) मस्तिष्क में जाती हैं। मध्यावरण और अन्तरावरण के बीच में एक प्रकार का द्रव याने तरल पदार्थ (Cerebro-spinal fluid) रहता है। इस द्रव के कारण मस्तिष्क को एकाएक धक्का नहीं पहुँच पाता।

मस्तिष्क के चार हिस्से किये जाते है—

(अ) बडा मस्तिष्क (Cerebrum), (आ) छोटा मस्तिष्क (Cerebellum), (इ) नाडीसेतु (Pons) और (ई) लंबनाडी या अधःस्थित मस्तिष्क (Medulla oblongata).



आकृति ९० — **मनुष्य का मस्तिष्क और उसके चार भाग।**

(भिन्न २ भाग सफेद टिपकियों की कतारों से दिखलाये गये हैं।)

1 बडा मस्तिष्क (Cerebrum). 2 छोटा मस्तिष्क (Cerebellum). 3 सेतु (Pons). 4 लंबनाडी (Medulla). 5 पृष्ठवंशरज्जु (Spinal cord).

१०५. (अ) **बडा मस्तिष्क** (Cerebrum) – मस्तिष्क का यह सब से बडा भाग है। खोपडी का बहुत सा हिस्सा इसीने व्याप्त किया है। ऊपर कहे अनुसार इसमें बाह्य आवरण (Dura mater), मध्य आवरण (Arachnoid), और अंतरावरण (Pia mater) होतें हैं। अन्तिम दो आवरणों के बीच में एक प्रकार का द्रव पदार्थ (Cerebro-spinal fluid) रहता है। इस मस्तिष्क के दो अर्ध गोलाकार भाग (Cerebral hemispheres) हो गये हैं जो नीचे की ओर एक दूसरे से नाडीतन्तुओं द्वारा जुडे हुए हैं, इस लिए इनके भीतर का गढा तल तक नहीं जाता और इस गढे में रहनेवाले बाह्य आवरण (Dura mater) से दोनों भाग ऊपर की ओर विभक्त होते हैं। बडे मस्तिष्क के समस्त पृष्ठभाग पर बल (Convolutions) हैं। हर दो बलों के बीच में दरार (Fissure) सी रहती है और उसमें से अन्तरावरण (Pia mater) के साथ रक्तवाहिनियाँ मस्तिष्क में प्रविष्ट होती हैं। इस मस्तिष्क के ऊपरी भाग को **कॉरटेक्स** (Cortex) कहते हैं। वहाँ नाडीपेशियों की (Nerve cells) मुख्यता होने के कारण उस का रंग भूरा दिखाई देता है। संवेदना अनुभव करना, हलचल करना, देखना, सुनना आदि क्रियाओं के अनुसार उनपर नियंत्रण करनेवाली नाडीपेशियों के अलग २ समूह इस स्थान पर रहते हैं। उस प्रत्येक समूह को **नाडी-केंद्र** (Nerve-centre) कहते हैं। उन नाडीपेशियों (Nerve cells) से निकलनेवाले नाडीतंतु (Nerve fibres) मस्तिष्क के भीतरी बाजू ओर जाने के कारण इस मस्तिष्क का गूदा सफेद रंग का दिखाई देता है। बडे मस्तिष्क के प्रत्येक बडे अर्ध गोल के भेजे में और दोनों अर्ध गोलों के बीचोबीच एक प्रकार के द्रव (Cerebro-spinal fluid) वाला वेन्ट्रीकल (Ventricle) नामक एक खोखला भाग है।

बडे मस्तिष्क के कार्य (Functions of the cerebrum)—

(१) बडे मस्तिष्क (Cerebrum) की नाडीपेशिओं द्वारा ही बुद्धिमत्ता, इच्छाशक्ति, भिन्न २ भावनाएँ, स्मरणशक्ति, कल्पनाशक्ति, आदि मनुष्यों में रहनेवाली उच्चतम मानसिक शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। अन्य प्राणियों की अपेक्षा मनुष्य के मस्तिष्क का यह भाग बडा रहता है। मनुष्य जितना बुद्धिमान होता उसी हिसाब से इस भाग की वृद्धि विशेष रूप से होती है और उसके पृष्ठभाग में बल (Convolutions) भी अधिक स्पष्ट और बडे दिखाई देते हैं।

(२) भिन्न २ भागों से आनेवाली विशिष्ट संवेदना नाडीतन्तुओं द्वारा इस मस्तिष्क में पहुँच जाती है (Receives sensory impulses) जिससे हमें स्पर्श, वेदना, शीत या ऊष्णता इत्यादि का ज्ञान होता है। इसी तरह भिन्न २ वस्तुओं के रूप, गंध, स्वाद आदि का भी ज्ञान हो सकता है।

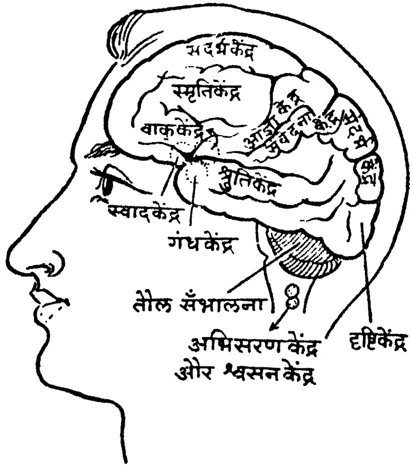
(३) संवेदना किस प्रकार की है इसका यहाँ पूर्ण पृथक्करण (To interpret the sensations) किया जाता है। मतलब यह की विशिष्ट संवेदनाओंका ज्ञान होने पर उनके विषय की पूर्वानुभूतियों को याद करके कुछ खास क्रिया करना जरूरी है या नहीं

इसका निर्णय सोच विचारके बाद यह मस्तिष्क तय करता है। उदाहरण के लिए – गाय हमपर झपटने को आती है यह देखते ही मस्तिष्क निर्णय करेगा कि वहाँ से भाग जाना या खडे होना जरूरी है।

(४) विशिष्ट क्रियाओंको कार्यान्वित करने के लिए इस मस्तिष्क ही से आज्ञा-वाहक नाडीतन्तुओं (Motor nerves) द्वारा शरीर के विशिष्ट स्नायुओं या ग्रन्थियों (Glands) को आज्ञा भेजी जाती है।

(५) छोटा मस्तिष्क (Cerebellum), नाडीसेतु (Pons), लम्बनाडी (Medulla), पृष्ठवंशरज्जु (Spinal cord) आदि नाडी-संस्था के अन्य सब भागों पर भी बडे मस्तिष्क का नियंत्रण रहता है।

मस्तिष्क का काम किसी बडे ऑफिस की मुख्य शाखा के समान रहता है। जिस प्रकार प्रत्येक उपशाखाएँ छोटी २ बातों को भी मुख्य शाखा को सूचित करती हैं और ऊपर के अधिकारियों की आज्ञा के अनुसार छोटे नौकरों को कार्य करना पडता है, उसी प्रकार शरीर के किसी भी भाग की संवेदना (Sensory impulse) प्रथमतः मस्तिष्क की ओर भेजी जाती है और वहां से आज्ञावाहक नाडीतन्तुओं के (Motor nerves) द्वारा जैसी आज्ञा प्राप्त होती है उसी प्रकार की क्रिया भी उस भाग में होती है। अंगारे पर हाथ के पडते ही उसका समाचार शीघ्र ही मस्तिष्क को मिल जाता है; और तब यहाँ से हाथ के स्नायुओं का आकुंचन होकर हाथ दूर करने की आज्ञा होती है (आकृति ८८ देखिये) यह सब बात एक क्षण में घट जाती है।



आकृति ९१ — **बडे मस्तिष्क के** (Cerebrum) **बायें अर्धगोल में विशिष्ट कार्य करनेवाले नाडीकेन्द्र** (Areas or nerve centres)

प्रयोगों मे ऐसा प्रकट हुआ है कि बडे मस्तिष्क के भिन्न २ भाग भिन्न २ काम करते हैं। प्रत्येक भाग अपना निर्दिष्ट काम ही करता रहता है। मस्तिष्क के ऊपरी पृष्ठभाग पर एक बडी आडी दरार (Central fissure) दिखाई देती है। उसके पीछे के मस्तिष्क का भाग को **संवेदना केन्द्र** (Sensory area) कहते हैं। स्पर्श, वेदना, शीत या उष्णता इत्यादि संवेदनाओं का ज्ञान यहां होता है। क्योंकि सब संवेदनावाहक नाडीतन्तुओं का (Sensory nerves) अन्त यहाँ की पेशियां में ही हुआ होता है।

मस्तिष्क के पिछले भाग में दृष्टिज्ञान करा देनेवाली नाडीपेशियों का समूह या **दृष्टिकेन्द्र** (Visual area) है और आँखों की ओर से आनेवाले नाडीतन्तुओं का भी यहाँ अन्त होता है। **स्वाद** और **गंध के नाडीकेन्द्र** (Centres of taste and smell) मस्तिष्क के नीचे की ओर भीतरी पृष्ठभाग की तरफ रहते हैं। **श्रुतिकेन्द्र** (Centre of hearing) बाहरी बाजू और **वाचा के केन्द्र** (Centre of speech) मस्तिष्क के सिर्फ एकही बाजू याने मस्तिष्क के बायें अर्ध गोल (Left hemisphere) के बाहरी तरफ रहते हैं।

संवेदना-केन्द्र (Sensory area) के आगे की ओर **आज्ञा केन्द्र** (Motor area) है। उसकी नाडीपेशियां (Nerve cell) से निकलनेवाले आज्ञावाहक नाडीतन्तु (Motor nerves) शरीर के भिन्न २ स्नायुओं में जाते है, जिससे कोई भी स्नायु अपने इच्छानुसार या यों कहिये मस्तिष्क की आज्ञा के अनुसार आकुंचित हो सकता है। बडे मस्तिष्क के एक अर्ध गोल (Hemisphere) के संवेदनाकेन्द्र और आज्ञाकेन्द्र का शरीर के विरुद्ध बाजू पर अधिकार रहता है। क्यों कि दोनों अर्ध गोल के इस केन्द्र से निकलनेवाले नाडीतन्तु पृष्ठवंशरज्जु (Spinal cord) में जाने के पूर्व परस्पर को लांघ कर विरुद्ध बाजू की ओर जाते हैं। इसी लिए यदि एक बाजू के केंद्र को आघात पहुँचता है या रक्तस्राव होकर अथवा रक्तवाहिनी का रक्त जम जानेपर उसे मिलनेवाले रक्तप्रवाह रुक जाता है तो विरुद्ध बाजू की हलचल करने की शक्ति नहीं सी हो जाती है। और विरुद्ध बाजू को स्पर्श करने या सूई चुभने का ज्ञान भी मनुष्य को नहीं होता।

वर्णन किये गये भागों के अतिरिक्त बडे मस्तिष्क के जो अन्य भाग शेष रहे हैं उसके कार्यों का अभी तक निश्चित ज्ञान नहीं हुआ। इन भागों को शान्तक्षेत्र (Silent areas) कहते हैं। बडे मस्तिष्क के भिन्न २ विभागों में से एक भाग से निकलकर दूसरे भाग की ओर जानेवाले (Association fibres) अनेक तंतु होते हैं और ऊपर वर्णन किये हुए अलग २ केंद्रों का संबंध जोडना यही इनका काम है।

१०६. (आ) छोटा मस्तिष्क (Cerebellum) — यह बडे मस्तिष्क के नीचे और पीठ की ओर है। बडे मस्तिष्क की अपेक्षा यह बहुत ही छोटा है। उससे भी अर्धगोलाकार (Hemispherical) दो विभाग हैं जो परस्पर नाडीसेतु (Pons) से जुडे हुए हैं। उसके पृष्ठभाग पर आडी रेखा दिखाई देती है। यह पृष्ठभाग भूरे रंग का है

जिसका भीतरी भाग सफेद है। और उसकी रचना कुछ २ पेड की डालियां जैसी रहती है (आकृति २९ देखिये)। छोटे मस्तिष्क के निम्न काय हैं।

(१) वह बडे मस्तिष्क को स्नायुओं पर आधिपत्य जमाने में सहायता पहुँचता है।

(२) शरीर की भिन्न २ हलचलें होने के लिए एकही समय अनेक स्नायुओं को काम करना पडता है। इन सब स्नायुओं का योग्य प्रकार से नियमन करके उनसे साथ काम करा लेना छोटे मस्तिष्क का काम है। चलना, दौडना जैसी क्रियाएँ छोटे मस्तिष्क द्वारा सम्पन्न कराई जाती हैं (Co-ordination of muscular movements)।

(३) इसकी वजह से ही शरीर के तौल को सँभालने में मदद मिलती है और मस्तिष्क के इस कार्य में कान की तीन अर्धवर्तुलाकृति नलिकाओं (Semicircular canals) की मदद मिलती है। शराब के नशे के चढने पर मनुष्य जो अपना तौल सँभाल नहीं पाता उसका कारण इस शराब का परिणाम छोटे मस्तिष्क पर पडता है।

१०७ (इ). **नाडीसेतु** (Pons)-- मस्तिष्क का यह भाग लम्बनाडी (Medulla) के ऊपरी ओर है। इससे छोटे मस्तिष्क के दोनों हिस्से जोडे जाते हैं। इसके उपरी भाग पर नाडीतन्तुओं के जाल फैले रहने के कारण उसका रंग श्वेत है। और नाडीपेशी भीतरी ओर होने के कारण वहाँ का भाग भूरा है

कार्य — १. भिन्न २ भागों से पृष्ठवंशरज्जु से होकर ऊपर जानेवाली संवेदना (Sensory impulse) यहाँ से ही मस्तिष्क की ओर जाती है।

२. मस्तिष्क से आज्ञावाहक नाडीतन्तु के द्वारा (Efferent nerves) भिन्न २ भागों की ओर जानेवाली आज्ञा इसके बीच से ही हो कर जाती है।

१०८ (ई). **लम्ब नाडी** (Medulla oblongata) — यह मस्तिष्क के सब से नीचे का भाग है। इसकी सहायता से छोटा और बडा मस्तिष्क ऊपरी ओर और पृष्ठवंशरज्जु (Spinal cord) नीचे की ओर एक दूसरे से सम्बद्ध हैं। इसका आकार लम्बा और थोडासा चपटा रहता है। इसका पृष्ठभाग सफेद और भीतरी भाग भूरा है।

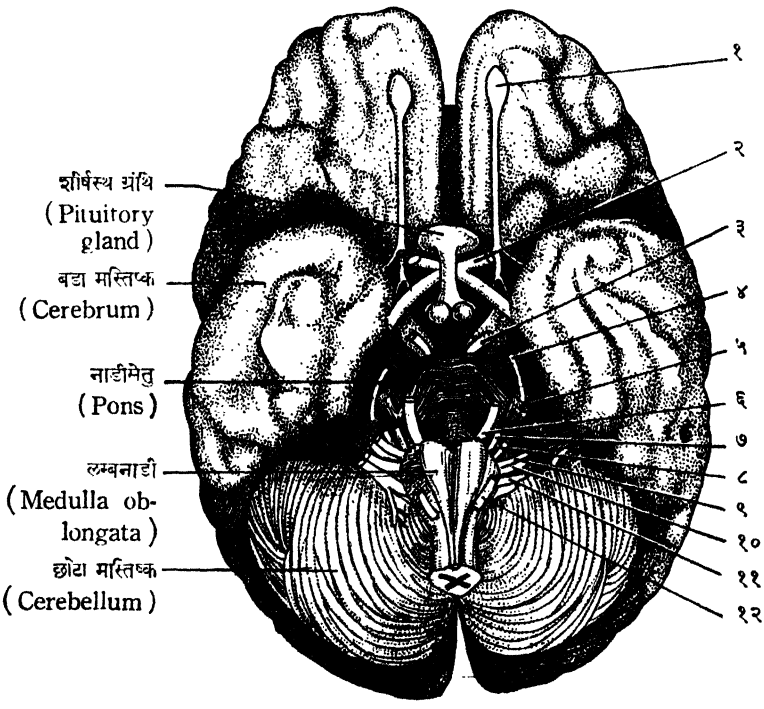
कार्य — १. पृष्ठवंशरज्जु से मस्तिष्क की ओर जानेवाले संवेदनावाहक नाडीतन्तु (Sensory nerves) इससे ही होकर ऊपर जाते हैं।

२. मस्तिष्क से पृष्ठवंशरज्जु की ओर जानेवाले आज्ञावाहक नाडीतन्तु (Motor nerves) इससे ही होकर नीचे जाते हैं।

३. बडे मस्तिष्क के प्रत्येक बाजू के संवेदनाकेन्द्र (Sonsory area) और आज्ञाकेन्द्र (Motor area) से निकलनेवाले नाडीतन्तु यहाँ से दूसरे को लाँघ कर विरुद्ध बाजू में जाते हैं (आकृति नं. ९४ देखिये)।

४. रक्ताभिसरण, श्वसन, निगलने की क्रिया, रक्तवाहिनियों का आकार नियमित करने की क्रिया आदि शरीर की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण क्रियाओं के नाडीकेन्द्र (Centres) इस भाग में ही रहते हैं।

रक्ताभिसरण केन्द्र (Circulatory centre) और **श्वसनकेन्द्र** (Respiratory centre)–ये दोनों केन्द्र मनुष्य के जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक (Vital centres) हैं। उन्हें चोट पहुँचते ही साँस लेने की और रक्त संचलन की क्रिया



आकृति ९२—**मस्तिष्क के नीचे का पृष्ठभाग और वहाँ से निकलनेवाले बारह नाडीतन्तुओं की जोडियाँ।**

१ से १२ तक के आँकडे नाडीतन्तु से सम्बन्ध रखते हैं। १ पहला नाडीतन्तु (Olfactory nerve), २ दूसरा नाडीतन्तु (Optic), ३ तीसरा (Oculo-motor), ४ चौथा (Trochlear), ५ पाँचवाँ (Trigeminal), ६ छठा (Abducent), ७ सातवाँ (Facial), ८ आठवाँ (Auditory), ९ नवाँ (Glosso-pharyngeal), १० दसवाँ (Vagus), ११ ग्यारहवाँ (Spinal accessory), १२ बारहवाँ नाडीतन्तु (Hypoglossal nerve).

एकदम बंद पड जाती है और मनुष्य तत्काल मर जाता है। फाँसी देते वक्त इसी भाग को चोट पहूँचाई जाती है।

१०९. मस्तिष्क से निकलनेवाले नाडीतन्तु (Cranial nerves)–बारह नाडीतन्तुओं की जोडियाँ मस्तिष्क से निकलती हैं। उनका वर्णन नीचे दिया जाता है।

पहला नाडीतन्तु (Olfactory nerve)–गंध का ज्ञान करानेवाला नाडीतन्तु।

दूसरा नाडीतन्तु (Optic nerve)–दृष्टिज्ञान करानेवाला नाडीतन्तु।

तीसरा, चौथा और छठा नाडीतन्तु (Oculo-motor, Trochlear and Abducent nerve)–आँखों की हलचल करनेवाले स्नायुओं को संदेश पहुँचानेवाले आज्ञावाहक नाडीतन्तु (Motor nerves)।

पांचवाँ नाडीतन्तु (Trigeminal nerve)–चेहरे की त्वचा से संवेदना ले जानेवाले (Sensory) और अन्न चबानेवाले स्नायुओं की ओर आज्ञा ले जानेवाले (Motor) ऐसे दोनों प्रकार के तन्तु इसमें रहने के कारण उसे मिश्र नाडीतन्तु (Mixed nerve) कहते हैं।

सातवाँ नाडीतन्तु (Facial nerve)—चेहरे के स्नायुओं को आज्ञा ले जानेवाला (Motor) और स्वाद-ज्ञान (Taste) का संवेदनावाहक (Sensory) नाडीतन्तु।

आठवाँ नाडीतन्तु (Auditory nerve)–कानों का संवेदनावाहक (Sensory) नाडीतन्तु। इसकी एक शाखा काकलिया (Cochlea) की ओर जाती है और दूसरी अर्धवर्तुलाकृति नलिका (Semicircular canals) और व्हेस्टिब्यूल की ओर जाती है।

नवाँ नाडीतन्तु (Glosso-pharyngeal nerve–a mixed nerve)—स्वाद-ज्ञान का संवेदनावाहक (Sensory) और गले के स्नायुओं का आज्ञावाहक (Motor) नाडीतन्तु।

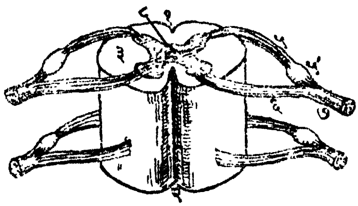
दसवाँ नाडीतन्तु (Vagus nerve. i. e. wandering nerve)—इसमें संवेदनावाहक और आज्ञावाहक दोनों नाडीतन्तु रहते हैं और उनकी शाखाएँ गला, स्वरयंत्र, (Larynx), अन्ननलिका (Food-pipe), जठर (Stomach), हृदय, फेफडे, अँतडियाँ, यकृत (Liver), प्लीहा (Spleen) आदि अवयवों की ओर जाती हैं।

ग्यारहवाँ नाडीतन्तु (Accessory nerve) पीठ के स्नायुओं की ओर जाता है।

बारहवाँ नाडीतन्तु (Hypoglossal nerve) जिह्वा के स्नायुओं की ओर जाता है।

११०. पृष्ठवंशरज्जु या सुषुम्ना (Spinal cord)—यह लम्बी डोरी के समान है जो मस्तिष्क से निकलकर नीचे मेरुदंड (Vertebral column) की पोली नली में उतरती है। मेरुदंड के कारण इसका अच्छी तरह बचाव हो जाता है। पृष्ठवंशरज्जु खोपडी के निचले भाग से प्रारंभ होती है और कमर के पहले कशेरुके (First lumbar vertebra) के पास खतम हो जाती है। उसकी लम्बाई लगभग १८ इंच और चौड़ाई आधा इंच है। गर्दन और कमर के पृष्ठवंशरज्जु के भाग से क्रमशः हाथ और पाँव की ओर

जानेवाले अनेक नाडीतन्तु (Nerves) निकलने के कारण इन दोनों स्थानों के पृष्ठवंशरज्जु का भाग अधिक कडा है। मस्तिष्क के समान पृष्ठवंशरज्जु पर Dura mater, Arachnoid और Pia mater नामक तीन आवरण हैं, जो मस्तिष्क के तीनों आवरणों से संलग्न रहते हैं। इनमें से मध्य आवरण (Arachnoid) और अंतरावरण (Pia mater) के बीच में एक प्रकार का द्रव (Cerebro-spinal fluid) रहने के कारण बाहर से आनेवाले आघात से पृष्ठवंशरज्जु का संरक्षण होता है। उसके अगले और पिछले भाग में दो दरारें (Fissures) रहने के कारण उसके दाहिने और बायें-दो खडे भाग हो गये हैं। पृष्ठवंशरज्जु के आडे कटे भाग को लेकर यदि उसकी परीक्षा की जाय तो उसका बाहरी भाग सफेद और भीतरी भूरे रंग का दिखलाई देगा। मस्तिष्क से निकल कर पृष्ठवंशरज्जु में जानेवाले नाडीतन्तुओं (Nerve fibres) के कारण यह सफेद भाग बना है। भीतरी भूरे रंग का भाग नाडीपेशियों (Nerve cells) का बना है। पृष्ठवंशरज्जु के प्रत्येक अर्ध हिस्से में वह खडे



आकृति ९३

पृष्ठवंशरज्जु का आडा काटा हुआ भाग
(सामने से दिखनेवाला और उससे उत्पन्न होनेवाले नाडीतन्तुओं को दिखानेवाला)

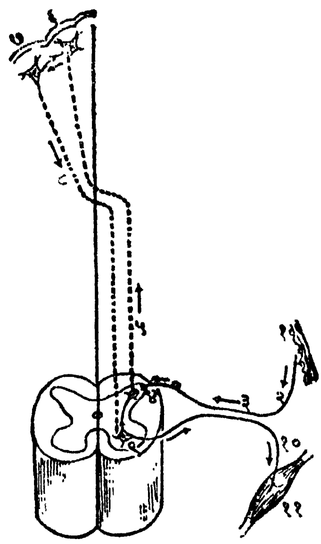
बीच का H आकार का कालासा भाग पृष्ठवंशरज्जुओं की पेशिओं का भूरा भाग है। १ पिछली दरार (Anterior fissure), २ अगली दरार (Posterior fissure), ३ नाडीतन्तु का सफेद भाग, ४ नाडीपेशियों का भूरा भाग, ५ संवेदनावाहक नाडीतन्तु और ५' इसके उपर की नाडीपेशियों की गठान, ६ आज्ञावाहक नाडीतन्तु, ७ मिश्र नाडीतन्तु (Mixed nerve), ८ बीच का छिद्र (Central canal) (कटा हुआ)।

चंद्रकोर के आकार का दिखाई देता है और दोनों हिस्से परस्पर बीच में आडे भूरे रंग के भाग से जुडे हुए हैं। इससे इस रंग का भाग अंग्रेजी H अक्षर के समान दिखाई देता है। पृष्ठवंशरज्जु के मध्य भाग में एक प्रकार का द्रव (Cerebro-spinal fluid) रहता है। भीतर रहनेवाली खडी लचीली परंतु सूक्ष्म पोली नली के कारण इस आडे कटे भाग में ही एक सूक्ष्म छेद दिखलाई पडता है। भूरे रंग का जो भाग रहता है उसके अगले छोर में (Anterior horn) और पिछले छोर (Posterior horn में विशिष्ट नाडीपेशियों का समूह है। अगले छोर की नाडीपेशियों से (Nerve cells) जो नाडीतन्तु की जोडी (Anterior root or motor root) निकलती है उसका काम आज्ञा ले जाना है। उसी प्रकार पिछले छोर से निकलनेवाले नाडीतन्तु (Posterior or Sensory root) संवेदनावाहक (Sensory) हैं। इन पर नाडीपेशियों की एक गठान (Ganglion) रहती है। अगले और पिछले दोनों नाडी-तन्तु मेरुदंड की पोली नली में रहते हुए एक दूसरे से मिलकर मिश्र नाडीतन्तु (Mixed nerve) में परिवर्तित हो जाते हैं, जो दो कशेरुकों के बीच के छेद से बाहर निकलता है। इस प्रकार ऊपर से नीचे तक कुल ३१ नाडीतन्तुओं के जोडे पृष्ठवंशरज्जु से निकलकर

कशेरुकों के बीच से दोनों ओर बाहर जाते हैं। इनमें प्रत्येक मिश्र नाडीतन्तु (Mixed nerve) के शरीर के किसी भी भाग में जाने पर अंत में उसके आज्ञावाहक (Motor) और संवेदनावाहक (Sensory) तन्तु अलग २ हो जाते हैं और आज्ञावाहक तन्तु (Motor fibres) स्नायु में प्रविष्ट होते हैं और संवेदनावाहक तन्तुओं (Sensory fibres) का अंत त्वचा के समान संवेदना अनुभव करनेवाली इन्द्रियों में होता है।

सुषुम्ना या पृष्ठवंशरज्जु के कार्य —

(१) स्पर्श, वेदना, ठंड या गर्मी की संवेदनाएँ (Sensory impulses) शरीर के भिन्न २ भागों की ओर से पृष्ठवंशरज्जु में लायी जाती हैं और वहाँ से वे मस्तिष्क की ओर भेजी जाती हैं।



आकृति ९४ — **पृष्ठवंशरज्जु की प्रतिक्षिप्त क्रिया (Reflex action) में संवेदना का मार्ग दिखलानेवाली आकृति।**

१ संवेदना उत्पन्न होनेवाला पृष्ठभाग, त्वचा। २ संवेदनावाहक नाडीतन्तु (Sensory nerve), ३ मिश्र नाडीतन्तु (Mixed nerve), ४ पृष्ठवंशरज्जु के संवेदना केन्द्र (Sensory cells), ९ पृष्ठवंशरज्जु के आज्ञा केन्द्र (Motor cells), १० आज्ञावाहक नाडीतन्तु (Motor nerve), ११ स्नायु। सामान्यतः १ त्वचा से निकलनेवाली संवेदना २ नाडीतन्तुओं में से ४ पृष्ठवंशरज्जु (सुषुम्ना) की पेशी में जाती है और वहाँ से बिंदु-रेखाओं से दिखलाये गये मार्ग द्वारा विरुद्ध बाजू के मस्तिष्क के ६ संवेदना केन्द्र में जाती है। ७ आज्ञाकेन्द्र से नीचे आनेवाली ८ आज्ञा पृष्ठवंशरज्जु के मार्ग से ९ अगले बाजू की पेशी में से १० नाडीतन्तुओं द्वारा ११ स्नायु की ओर जाती है। प्रतिक्षिप्त के क्रिया के समय संवेदना ऊपर मस्तिष्क की ओर न जाकर पृष्ठवंशरज्जु (सुषुम्ना) के ४ से ९ की ओर पहुँचती है और यहाँ से स्नायु की ओर आज्ञा जाती है।

(२) मस्तिष्क से निकलनेवाले संदेश (Motor impulses) पहले पृष्ठवंशरज्जु की ओर आते हैं और वहाँ से नाड़ीतन्तुओं के द्वारा स्नायुओं की ओर भेजे जाते हैं।

(३) **प्रतिक्षिप्त क्रिया** (Reflex action)–किसी मनुष्य की पृष्ठवंशरज्जु को यदि चोट पहुँच जाय तो पृष्ठवंशरज्जु और मस्तिष्क का संबन्ध टूट जाता है और वह अपने पैर के स्नायुओं को अपने इच्छानुसार न तो हिला-डुला सकता है और न उस भाग में होनेवाले स्पर्श को अनुभव कर सकता है। ऐसी अवस्था में जब उस मनुष्य के पैर में गुदगुदी की जाती है तब उसे उसका ज्ञान न होने पर भी उसका पैर अपने आप ऊपर खिंच आता है। इसका कारण यह है कि पृष्ठवंशरज्जु के भूरे भाग में जो नाड़ीपेशियाँ (Nerve cells) रहती हैं वे कई बार नाडीकेंद्र (Nerve centre) का भी काम कर सकती हैं। पैर के स्पर्श की संवेदना जब इन तक पहुँचती है तो वे उस संवेदना को मस्तिष्क की ओर न भेजकर अपनी जिम्मेदारी पर पैर के विशिष्ट स्नायुओं को आदेश भेज सकते हैं, जिससे बिना हमारे जाने पैर ऊपर खिंच जाता है। इस रीति से शरीर के किसी भाग से आनेवाली संवेदना मस्तिष्क की ओर न भेजकर पृष्ठवंशरज्जु जिस क्रिया को सम्पन्न कराती है उसे **प्रतिक्षिप्त क्रिया** (Reflex action) कहते हैं। इस क्रिया के सम्पन्न होने के लिए निम्न भागों की ज़रूरत है (आ. ९४ देखिए)। (१) संवेदना उत्पन्न होनेवाला पृष्ठभाग (Sensory surface) उदाहरण–त्वचा, (२) संवेदनावाहक नाडीतन्तु (Afferent or sensory nerve), (३) नाडीकेंद्र (Nerve centre), (४) आज्ञावाहक नाडीतन्तु (Efferent or motor nerve), (५) स्नायु अथवा ग्रंथि (Gland)।

प्रतिक्षिप्त क्रिया (Reflex action) हमेशा होनेवाली ऐच्छिक (Voluntary) क्रियाओं की अपेक्षा बहुत जल्दी होती है। चलना, तैरना, सायकल पर बैठना इत्यादि क्रियाओं की हलचल पहले ऐच्छिक स्वरूप की रहती है; परन्तु उन्हीं क्रियाओं को बार २ करने से वे बाद में प्रतिक्षिप्त (Reflex) बन जाती हैं। उदाहरणार्थ–सायकल पर बैठने में अभ्यस्त मनुष्य को पेडलों को आगे पीछे करने के लिए सोचने की जरूरत नहीं पडती। ऐसी क्रिया करते वक्त मस्तिष्क अन्य क्रिया करने को स्वतंत्र रहता है; इसके सिवा शरीर के अवयवों का रक्षण करने में भी इन क्रियाओं का उपयोग होता है। आँखों में धूल का कण या दूसरे की अँगुलियों का स्पर्श होते ही पलकें स्वयंही लग जाती हैं और आँखों का संरक्षण होता है। इसे **नेत्रावरण की प्रतिक्षिप्त क्रिया** (Conjunctival reflex) कहते हैं। उसी प्रकार पेट पर थपथपाने से भीतरी इन्द्रियों का रक्षण करने के लिए पेट के अगले भाग के स्नायु कडे हो जाते हैं। इस क्रिया को **उदर की प्रतिक्षिप्त क्रिया** (Abdominal reflex) कहते हैं। इसके अतिरिक्त **घुटने की प्रतिक्षिप्त क्रिया** (Knee jerk) नामक और एक महत्त्व की प्रतिक्षिप्त क्रिया है। यदि मनुष्य को एक कुर्सी पर घुटने पर घुटना रखकर बैठाया जाय और उसके घुटनेके नीचे, स्नायुबंधन पर (Patellar tendon) धीरे से आघात करें तो उसपर पैर एकदम आगे की ओर उठा

हुआ दिखाई देगा। मस्तिष्क के आज्ञाकेंद्र (Motor area) पर यदि चोट पहुँची हो या वह रोगग्रस्त हो जाय तो इस पैर का ऊपर की ओर झटके से उठना अधिक स्पष्ट दिखाई देगा क्योंकि मस्तिष्क का पृष्ठवंशरज्जु पर हमेशा नियंत्रण रहता है और वह इस समय नहीं सा हो जाता है। प्रतिक्षिप्त क्रिया के लिए जिन जरूरी मज्जातन्तुओं और मज्जापेशियों के भागों का उल्लेख किया है (आ. ९४ देखिए), उनमें से किसी एक को जख्म अथवा रोग होने पर प्रतिक्षिप्त क्रिया संपूर्णतया नष्ट होती है। प्रतिक्षिप्त क्रिया में जो कम ज्यादा अंतर होते हैं उस हिसाब से हम नाडीसंस्था के कितने ही रोगों का कारण जान सकते हैं।

१११. **अनिच्छावर्ती नाडी-संस्था** (Sympathetic or Autonomic nervous system) (आकृति ८९ देखिये)—यह संस्था छाती और उदर-गह्वर के पिछले बाजू और मेरुदंड की दोनों ओर नाडीपेशियों की गठानों (Ganglia) की एक मालाही है। ये गठानें उनसे निकलनेवाले नाडीतन्तुओं द्वारा परस्पर जुडी रहती हैं। नाडी- पेशियों (Nerve cells) की गठानें और उनको जोडनेवाली नाडीतन्तुओं की माला खोपडी से लेकर कमर तक फैली हुई हैं। इनमें से कुछ नाडीतन्तुओं का मध्यवर्ती नाडीसंस्था के (Central nervous system) नाडीतन्तुओं से संबन्ध जुडा हुआ है। इस नाडीसंस्था से निकलनेवाले नाडीतन्तु हृदय, फेफडे, जठर, अँतडियों और स्वेदग्रन्थियों के समान शरीर की अनेक इंद्रियों और अनैच्छिक स्नायुओं (Involuntary muscles) तक पहुँचे हुए हैं। इससे रक्ताभिसरण, श्वासोच्छ्वास, पाचन, शोषण और भिन्न २ ग्रंथियों से स्राव (Secretion) तैयार होने आदि अनेक अनैच्छिक क्रियाओं पर इस नाडीसंस्था का शासन चलता है।

११२. सारांश —

समस्त नाडी-संस्था असख्य नाडी-घटकों (Neurons) की बनी हुई है। प्रत्यक नाडी-घटक के दो विभाग हैं —

१. नाडी-पेशी याने केंद्रभाग (Nucleus) और कण (Granules) भीतर रहनेवाले पेशीद्रव (Protoplasm) का सूक्ष्म गोला। इसके अनेक शिखा-तन्तु (Dendrons) होते हैं। उनमें एक तन्तु (Axon) लम्बा रहता है। और उस पर आवरण आनेसे उसीका नाडी-तन्तु (Nerve fibre) बन जाता है। उसका काम प्रेरणा उत्पन्न करना, उसे स्वीकारना अथवा बाहर भेजना है।

२. मुख्यतन्तु (Axon) पर जब आवरण आ जाता है तब वह नाडीतन्तु (Nerve fibre) बन जाता है। हमें दिखाई देनेवाले नाडीतन्तु (Nerve) ऐसे ही तन्तुओं का एक समूह है। नाडीपेशियों में उत्पन्न हुई प्रेरणा को बाहर ले जाना उसका काम है।

नाडीतन्तुओं के प्रकार :—

१. संवेदनावाहक (Afferent or sensory) — ये तन्तु संवेदना को पृष्ठवंशरज्जु की ओर या मस्तिष्क की ओर ले जाते है।

२. आज्ञावाहक (Efferent) – मस्तिष्क या पृष्ठवंशरज्जु से बाहर प्रेरणा ले जाते हैं। इनके तीन प्रकार हैं।

(अ) स्नायु की ओर आज्ञा ले जानेवाले (Motor)
(आ) ग्रन्थियों की ओर आज्ञा ले जानेवाले (Secretory)
(इ) रक्तवाहिनियों में रक्तप्रवाह का नियमन करनेवाले (Vaso-motor)

मिश्र नाडीतन्तु (Mixed nerve) – इनमें संवेदनावाहक और आज्ञावाहक दोनों नाडीतन्तु रहते हैं।

नाडीसंस्था के दो प्रकार हैं:– मध्यवर्ती (Central) नाडीसंस्था और अनिच्छावर्ती (Sympathetic) नाडीसंस्था। मध्यवर्ती नाडीसंस्था के (१) खोपडी में रहनेवाला मस्तिष्क, (२) मेरुदंड में पृष्ठवंशरज्जु (Spinal cord) और (३) इन दोनों से निकलनेवाले नाडीतन्तु– जैसे तीन भाग बन जाते हैं।

मस्तिष्क के चार भाग हैं—

(१) **बडा मस्तिष्क** (Cerebrum) खोपडी का बहुतसा भाग घेरे हुए है। इस पर Dura mater, Arachnoid और Pia mater नामक तीन आवरण हैं। यह दो गोलार्धों (Hemispheres) का बना हुआ है। बाहरी भाग नाडीपेशियों के कारण भूरे या धूसर रंग का और बलदार तथा दरारमय हैं। भीतरी भाग नाडीतन्तुओं के कारण सफेद रंग का है।

कार्य — (१) बुद्धिमत्ता, इच्छाशक्ति, भावना, स्मरणशक्ति आदि मानसिक शक्तियों का उद्गम-स्थान।

(२) शरीर के भिन्न २ भागों से आनेवाले संदेश अथवा संवेदनाओं (Sensory impulses) को स्वीकारना।

(३) ये संदेश किस प्रकार के हैं, यह जानना।

(४) उसके अनुसार शरीर के स्नायुओं, ग्रंथियों, रक्तवाहिनियों की ओर आज्ञा य संदेश भेजना।

(५) मस्तिष्क के अन्य भाग पर और पृष्ठवंशज्जु पर अधिकार चला कर उनके कार्यों का नियमन करना।

एक ओर के बडे मस्तिष्क का अधिकार शरीर के विरुद्ध बाजू की हलचल पर और स्पर्श, दुःख आदि संवेदनाओं पर चलता है क्योंकि इसकी नाडीपेशियों से निकलनेवाले नाडीतन्तु विरुद्ध बाजू से इस बाजू को लाँघ कर जाते हैं।

बडे मस्तिष्क के भिन्न २ भाग भिन्न २ काम करते हैं।

आज्ञाकेन्द्र (Motor centre), संवेदना केन्द्र (Sensory), दृष्टि केन्द्र, वाचा केन्द्र इत्यादि केन्द्र नाडी-पेशियों (Nerve cells) के समूहों के बने हैं। प्रत्येक केन्द्र अपना विशिष्ट निर्धारित काम करता है।

(२) **छोटा मस्तिष्क** (Cerebellum) बडे मस्तिष्क के नीचे की ओर और पीछे रहता है। आकार में उसकी अपेक्षा बहुत छोटा है। बडे मस्तिष्क के समान इस पर भी तीन आवरण रहते हैं। बाहरी पृष्ठभाग भूरे या धूसर रंग का है और उस पर आडी रेखा है; भीतरी भाग सफेद है। बडे मस्तिष्क के समान इसके भी दो गोलार्ध हैं।

कार्य — (१) स्नायुओं पर अधिकार जमाने के काम में बडे मस्तिष्क की सहायता करता है।

(२) दौडने, भागने के समान क्रियाओं मे स्नायुओं का नियमन कर उनसे एक साथ काम करा लेता है ।

(३) शरीर के तौल को संभालने में मदद करता है ।

(३) नाडी-सेतु (Pons) — यह छोटे मस्तिष्क के दोनों गोलार्धों को जोडता है । रंग बाहर से सफेद और भीतर से भूरा या धूसर है ।

कार्य — (१) मस्तिष्क की ओर जानेवाले संदेश इसीमें से होकर जाते हैं ।

(२) मस्तिष्क से निकलनेवाली आज्ञाएँ इसमें से होकर नीचे जाती हैं ।

(४) लंबनाडी (Medulla) पृष्ठवंशरज्जु के ऊपर खोपडी में रहती है । आकार लंबा और ज़रासा चपटा, रंग बाहर से सफेद, भीतरसे भूरा ।

कार्य — (१) मस्तिष्क की ओर जानेवाले संदेश इसी में से होकर जाते हैं ।

(२) मस्तिष्क से निकलनेवाली आज्ञा इसी में से होकर नीचे पृष्ठवंशरज्जु की ओर जाती है ।

(३) दोनों बाजू के आज्ञावाहक (Motor) और संवेदनावाहक (Sensory) नाडी-तन्तु यहाँ ही एक दूसरे को लाँघ कर विरुद्ध बाजू जाते हैं ।

(४) अभिसरण केन्द्र (Circulatory centre), श्वसन केन्द्र (Respiratory centre), रक्तवाहिनियों का प्रवाह नियंत्रण करनेवाले केन्द्र (Vasomotor centre) इत्यादि महत्त्व के केन्द्र इसमें रहते हैं; जिससे यदि इस भाग को चोट पहुँच जाय तो तत्काल मृत्यु हो जाती है ।

मस्तिष्क के निचले पृष्ठभाग से बारह नाडी-तन्तु के जोडे (Cranial nerves) निकल कर आँख, नाक, कान, और शरीर के पृष्ठभाग के कुछ स्नायुओं और इन्द्रियों की ओर जाते हैं ।

पृष्ठवंशरज्जु (Spinal cord) — मस्तिष्क से मेरुदंड मे उतरनेवाला डोरी के समान भाग है । मस्तिष्क के समान ही इसके भी Dura matter, Arachnoid और Pia mater नामक तीन आवरण रहते हैं । इसकी लम्बाई १८ इंच, चौडाई आधा इंच होती है । इसका प्रारम्भ खोपडी के निचले भाग से होता है और अन्त कमरे के पहले कशेरुके के पास होता है । इस पर आगे और पीछे दो खडी दरारें हैं । आडा छेद – बाहर की ओर सफेद नाडी-तन्तुओं का भाग और भीतरी बाजू H आकार का धूसर नाडीपेशियों का भाग । इनमें से प्रत्येक बाजू के अगले छोर में से आज्ञावाहक नाडीतन्तु (Motor fibres) और पिछले छोर से संवेदनावाहक नाडीतन्तु (Sensory fibres) निकलकर उनके संयोग से मिश्र नाडीतन्तु (Mixed nerve) तैयार होता है । नाडीतन्तुओं के कुल ३१ जोडे होते हैं ।

कार्य — (१) शरीर के भिन्न २ भागों की संवेदना ऊपर मस्तिष्क की ओर पहुँचाना ।

(२) मस्तिष्क से निकलनेवाले संदेश या आज्ञा स्नायुओं की ओर पहुँचाना ।

(३) प्रतिक्षिप्त क्रिया– किसी भाग से आनेवाली संवेदना मस्तिष्क की ओर न भेजकर पृष्ठवंशरज्जु अपनी ही जिम्मेदारी पर मस्तिष्क को मालूम न होने दे कर जो क्रिया सम्पन्न करती है, उसका नाम प्रतिक्षिप्त क्रिया है ।

अनिच्छावर्ती नाडी-संस्था — मेरुदंड के प्रत्येक ओर की नाडीपेशियों की गठानें और उसे जोडनेवाले नाडी-तन्तुओं से यह संस्था बनी है । इसका अधिकार हृदय, फेफडें, जठर और अँतडियाँ आदि शरीर की इन्द्रियों पर तथा अनैच्छिक स्नायुओं पर चलता है ।

प्रश्न

१. मनुष्य के मस्तिष्क के संबंध में आप क्या जानते हैं? (१९२८, १९३६. एस्. एस्. सी. १९४९).

२. अनिच्छावर्ती नाडीसंस्था (Autonomic nervous system) के विषय में आप जो जानते हों लिखिये। (बंबई वि. वि. १९३१, १९३३, ४६).

३. मनुष्य के मस्तिष्क के संबंध में आप क्या जानते हैं? बाहर से होनेवाले आघात से उसका रक्षण कैसे होता है? (बंबई वि. वि. १९३२, ४५, ५१).

४. पृष्ठवंशरज्जु के विषय में आप जो जानते हों लिखिये। (बंबई वि. वि. १९३३, ४०, ४२, एस्. एस्. सी. १९५२, १९५४, १९५८), पृष्ठवंशरज्जु के कार्यों का वर्णन कीजिये। (१९४० एस्. एस्. सी. १९५२, १९५६).

५. प्रतिक्षिप्त क्रिया (Reflex action) के संबंध में जो जानते हों, लिखिये। (बंबई वि. वि. १९३४, १९४४, १९४९, १९५१, १९५२, १९५४, १९५५).

६. मस्तिष्क के भिन्न २ भागों का वर्णन कर प्रत्येक के कार्य का उल्लेख कीजिये। (बंबई वि. वि. १९३७. एस्. एस्. सी. १९५८).

७. बड़े मस्तिष्क (Cerebrum) और उसके कार्य का वर्णन कीजिये। (बंबई वि. वि. १९४१, एस्. एस्. सी. १९४९, १९५१, १९५४, १९५७).

८. **टिप्पणियाँ लिखो :** (१) लम्बनाडी (Medulla oblongata) (१९५५, १९५७). (२) नाडीसेतु (Pons) (१९५६).

अध्याय दसवाँ

संवेदना (The Sensations)

स्पर्श (Touch), स्वाद (Taste) और गंध (Smell)

११३. **संवेदना** (Sensations)—संसार के बाह्य विषयों और अपने शरीर सम्बन्धी ज्ञान हमें संवेदना द्वारा प्राप्त होता है। हमारे शरीर में अथवा हमारे आस-पास जो क्रियाएँ होती हैं उनके ज्ञान होने को **संवेदना** (Sensation) कहते है और यह ज्ञान मस्तिष्क में उत्पन्न होता है। शरीर के भीतर या बाह्य उद्दीपन से (Excitation) संवेदनावाहक नाडीतन्तु में (Sensory nerves) जो चेतना (Disturbance) उत्पन्न होती है उसे **प्रेरणा** (Impules) कहते हैं। यह प्रेरणा संवेदनावाहक नाडीतन्तुओं से (Sensory or afferent nerve) मस्तिष्क की ओर ले जायी जाती है और वहाँ उसका विशिष्ट ज्ञान उत्पन्न होने में याने संवेदना में रूपान्तर होता है

संवेदना के (Sensations) दो प्रकार हैं :— विशिष्ट संवेदना (Special senses) और सामान्य संवेदना (Common senses).

११४. **विशिष्ट संवेदना** (Special senses) — यह हमें विशिष्ट इन्द्रियों के कारण ही हो सकती है। यह संवेदना स्वाद, गंध, दृष्टि और श्रवण के रूप में चार प्रकार की है। इनके कारण शरीर के पृष्ठभाग और संसार की बाह्य वस्तुओं का हमें ज्ञान होता है। इसलिए इन्हें **बाह्य संवेदना** भी कहते हैं। प्रत्येक संवेदना उत्पन्न करनेवाली इन्द्रिय के तीन भाग हैं :—(१) संवेदनावाहक नाडीतन्तु (Sensory nerve) से संबंध रखनेवाली एक **बाह्य इन्द्रिय** (End organ), उदाहरणार्थ, आँख; उद्दीपन का परिणाम पहले इसी इन्द्रिय पर होता है। (२) बाह्य इन्द्रियों से मस्तिष्क की प्रेरणा ले जानेवाला संवेदनावाहक नाडीतन्तु। (३) उस प्रेरणा को स्वीकार कर उसका विशिष्ट ज्ञान या संवेदना में रूपांतर करने की क्षमता रखनेवाला मस्तिष्क का एक **विशिष्ट नाडीकेन्द्र** (Nerve centre), उदाहरण के लिए यदि हम दृष्टि-संवेदना (Sense of sight) को लें तो प्रकाश किरणों से नेत्र के नाडीपटल (Retina) का उद्दीपन होता है, इसलिए नेत्र बाह्य इन्द्रिय है। नाडीपटल (Retina) में उत्पन्न हुई प्रेरणा (Impulse) नेत्र के संवेदनावाहक नाडीतन्तु द्वारा (Sensory nerve i. e. Optic nerve) मस्तिष्क की ओर ले जाई जाती है और अन्त में मस्तिष्क के दृष्टिकेंद्र में (Visual area) प्रेरणा का दृष्टि की संवेदना में रूपान्तर होता है। प्रत्येक बाह्य इन्द्रिय में (End organ) विशिष्ट प्रकार के उद्दीपन से ही प्रेरणा उत्पन्न होती है। उदाहरणार्थ, प्रकाश-किरणों से ही नेत्रों में प्रेरणा उत्पन्न होगी। ध्वनि-लहरी (आवाज)

से कभी नहीं उत्पन्न हो सकेगी। इतना ही नहीं, यदि दूसरे किसी उद्दीपन से किसी बाह्य इन्द्रिय में चेतना उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जाय तो उससे उस इन्द्रिय की विशिष्ट चेतना ही उसमें निर्माण होगी। उदाहरणार्थ, नेत्र पर आघात करने पर प्रकाश की संवेदना उत्पन्न होकर अपने नेत्रों के सामने चकाचौंध छा जाती है।

११५. सामान्य संवेदना (Common senses) — इन संवेदनाओं से हमें शरीर की क्रियाओं और स्थिति का ज्ञान होता है। स्नायुओं की स्थिति का ज्ञान (Muscle sense), वेदना, भूख, प्यास, थकावट इत्यादि संवेदनाएँ इस विभाग के अन्तर्गत आती हैं। स्नायु की स्थिति के ज्ञान के कारण हम जान सकते हैं कि अमुक पदार्थ भारी है अथवा हल्का और शरीर के भिन्न २ अवयवों की स्थिति और स्थान का भी ज्ञान होता है। स्पर्श की संवेदना भी सामान्य संवेदना है और उसका अधिक वर्णन अगले परिच्छेद में आ गया है।

१

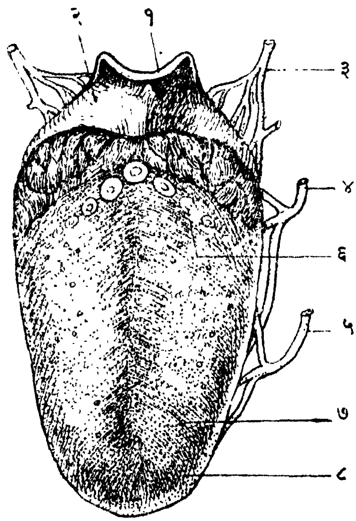
११६. स्पर्श, शीत, ऊष्णता और वेदना की संवेदना
(Sensation of Touch, Temperature and Pain)

स्पर्शेन्द्रिय — यह रूप (Sight), गंध (Smell), स्वाद (Taste), या श्रवण (Hearing), की इन्द्रियों के समान शरीर के केवल किसी खास भाग में नहीं रहती; यह समस्त शरीर की त्वचा और नासिका तथा मुख की अंतस्त्वचा की बनी हुई है। शरीर की आंतरत्वचा (Dermis) में नाडी-तन्तुओं के जाल फैले हुए हैं। इस त्वचा के ऊपरी सर्पाकृति भाग में "पॅपिली" नामक जो उटे हुए स्थल हैं उनमें रहनेवाले नाडीतन्तुओं के मोटे छोरों को **स्पर्श गोलक** (Touch corpuscles) कहते हैं (आकृति ५९ देखिये)। दबाने से स्पर्शगोलक और नाडीतन्तुओं के अन्य बारीक छोर उद्दीपित होते हैं, जिससे उत्पन्न होनेवाली प्रेरणा संवेदनावाहक नाडीतन्तुओं के द्वारा (Sensory nerves) मस्तिष्क के संवेदना केन्द्र में (Sensory area) ले जाई जाती हैं। अन्त में इस संवेदना केन्द्र में त्वचा से आई हुई प्रेरणा का स्पर्शज्ञान की संवेदना में रूपान्तर होता है। इसी को हम "स्पर्श हुआ" कहते हैं। संवेदनावाहक नाडीतन्तु शरीर की भिन्न २ त्वचा के नीचे समान परिमाण में फैले हुए नहीं रहते। जिस भाग की त्वचा में नाडीतन्तुओं का जितना अधिक जमाव होगा और जो त्वचा जितनी ही पतली होगी उस भाग का स्पर्शज्ञान उतना ही तीव्र होगा। त्वचा को केवल स्पर्शही का ज्ञान नहीं होता वरन स्पर्श किस खास भाग पर हुआ है इसका भी ज्ञान हो सकता है। जीभ के छोर, होंठ और हाथ की उँगलियों के छोरों पर स्पर्शज्ञान विशेष तीव्र रहता है और पीठ की त्वचा का स्पर्शज्ञान बहुत स्थूल रहता है। त्वचा का स्पर्शज्ञान कितना तीव्र है. इसकी परीक्षा

लेने के लिए कम्पास के दो छोरों को जितने नजदीक हो सके त्वचा पर एक ही समय रखिये और देखिये कि दोनों स्थानों पर स्पर्शज्ञान होता है या नहीं। शरीर के जिस भाग पर कम्पास के छोरों को बिलकुल पास २ रखने पर दोनों स्थानों पर स्पर्श का अनुभव हो जाय तो समझना चाहिये कि उस भाग का स्पर्शज्ञान अधिक सूक्ष्म और तीव्र है।

स्पर्शज्ञान की संवेदना ले जानेवाले नाडीतन्तु त्वचा के नीचे रहते हैं। इनके अतिरिक्त ऊष्णता, शीत या वेदना की संवेदना मस्तिष्क की ओर ले जानेवाले स्वतंत्र नाडीतन्तु हैं। जीभ के छोर, हाथ के पिछली बाजू, कपोल, अधर आदि भागों की ऊष्णता का ज्ञान अधिक अच्छा होता है। दो तापमानों का अन्तर हमारी त्वचा समझ सकती है। परन्तु किसी पदार्थ वस्तु उष्णता क्या है, यह जानना कठिन है। उदाहरण के लिए एक हाथ ठंडे पानी में और दूसरा हाथ गरम पानी में डालकर फिर दोनों को एकदम किसी कुनकुने पानी में डुबाइये तो वही पानी एक हाथ को ठंडा और दूसरे हाथ को गरम मालूम होगा।

११७. स्वाद ज्ञान (Sense of taste)—स्वाद का ज्ञान हमें जिह्वा नामक इन्द्रिय से मिलता है। जिह्वा या जीभ स्नायुओं की बनी हुई है और मुख-गह्वर में नीचे की ओर है। उसकी जड पीछे की ओर श्वासमार्ग के पर्दे (Epiglottis) और जिव्हास्थि (Hyoid bone) से बँधी हुई है। उसके दोनों बाजू और उसका अगला छोर खुले हुए हैं। उसके स्नायुओं के तन्तु भिन्न २ दिशाओं में गये होने के कारण वह मुख में स्वतंत्रता से आगे-पीछे दायें-बायें घूम फिर सकती है। जीभ के स्नायुओं पर अंतस्त्वचा (Mucous Membrane) का आवरण होने के कारण वह नीचे के पृष्ठभाग पर गुलगुली रहती है परन्तु ऊपर के पृष्ठभाग पर काँटे के समान बहुत से सूक्ष्म अंकुर (Papillæ) रहने के कारण वह खुरदुरी दिखाई देती है। ये अंकुर अथवा "पॅपिली" जीभ के अग्रभाग के दो तिहाई



आकृति ९५ —**जीभ का ऊपरी पृष्ठभाग और जीभ के नाडीतन्तु**

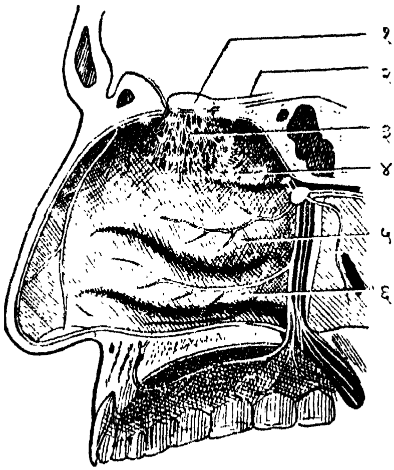
१ जिह्वास्थि (Hyoid bone), २ जिह्वास्थि से निकलनेवाला जीभ का भाग, ३ नवें ज्ञानतंतु की (Glosso-pharyngeal) स्वाद संवेदना-वाहक शाखा, ४ बारहवें नाडीतन्तु की शाखा (Hypoglossal), यह जीभ का आज्ञावाहक नाडीतन्तु (Motor nerve) है, ५ सातवें नाडीतन्तु की स्वाद संवेदनावाहक शाखा (Sensory nerve of taste, chorda tympani), ६ Circum vallate papillæ, ७ Fungiform papillæ, ८ Filiform papillæ.

पृष्ठभाग पर रहते हैं। प्रत्येक अंकुर के भीतरी भाग में स्वाद अनुभव करनेवाले नाडी-तन्तुओं (Nerves of taste) के छोर रहते हैं। आकार के हिसाब से इन अंकुरों के तीन भाग किये गये हैं। (१) Circumvallate papillæ ये अंकुर सबसे बड़े हैं जो लगभग संख्या में १० से १२ तक रहते हैं, जो जिव्हा मूल के पृष्ठभाग पर V आकार से पंक्ति बनाकर बैठे हुए हैं। (२) Fungiform papillæ – ये अंकुर पहले अंकुरों की अपेक्षा छोटे होते हैं। परन्तु संख्या में उनकी अपेक्षा बहुत अधिक रहते हैं। ये फीके लाल रंग के होते हैं। ये जिव्हा के किनारे और जीभ के अगले छोर पर मुख्यतः पाये जाते हैं। (३) Filiform papillæ– ये तीसरे प्रकार के अंकुर सबसे छोटे मगर संख्या में सब से ज्यादा रहते हैं। ये जीभ के पृष्ठभाग पर बहुधा समान्तर पंक्तियों में पाये जाते हैं। ये सब प्रकार के अंकुर **स्वाद कलिका** (Taste buds) नामक एक प्रकार की पेशियों के (Epithelial cells) पुंज हैं। उनमें स्वाद अनुभव करनेवाले नाडी-तन्तुओं के छोर रहते हैं। मस्तिष्क से निकलनेवाले नाडीतन्तु की एक शाखा (Chorda tympani nerve) जीभ के अगले दो-तिहाई पृष्ठभाग को और नवाँ नाडी-तन्तु जीभ के पिछले एक तिहाई भाग को स्वादज्ञान करा देता है। इस प्रकार जीभ को स्वादज्ञान करा देनेवाले दो संवेदनावाहक नाडीतन्तु (Sensory nerves) रहते हैं। मस्तिष्क का बारहवाँ नाडीतन्तु जीभ के स्नायुओं का आज्ञावाहक नाडीतन्तु (Motor nerve) है, जिसके द्वारा जीभ की सारी हलचलों का नियंत्रण किया जाता है।

स्वाद-संवेदना उत्पन्न होने के लिए जिस पदार्थ का स्वाद लेना होता है उस पदार्थ का मुँह के रस में घुल जाना आवश्यक होता है। तब घुला हुआ पदार्थ स्वाद कलिकाओं (Taste buds) को उद्दीपित कर प्रेरणा उत्पन्न करता है और यह प्रेरणा ऊपर वर्णन किये गये संवेदनावाहक नाडीतन्तुओं के द्वारा (Sensory nerves) मस्तिष्क की ओर ले जाई जाती है जहाँ उसका स्वादज्ञान की संवेदना में रूपान्तर होता है। तिक्त, मधुर, आम्ल (खट्टा) और लवण (नमकीन) ये स्वाद के मुख्य चार प्रकार हैं। शेष स्वाद इनके मिश्रण से निर्माण होते हैं। जीभ के छोर से मधुर और नमकीन स्वादों का ज्ञान अधिक तीव्रता से होता है। उसी प्रकार जीभ के किनारों से आम्ल याने खट्टा और जिह्वा-मूल से तिक्त या कड़ुवा स्वाद अच्छी प्रकार जाना जाता है।

११८. गंध-ज्ञान (Sense of smell) – नासिका गंध-ज्ञान की इन्द्रिय है। एक खडे पर्दे के कारण उसके दो नासिका पुट बन गये हैं। प्रत्येक नासिका-पुट के भीतरी बाजू में अंतस्त्वचा का आवरण रहता है। नासा-पुट-गुहा के निचले बाजू का भाग श्वासोच्छ्वास के लिए और ऊपरी भाग गंध का ज्ञान करने के लिए है। नाक की गुहा में शंखाकृति (Chonchae) नाम की जो तीन उठी हुई हड्डियाँ हैं, उनमें से ऊपर की हड्डियों की अंतस्त्वचा के नीचे मस्तिष्क के पहले नाडीतन्तु के (First cranial nerve or Olfactory nerve) छोर फैले हुए हैं। जिस पदार्थ में गंध

है उससे अति सूक्ष्म कण वायु के रूप में हमारी नाक में प्रविष्ट होते हैं और अंतस्त्वचा के नीचे रहनेवाले नाडीतन्तुओं के (Olfactory nerve) छोरों को उत्तेजित कर प्रेरणा उत्पन्न करते हैं। यह प्रेरणा नासिका के नाडी-तन्तु द्वारा (Olfactory nerve) मस्तिष्क के विशिष्ट **घ्राण-केन्द्र** (Centre of smell) की ओर ले जाई जाती है। वहाँ उसका गंध की संवेदना में रूपान्तर होता है। इस को हम "गंध आई" कहते हैं। इसलिए जिस पदार्थ की गंध हमें लेनी होती है उसके अति सूक्ष्म कणों का वायु के रूप में बाहर फैलना जरूरी है। जुकाम होने पर नाक की अंत-



आकृति ९६ — **नासिका-गुहा की बाहरी दीवार**

स्त्वचा के सूज जाने पर उसके ऊपरी भाग में हवा का प्रवेश नहीं हो सकता। इसी से हमें उस समय पदार्थों की गंध नहीं आती। इस प्रकार यदि अंतस्त्वचा सूख जाय तब भी घ्राणेंद्रिय की तीव्रता कम हो जाती है। घ्राणेंद्रिय और स्वादेन्द्रिय (जिह्वा) दोनों क्रमशः श्वास-मार्ग और अन्नमार्ग के प्रारम्भ में रखी गई हैं। इनके द्वारा एक प्रकारसे शरीर-संरक्षण में मदद मिलती है, क्योंकि जिस स्थान पर दुर्गन्ध आती है वहाँ हम अधिक देर तक साँस न लेकर आगे बढ जाते हैं और स्वाद में जो पदार्थ खराब लगता है उसे हम अन्नमार्ग में नहीं जाने देते; थूक देते हैं।

प्रश्न

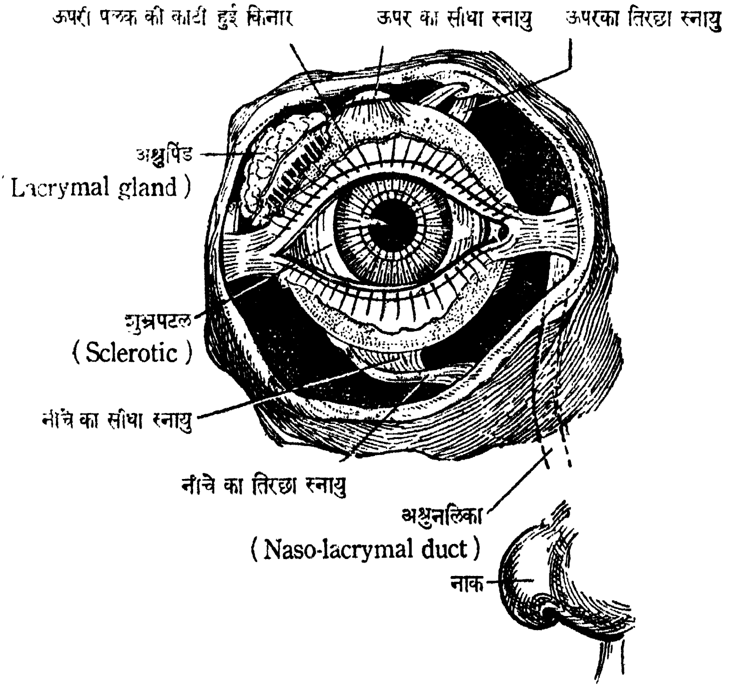
१. स्पर्शज्ञान हमें किस तरह होता है; इसका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये। (ब. वि. वि. १९३२).

२. टिप्पणियाँ लिखो : स्वादकलिका (Taste buds) (१९५५, १९५६).

अध्याय ग्यारहवाँ

नेत्र और दृष्टि

११९. नेत्रों का रक्षण—नेत्र अत्यंत नाजुक इन्द्रिय है। उसका कार्य देखना है। उसका आकार कुछ २ अंडाकृति है। यह हड्डियों के गढे में बैठा हुआ है जिससे उसका सब ओर से संरक्षण हो जाता है। केवल सामने की ओर देखने के लिए, यह खुला हुआ है। नेत्र के आसपास और गढे में चर्बी का आच्छादन होने के कारण आघात से उसे कम से कम हानि पहुँचती है। और चर्बी में से जानेवाले नाडीतन्तुओं, रसवाहिनियों और रक्तवाहिनियों से उसका पोषण होता है। उसी प्रकार नेत्र को सब ओर हलचल करने की सुविधा देने के लिऐ जो स्नायु नेत्र के बाहरी पृष्ठभाग से बँधे रहते हैं वे भी चर्बी में ही रहते हैं। पीछे के बाजू नेत्र मस्तिष्क से निकलनेवाले दूसरे नाडीतन्तु (Optic nerve) से जुड़ा हुआ रहता है।



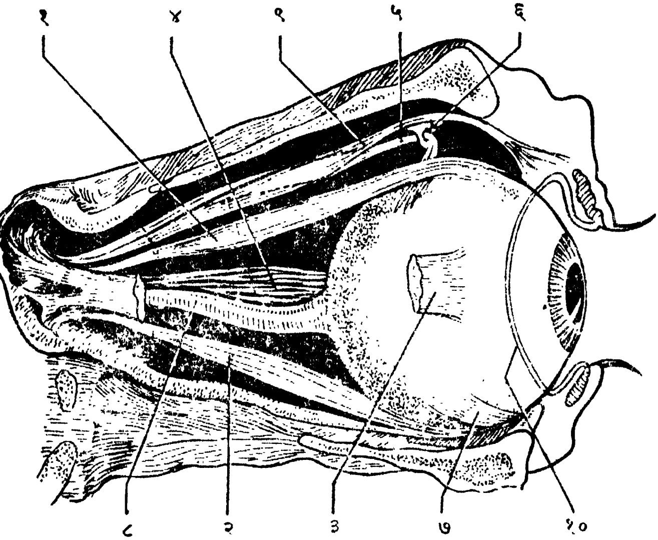
आकृति ९७—**अश्रुपिंड और अश्रुनलिका**

(अंदर का भाग बताने के लिए ऊपरी और निचली पलकों के कुछ भाग कटे हुए बताये है।)

नेत्र यद्यपि सामने की ओर खुला हुआ है फिर भी उसकी **पलकें** (Eyelids) उसके बचाव के लिये हमेशा तैयार रहती हैं। प्रत्येक पलक स्नायुमय और तन्तुमय

जालों से बनी हुई है। वह बाहर से त्वचा द्वारा आच्छादित है और उसके भीतरी बाजू में नाजुक अंतस्त्वचा (**नेत्रावरण**–Conjunctiva) रहती है। ऊपर की पलक में पतले कूर्चा का टुकडा रहता है। दोनों पलकों के भीतरी पृष्ठभाग पर यह अंतस्त्वचा (Conjunctiva) ऊपरी और निचले बाजू से पीछे उलट कर नेत्र के अगले भाग पर फैली हुई है। जब कभी धूल का कण नेत्र में जाने लगता है तब पलकों का स्नायु पलकों को एकदम झपक कर नेत्र का संरक्षण करता है। इसके अलावा, पलकों में रहनेवाले बारीक बाल जो **बरौनी** (Eye-lashes) कहलाते हैं, अधखुली आँखों में धूल आदि पदार्थ भीतर नहीं जाने देते। भौहों (Eyebrows) के कारण कपाल का पसीना आँखों के भीतर नहीं जा पाता–नीचे टपक जाता है। प्रत्येक आँख के गढे के बाहरी और ऊपरी कोने में **अश्रुपिंड** (Lacrymal or tear gland) रहता है। उसमें उत्पन्न होनेवाला **अश्रु** या आँसू नामक द्रव्य (तरल पदार्थ) पलकों के कारण नेत्र पर फैल कर नेत्र को हमेशा गीला और चमकीला रखता है। आँसू नेत्र के भीतरी बाजू की **अश्रुनलिका** (Naso-lacrymal duct) में से नाक में उतरते हैं। अश्रुओं का उपयोग नेत्र की सुरक्षा के लिए भी होता है क्योंकि आँखों में किसी लगनेवाले पदार्थ के जाने पर आँसू अधिक परिमाण में उत्पन्न होते हैं और अपाय करनेवाला पदार्थ अश्रुओं के साथ धुल कर बाहर ले जाया जाता है। दुःख जैसे मनोविकारों से भी अश्रु अधिक परिमाण में उत्पन्न होते हैं। और तब आँखें भर जाती हैं और आँसू नीचे गालों पर बहने लगते हैं।

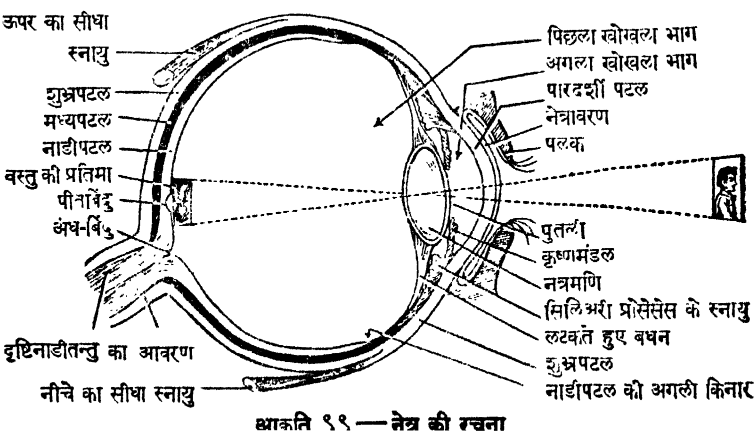
१२०. नेत्र के स्नायु—ये कुल ६ हैं। इनके आकुंचन से नेत्र की हलचल सब दिशाओं में हो सकती है। इनमें चार स्नायु सीधे (Straight or recti) और दो तिरछे (Oblique) हैं। ये छे स्नायु हड्डियों के गढे के पिछले बाजू से निकलकर नेत्र के बाहरी पृष्ठभाग (Sclerotic) के सामने बाजू से चिपटे रहते हैं। इनमें एक ऊपरी (Superior rectus), एक नीचे के बाजू (Inferior rectus.) और दो दोनों बाजू (Internal and External rectus) हैं। इन स्नायुओं के आकुंचन से हम नेत्र को ऊपर, नीचे, भीतर और बाहर की ओर घुमा सकते हैं। तिरछे स्नायु में एक ऊपर का स्नायु (Superior oblique) आगे आकर गढे के ऊपरी बाजू के एक छेद में से पीछे लौटता है और वह नेत्रगोल के पिछले भाग से चिपटा हुआ है। इस कारण उसके आकुंचन से नेत्र नीचे और बाहर ओर फिरता है। इसके विपरीत, नीचे के तिरछे स्नायु (Inferior oblique) के कारण नेत्र ऊपर और बाहर की ओर फिर सकता है। मस्तिष्क के नाडीतन्तुओं में से तीन नाडीतन्तु इस स्नायुओं की हलचलों का नियंत्रण करते हैं। किसी एक ओर देखने पर दोनों नेत्रों के स्नायुओं को एक दूसरे के सहयोग से काम करना पडता है। उदाहरणार्थ, दाईं ओर यदि देखना हो तो दाहिने नेत्र के बाहरी स्नायु (External rectus) और बायें नेत्र के भीतरी बाजू के स्नायु (Internal rectus) आकुंचन एकसाथ ही एकही समय, होते हैं। यदि ऐसा न हो तो मनुष्य की नज़र कानी हो जायगी; उसे एक चीज के स्थान पर दो चीजे दिखाई देने लगेंगी।



आकृति ९८— **वे स्नायु जिनसे नेत्र की हलचल संभव होती है।**
(नेत्र के हलचल करानेवाले स्नायु बताने के लिए इसके गडे का बाहरी भाग काटा हुआ बताया है।)

१. ऊपर का सीधा स्नायु (Superior rectus), २. नीचे का सीधा स्नायु (Inferior rectus), ३. बाहर का सीधा स्नायु (काटा हुआ) (External rectus), ४. भीतर का सीधा स्नायु (Internal rectus), ५. ऊपर का तिरछा स्नायु (Superior oblique), ६. ऊपर के तिरछे स्नायु के जाने देने के लिए हड्डी का छेद, ७. नीचे का तिरछा स्नायु (Inferior oblique), ८. दृष्टिनाडीतन्तु (Optic nerve), ९. पलक के स्नायु, १०. नेत्र के ऊपर की अंतस्त्वचा का (Conjunctiva) पिछला बाजू।

१२१. नेत्र की रचना—नेत्रगोल का व्यास लगभग १ इंच रहता है और उसके एक के भीतर एक ऐसे तीन आवरण रहते हैं।



आकृति ९९—नेत्र की रचना

(१) बाह्य आवरण – शुभ्रपटल (Sclerotic) और पारदर्शी पटल अथवा पारदर्शी पर्दा (Cornea).

(२) मध्य आवरण – मध्यपटल (Choroid) और कृष्णमंडल (Iris).

(३) अंतरावरण – नाडीपटल (Retina).

१२२. (१) शुभ्रपटल (Sclerotic) और पारदर्शी पटल (Cornea) से मिलकर सब से बाहर का आवरण तैयार होता है।

(अ) **शुभ्रपटल** (Sclerotic) – इससे नेत्र के बाह्य आवरण का पिछला ⅚ भाग व्याप्त है। पारदर्शक पर्दा (पारदर्शी पटल, Cornea) इसके अगले भाग से लगा हुआ ही है। नेत्र का आकार ठीक रखने के लिए यह भाग मजबूत श्वेत-तन्तुपेशीजालों (Fibrous tissue) से बना हुआ है। इसका रंग सफेद है। नेत्र जब खुला रहता है तब सामने के पारदर्शक भाग के पास जो सफेद भाग दिखलाई देता है, वह शुभ्रपटल का ही हिस्सा है। उसपर अंतस्त्वचा का (नेत्रावरण, Conjunctiva) आवरण है। ऊपर के वर्णन के अनुसार नेत्र के ६ स्नायु इसके बाहरी पृष्ठभाग पर चिपटे रहते हैं और उनके सिकुडने से शुभ्रपटल (Sclerotic) खिंचता है, जिससे भिन्न २ बाजुओं की ओर नेत्र फिर सकता है। इसके पिछले बाजू से मस्तिष्क का दूसरा नाडीतन्तु, (दृष्टिनाडीतन्तु, Optic nerve) भीतर प्रविष्ट होता है।

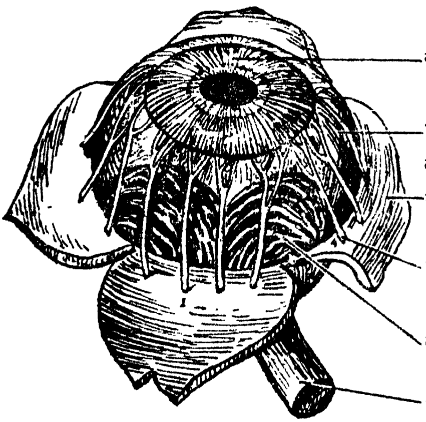
(आ) **पारदर्शी पटल** अथवा **पारदर्शक पर्दा** (Cornea) – यह नेत्र के अगले बाजू दिखनेवाला फूला या उठा हुआ पारदर्शक भाग है जो गोल दिखलाई देता है। इसके पिछले बाजू शुभ्रपटल (Sclerotic) लगा हुआ है और घडी के डायल में जिस तरह काँच बैठा हुआ रहता है उसी प्रकार यह शुभ्रपटल में जमा रहता है। नेत्रगोल का ⅙ भाग इसी से बना हुआ है। यह पारदर्शक होने के कारण इसमें से बाहरी किरण आसानी से भीतर जा सकती है। इसमें रक्तवाहिनियाँ बिलकुल नहीं रहतीं, जिससे उनका पोषण उसके आसपास की केशवाहिनियों से झिरनेवाले रस (Lymph) से होता है।

१२३. (२) मध्यपटल (Choroid) और कृष्णमंडल (Iris) – इन दोनों से मिल कर मध्य आवरण बना है।

(अ) **मध्यपटल** (Choroid) — यह शुभ्रपटल (Sclerotic) के भीतरी बाजू उससे मामूली तौर से चिपटासा है। शुभ्रपटल में प्रविष्ट होनेवाला दृष्टिनाडीतन्तु (Optic nerve) इनमें से ही घुस कर भीतर जाता है। यह आवरण मुख्यतः रक्तवाहिनियों और संयोगी पेशीजाल (Connective tissue) से बना हुआ है। उसमें एक काले रंग का पदार्थ (Black pigment) रहता है। इसी कारण नेत्र के खोखले भाग में केमेरा के भीतरी भाग के समान अँधियारी

रहती है। इसलिए नेत्र में प्रविष्ट होनेवाली किरणों का परावर्तन नहीं होता और बाहरी वस्तु की प्रतिमा स्पष्ट अंकित हो जाती है।

(आ) **कृष्णमंडल** (Iris)—शुभ्रपटल (Sclerotic) और पारदर्शक पर्दे (Cornea) की जहाँ संधि होती है वहीं मध्यपटल का अगला भाग खुला रह जाता है, जिससे पारदर्शक पर्दे के जरा पीछे यह एक गोल लटकता सा पर्दा तैयार होता है। यह लटकता हुआ पर्दा कृष्णमंडल (Iris) है। इसके बीच में एक गोल छेद है जिसे हम **पुतली** (Pupil) कहते हैं। इस पर्दे के पिछले पृष्ठभाग पर एक प्रकार का रंगीन द्रव्य (Pigment) रहता है। मनुष्य के नेत्र का काला, नीला, कंजा, धूसर रंग इसी के कारण दिखाई देता है। यह पर्दा दो प्रकार के स्नायुतन्तुओं का बना हुआ है। उसमें जो वर्तुलाकार स्नायु है उसके सिकुडने से पुतली (Pupil) छोटी होती है और मध्यभाग से किनारे की ओर जानेवाले जो खडे स्नायु (Radiating muscle fibres) हैं उनके सिकुडने से



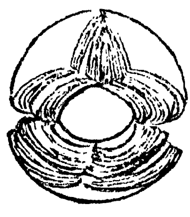
आकृति १०० —**मध्यपटल** (Choroid) **और कृष्णमंडल** (Iris)
श्वेतपटल (Sclerotic) और पारदर्शक पर्दा (Cornea) काटकर अलग किया है।

पुतली बडी होती है। इस रीति से पुतली को छोटी या बडी कर नेत्रों में जानेवाले प्रकाश को आवश्यकतानुसार कम-अधिक करने का काम कृष्णमंडल का है। कृष्णमंडल (Iris) मध्यपटल (Choroid) से जहाँ मिलता है उस स्थान पर मध्यपटल की झालर के समान '**सिलिअरी प्रोसेसेस**' नाम की तहें पडी हुई रहती हैं और नेत्रमणि की थैली (Capsule of the lens) **लटकते बंधन** (Suspensary ligament) से बँधी रहती है। इन "सिलिअरी प्रोसेसेस" में एक स्नायु (Ciliary muscle) है जिसके सिकुडने से उक्त बंधन (Suspensary ligment) का खिंचाव कम या अधिक होता है।

१२४. (३) नाडीपटल (Retina) — यह सब से भीतरी आवरण है। दृष्टि-नाडीतन्तु (Optic nerve) बाहरी दोनों आवरणों को छेद कर जब भीतरी जाता है तब उसकी अनेक शाखाएँ मध्यपटल (Choroid) के भीतरी बाजू पर फैलती हैं और इन्हीं शाखाओं से यह आवरण बनता है। यह पारदर्शक और नाजुक है; पीछे के ३/४ भाग में ही फैला हुआ है। सूक्ष्मदर्शक यंत्र से देखने पर इस नाडीपटल (Retina) में पेशी या कोष और तन्तुओं की अनेक तहें दिखलाई देती हैं। उनमें से मध्यपटल के पास की तहों का आकार छडें और सूचि के समान होने के कारण उन्हें अंग्रेजी में Rods और Cones का नाम दिया गया है। प्रकाश की किरणों से इनमें प्रेरणा उत्पन्न होती है और वह दृष्टिनाडीतन्तु (Optic nerve) के द्वारा मस्तिष्क के दृष्टि-केन्द्र (Visual area) में ले जाई जाती है। नाडीपटल के जिस भाग में ये तहें अधिक होगी वहाँ का दृष्टिज्ञान भी अधिक तीव्र होगा। नाडीपटल के पिछले बाजू के ठीक मध्यभाग में छडें और सूचियाँ (Rods and cones) विशेष रूप से अधिक रहती हैं इसी से जब इस भाग पर वस्तु की प्रतिमा पडती है तब दृष्टिज्ञान तीव्र होता है। इस भाग को **पीतबिंदु** (Yellow spot) कहते हैं। वहाँ सूचियाँ (Cones) विशेष रूप से अधिक रहती हैं, इसी से जब इस भाग पर वस्तु की प्रतिमा पडती है तब दृष्टिज्ञान तीव्र होता है। इसी प्रकार जिस स्थान पर दृष्टिनाडीतन्तु (Optic nerve) नेत्रगोल में जाकर नाडीपटल (Retina) बनाते हैं वहाँ यह भाग बिलकुल नहीं रहता, जिससे बाह्य वस्तु की प्रतिमा वहाँ ठीक पडने पर वह वस्तु हमें दिखलाई देती। इस बिन्दु को **अंधबिन्दु** (Blind spot) कहते हैं।

१२५. नेत्रमणि या 'ताल' (Lens) और नेत्र का खोखला हिस्सा (Chambers of the eye).

कृष्णमंडल (Iris) के पीछे और उससे लगा हुआ ही नेत्रमणि या 'ताल' (Crystalline lens) नामक एक पारदर्शक बाह्यगोल पदार्थ है। प्याज के अनेक छिलकों के समान यह एक के भीतर एक, ऐसे अनेक स्तरों का बना है। इसमें रक्तवाहिनियाँ बिलकुल नहीं हैं। इसका पिछला भाग अगले भाग की अपेक्षा ज़्यादा उठा हुआ है। इस पर रहनेवाली पतली और पारदर्शक **थैली** (Capsule) **लटकते हुए बंधन** (Suspensary ligament) से सिलिअरी प्रोसेसेस द्वारा बाँधी गई है। इससे झूलते हुए बंधन पर (Suspensary ligament) कम-अधिक खिंचाव पडते ही लचीली नेत्रमणि (Lens) का आकार बदल कर वह अधिक फूला या चपटा हो जाता है।

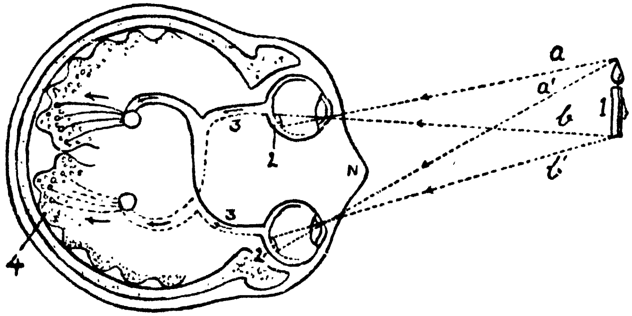


आकृति १०१
नेत्रमणि की रचना
कटी हुई नेत्रमणि में प्याज के छिलकों के समान अनेक स्तर दिखाई देते हैं।

कृष्णमंडल (Iris) और नेत्रमणि के कारण नेत्र में दो पोले भाग तैयार होते हैं। अगले बाजू के पोले भाग को Anterior chamber कहते हैं। इसका अगला बाजू

पारदर्शक पर्दे (Cornea) से बना हुआ है और उसमें पानी के समान द्रव पदार्थ (Aqueous humour) रहता है। नेत्रमणि के पीछे रहनेवाले पोले भाग को Vitreous chamber कहते हैं। उसमें एक अर्ध-प्रवाही द्रव (Vitreous humour) रहता है। ये दोनों द्रव पदार्थ पारदर्शक हैं।

१२६. दृष्टि (Vision)—नेत्रेन्द्रिय की रचना प्रायः केमरा की रचना के समान है। फोटो का केमरा एक प्रकार का अँधेरा खोखला भाग है। जिसके सामने के बाजू के छेद में एक बाह्यगोल लेन्स या ताल जडा हुआ है और पीछे की ओर फोटो लेने का काँच (Sensitive plate) रहता है। नेत्र की बनावट भी इसी प्रकारकी है। केमरा के समान नेत्र का भीतरी पोला भाग मध्यपटल के कारण (Choroid) अंधकार में रहता है। केमरा के पीछे की ओर के काँच (प्लेट) के स्थान पर छड़ें और सूचि (Rods और (Cones) मय नाडीपटल (Retina) रहता है। केमरे के डायफ्रम के समान कृष्णमंडल (Iris) की सहायता से भीतर जानेवाले प्रकाश को कम-अधिक किया जा सकता है। केमरे के मोटे काँच (प्लेट) के समान ही नेत्र के पारदर्शक पर्दा (Cornea), Aqueous



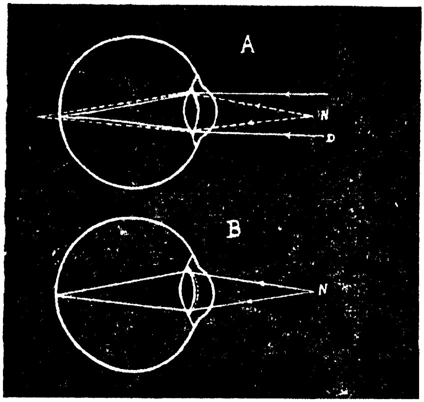
आकृति १०२ — **जो वस्तु हमें दिखाई देती है उस समय दृष्टिसंवेदना मस्तिष्क के दृष्टिकेन्द्र में किस मार्ग से पहुँचती है यह दिखलानेवाली आकृति।**

1 जलाई हुई मोमबत्ती के ऊपरी और नीचले भाग से निकलनेवाली किरण क्रमशः *a* और *b*, बायें नेत्र के 2 नाडीपटल पर (Retina) भीतरी बाजू उल्टी प्रतिमा बना रही है और *a'* और *b'* दाहीने नेत्र के 2 नाडीपटल पर अन्वासित (Corresponding) बाजू पर दूसरी उल्टी प्रतिमा बना रही है। प्रत्येक स्थान पर उत्पन्न हुई प्रेरणा प्रत्येक नेत्र के 3 दृष्टिनाडीतन्तु (Optic nerve) द्वारा मस्तिष्क के पिछले बाजू रहनेवाली 4 दृष्टिकेन्द्र (Visual area) में जाती है। और वहाँ उसका दृष्टि की संवेदना में रूपान्तर होता है। किरण और प्रेरणा के मार्ग बाण से दिखलाये गये हैं।

humour नेत्रमणि, (Lens) और Vitreous humour के पारदर्शक होने के कारण प्रकाश भीतर जा सकता है और उसकी किरणें केन्द्रीभूत हो सकती हैं। उजेले में रहनेवाली किसी वस्तु से अपने नेत्र की ओर आनेवाली किरण यदि वस्तु दूर रहती है तो समान्तर रहती है और यदि पास रहती है तो फैली हुई (Divergent) है। ये समान्तर और फैली हुई किरणें जब नेत्र में प्रविष्ट होती हैं तब पहिले वर्णन किये गये सब पारदर्शक भागों

में से उन्हें जाना पडता है। बाह्यगोल नेत्रमणि (Biconvex lens) और कुछ सामने के बाजू उठे हुए पारदर्शक पर्दे (Cornea) के कारण ये किरणें टेढी होकर इकठ्ठी होती हैं जिसके कारण तैयार होनेवाली बाह्य वस्तु की उल्टी प्रतिमा नाडीपटल (Retina) पर अंकित होती है। पुतली का आकार (Pupil) कम अधिक कर आवश्यक प्रकाश कृष्णमंडल (Iris) भीतर जाने देता है; उसी प्रकार मध्यपटल (Choroid) में रहनेवाले काले रंग के पदार्थ से नेत्र के पोले भाग में अँधेरा हो जाता है और जिससे भीतर जानेवाली किरणों का परावर्तन (Reflection) नहीं होता। इस सब योजना के कारण बाह्य पदार्थ की स्पष्ट प्रतिमा नाडीपटल (Retina) पर अंकित होती है और उसमें रहनेवाली छडें और सूचियाँ (Rods and Cones) प्रतिमा के कारण उद्दीपित होती हैं जिससे प्रेरणा (Impulse) उत्पन्न होती है। यह प्रेरणा दृष्टि-नाडीतन्तु द्वारा (Optic nerve) मस्तिष्क के दृष्टिकेन्द्र (Visual area) में ले जाई जाती है और उसका दृष्टि की संवेदना में रूपान्तर हो जाता है। इसे ही हम कहते हैं कि अमुक वस्तु " दिखी "। नाडीपटल पर पडनेवाली प्रतिमा यदि उल्टी हुई तो उसका ज्ञान हमें नहीं होता और आदत के कारण मस्तिष्क को उस वस्तु के सीधे ही होने का ज्ञान होता है।

१२७. दृष्टि का मेल (Accommodation)— नेत्र की रचना इस प्रकार की है कि किसी दूर की वस्तु से आनेवाली समान्तर किरणें नेत्र में प्रविष्ट होने पर उसके कारण बननेवाली प्रतिमा ठीक नाडीपटल (Retina) पर ही गिरती हैं। हम जब पास की वस्तु की ओर देखते हैं तो उससे आनेवाली किरणें फैली हुई (Divergent) रहती हैं। ऐसे समय नेत्र में कोई अंतर न पडा तो ये फैली हुई किरणें नाडीपटल (Retina) पर केन्द्रीभूत नहीं होंगी। और इसीसे वह वस्तु हमें स्पष्ट दिखाई नहीं देगी। परन्तु पास की वस्तु देखते समय कुछ ऐसा परिवर्तन होता है कि उसके कारण उन फैली हुई किरणों से बननेवाली उस वस्तु की प्रतिमा ठीक नाडीपटल (Retina) पर गिरती है। फोटो के केमरा में दूर और पास की वस्तु की प्रतिमा हर बार फोटो के भीतरी कँाच पर ठीक पडे, इसलिए कँाच को आगे पीछे सरकाने का प्रबंध रहता है। नेत्र में यही बात नेत्रमणि (Lens) के फूले हुए भाग को आवश्यकतानुसार कमअधिक करने की योजना रहने के कारण सिद्ध होती है। सिलिअरी प्रोसेसेस के स्नायु (Ciliary muscle) के आकुंचित होते ही नेत्रमणि की थैली से (Capsule of the lens) बँधे हुए बंधन (Suspensary ligament) शिथिल हो जाते हैं जिससे नेत्रमणि (Lens) अधिक उठ जाती है और फैली हुई किरणों को एकत्रित कर नाडीपटल (Retina) पर प्रतिमा बनाने में समर्थ हो जाती है (आ. १०३ देखिए)। इस रीति से पास की वस्तु भी हमें स्पष्ट दिख सकती है। नेत्रमणि (Lens) के अंग के आकार को बदलने के सामर्थ्य को ही **दृष्टि का मेल** (Accommodation) कहते हैं। इसी मेल के कारण हम दूर या पास के पदार्थों को देख सकते हैं।



आकृति १०३—**पास और दूर की वस्तु हमें किस प्रकार दिख सकती है, इसे बतलानेवाली आकृति।**

N पास की वस्तु से आनेवाली तिरछी किरणें।

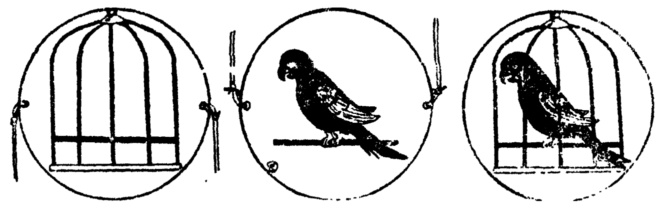
D दूर की वस्तु से आनेवाली समान्तर किरणें।

A—सिलिअरी स्नायु शिथिल होकर D दूर की वस्तु से आनेवाली समान्तर किरणें नाडीपटल (Retina) पर ठीक केंद्रीभूत हुई हैं।

B—सिलिअरी स्नायु के आकुंचन से नेत्रमणि का (Lens) फूला हुआ भाग और फूल गया है जिससे N पास की वस्तु से आनेवाली तिरछी किरणें नाडीपटल पर (Retina) केंद्रीभूत हो गई हैं।

१२८. दोनों नेत्रों की एक ही वस्तु देखने की शक्ति (Binocular vision)—जब हम किसी पदार्थ की ओर देखते हैं तब प्रत्येक नेत्र के नाडीपटल (Retina) पर उस पदार्थ की एक २ प्रतिमा अंकित हो जाती है और इससे उत्पन्न होनेवाली दोनों ही प्रेरणाएँ दोनों दृष्टिनाडीतन्तुओं के द्वारा (Optic nerve) दृष्टिकेंद्र (Visual area) में ले जाई जाती हैं। पदार्थ की जानकारी का प्रत्यक्ष ज्ञान इसी दृष्टिकेन्द्र में होने के कारण यद्यपि दोनों नेत्रों में भिन्न २ प्रतिमाएँ अंकित होती हैं फिर भी पदार्थ हमें एक ही दिखाई देता है। एक नेत्र की प्रतिमा दूसरे नेत्र की प्रतिमा की अपेक्षा भिन्न रहती है; यदि यह समझना चाहें तो सामने की वस्तु की ओर एक आँख बन्द कर और दूसरी बार साथही दूसरे नेत्र को बन्द कर के देखें तो आपको वह वस्तु जरा बाजू सरकी हुई दिखाई देगी। क्योंकि दूसरी प्रतिमा में पहले की अपेक्षा थोडी सी भिन्नता रहती ही है। नेत्रों में किसी वस्तु की दो भिन्न २ प्रतिमाएँ अंकित होते हुए भी इस वस्तु के एक ही होने की जानकारी हमें होती है और इसी गुणधर्म के कारण पदार्थ के आकार का सर्वांगीण ज्ञान हमें हो जाता है।

१२९. दृष्टि-सातत्य (Persistence of vision)— किसी पदार्थ की प्रतिमा नाडीपटल (Retina) पर बनती है और बाद में यदि वह पदार्थ दूर भी कर दिया जाता है तो भी उससे उत्पन्न हुई दृष्टि की जानकारी लगभग $\frac{1}{8}$ सेकण्ड तक रहती है, इसी को दृष्टि-सातत्य (Persistence of vision) कहते हैं। पहिले पदार्थ की संवेदना अथवा जानकारी अभी मिटी नहीं है और उसी समय दूसरा पदार्थ सामने आता है और उसकी प्रतिमा नाडीपटल पर पड जाती है तब दोनों पदार्थों का ज्ञान एक ही समय मस्तिष्क में कायम रहता है और एक ही समय के बाद दूसरी क्रिया होने का भान होता है। गत्ते की एक गोल चकती पर एक ओर तोते और दूसरी ओर पिंजरे के चित्र खींचे और गत्ते के



आकृति १०४ — तोता पिंजरे में जाता है।

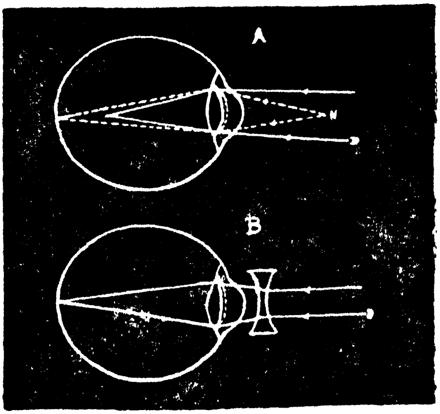
दोनों ओर छेद करके (आकृति १०४ देखिए) उसमें बांधे हुए डोरे की सहायतासे गत्ता एकदम घुमाया तो तोते और पिंजरे का चित्र एक बारही आँखों के सामने होनेका आभास निर्माण होकर लगता है कि तोता पिंजरे में है। यदि जली हुई अगरबती एकदम वर्तुलाकार घुमाई जाय तो प्रकाश का एक वर्तुल ही हमें दृष्टिगोचर होगा। इसी तत्त्व पर प्रत्येक चित्र को दूसरे चित्र की अपेक्षा जरा भिन्न लें और ऐसे अनेक चित्रों की मालिका को १५ से २० चित्र प्रति सेकण्ड के हिसाब से नेत्रों के सामने घुमाते जाय तो हमें ऐसा मालूम होगा कि हम हलचल के चित्र प्रत्यक्ष देख रहे हैं। सिनेमा की उत्पत्ति इसी तत्त्व पर हुई है।

१३०. दृष्टिदोष (Defects of vision) – जिस नेत्र में दृष्टिदोष नहीं रहता उसमें दूर के पदार्थ से आनेवाली किरणें और पास से आनेवाली तिरछी किरणें एकत्रित होकर नाडीपटल (Retina) पर स्पष्ट प्रतिमा अंकित करती हैं। इनमें पहिले प्रकार की किरणें अपने आपही और तिरछी किरणें सिलिअरी स्नायु के आकुंचन से नेत्रमणि के फूले हुए भाग को बढा कर एकत्रित हो जाती हैं।

जिस मनुष्य के नेत्रों में दृष्टि-दोष रहता है उसके नेत्रों में दूर या पास के पदार्थों की स्पष्ट प्रतिमा अंकित नहीं होती। दृष्टि-दोष के मुख्य प्रकार ये हैं :—

(१) ऱ्हस्वदृष्टि (Short sight or Myopia)— इस दोष में नेत्र गोलक ज्यादा लंबा रहता है। इसमें पास के पदार्थ से आनेवाली तिरछी किरणें नाडीपटल पर एकत्रित हो सकती हैं, और इससे पास के पदार्थों को

देखने में अडचन नहीं पडती। परन्तु दूर के पदार्थों से आनेवाली समान्तर किरणों के नाडीपटल (Retina) के आगे ही एकत्रित हो जाने के कारण नाडीपटल पर स्पष्ट प्रतिमा अंकित नहीं हो पाती और इसलिए दूर के पदार्थ साफ दिखाई नहीं देते। दूर के



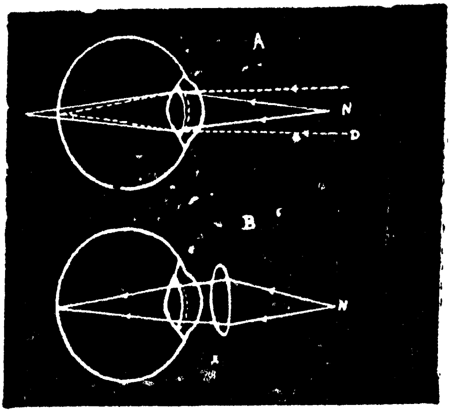
आकृति १०५ — ऱ्हस्वदृष्टि (Short sight or Myopia)
नेत्रगोलक अधिक लम्बे हैं। (आकृति १०३ से तुलना कर देखिये)

A — नेत्रगोलक के जरा लम्बे होने से N नामक पास की वस्तु से निकलनेवाली तिरछी किरणें नाडीपटल (Retina) पर केन्द्रीभूत हो सकती हैं। D नामक दूर की वस्तु से आनेवाली समान्तर किरणें नाडीपटल (Retina) के आगे ही केन्द्रीभूत हो गई हैं।

B — नेत्र के सामने अंतर्गोल (Biconcave) काँच का उपयोग करने पर दूर की वस्तु से आनेवाली समान्तर किरणें तिरछी होकर नाडीपटल पर (Retina) केन्द्रीभूत हो गई है।

पदार्थ देखते समय यदि नेत्रों के सामने **अंतर्गोल** (Biconcave) काँच का उपयोग किया जाय तो उस पदार्थ से आनेवाली समान्तर किरणें जरा तिरछी होकर नाडीपटल पर स्पष्ट प्रतिमा अंकित करती हैं इसलिए ऱ्हस्वदृष्टि का दोष अंतर्गोल काँच के चश्मे से दूर हो जाता है।

(२) **दीर्घदृष्टि** (Long sight or Hypermetropia) — इसमें नेत्रगोलक हमेशा की अपेक्षा जरा कम लम्बा रहता है। ऐसी आँखों में, दूरकी वस्तुओं से आनेवाली समान्तर किरणें दृष्टिमेल का (Accomodation) प्रयोग करने से ही नाडीपटल पर एककेंद्रित (Focussed) हो सकतीं हैं। फलस्वरूप दूरकी एक केंद्रित (Focussed) हो सकती हैं। वस्तुएँ दिख सकती हैं। पास की वस्तु से आनेवाली तिरछी किरणें नेत्र के कम लम्बे होने के कारण नाडीपटल पर एकत्रित नहीं हो सकतीं। इससे नाडीपटल पर प्रतिमा न पडने के कारण पास की वस्तु साफ दिखाई नहीं देती। पास की वस्तु देखने के लिए यदि बहिर्गोल (Biconvex) काँच का उपयोग किया जाय तो यह दोष दूर हो जाता है (आकृति १०६ देखिये)। बहिर्गोल काँच के कारण पास से आनेवाली तिरछी किरणों को नाडीपटल पर एकत्रित होने में सहायता मिलती है।



आकृति १०६—**दीर्घदृष्टि** (Long sight or Hypermetropia)

नेत्रगोलक कम लम्बा है। (आकृति १०३ से तुलना कर देखिए)

A – D दूर की वस्तु से आनेवाली समान्तर किरणें नाडीपटल पर (Retina) केन्द्रीभूत होती हैं। N पास की वस्तु से आनेवाली तिरछी किरणें नेत्रगोलक के कम लम्बे होने के कारण नाडीपटल पर केन्द्रीभूत नहीं होतीं।

B—नेत्र के सामने बहिर्गोल (Biconvex) कॉच का उपयोग करने पर पास की वस्तु से आनेवाली तिरछी किरणें एकत्रित होकर नाडीपटल पर केन्द्रीभूत होती हैं।

(३) **वृद्धदृष्टि** (Presbyopia)—बुढापे में मनुष्यों को बिलकुल पास के पदार्थ उदाहरणार्थ, पुस्तकों के अक्षर स्पष्ट नहीं दिख पडते क्योंकि उम्र के ढलने पर नेत्रमणि का लचीलापन क्रमशः कम होता जाता है और सिलिअरी स्नायु में थकावट आती जाती है। इन दोनों कारणों से पास के पदार्थ को देखने के लिए नेत्रमणि के फूले हुए भाग को अधिक फुलाना पडता है। लेकिन वह और नहीं फूलता। इस दोष में बाह्यगोल (Biconvex) कॉच का उपयोग होता है।

(४) **ॲस्टिग्मॅटिज़म्** (Astigmatism)—इस दोष में सामने के पारदर्शक परदे (Cornea) का उठाव खडे और आडे पृष्ठ में एक सा नहीं रहता इससे दोनों पृष्ठभागों की किरणों का केंद्रीकरण एकही स्थान में नहीं होता। इस लिए नाडीपटल पर जब प्रतिमा अस्पष्ट अंकित होती है तब मनुष्य को पास का या दूर का कोई पदार्थ साफ नहीं दिखाई देता। इस दोष को दूर करने के लिए केवल एकही पृष्ठ (Plane) में बाह्यगोल और दूसरी पृष्ठ में सपाट याने सिलिन्ड्रिकल (Cyindrical) कॉच का उपयोग करना चाहिये।

१३१. सारांश.

नेत्रगोलक दृष्टि की इन्द्रिय है जो नाजुक अंडाकृति और लगभग एक इंच व्यास की है। इसका संरक्षण हड्डी के गढे, आसपास की चर्बी, पलक और उसकी बरौनी, भौंह और अश्रुपिंड से उत्पन्न होनेवाले आँसू आदि से होता है। उसके आसपास रहनेवाले चार सीधे (Rectus) और दो तिरछे (Oblique) स्नायुओं के कारण उसकी हलचल सब दिशाओं में हो सकती है।

रचना

(१) बाह्य आवरण—

शुभ्रपटल (Sclerotic)–बाह्य आवरण का ५/६ भाग इसी से बना हुआ है। यह श्वेत-तन्तुओं से बना हुआ, मजबूत और सफेद रंग का है। दृष्टिनाडीतन्तु इसमें से होकर भीतर जाता है। इससे नेत्र का आकार ठीक रहता है। इस पर ६ स्नायु बँधे हुए हैं।

पारदर्शक पर्दा (Cornea)–बाह्य आवरण का अगला १/६ भाग इसीसे बना है। घडी के डायल में जडे हुए काँच के समान शुभ्रपटल में यह जमा हुआ है और पारदर्शक है। इसमें रक्तवाहिनियाँ नहीं हैं, इसमें से होकर प्रकाश की किरणें भीतर जाती हैं।

(२) मध्य आवरण–

मध्य पटल (Choroid)—इसमें रक्तवाहिनियाँ, नाडीतन्तु और भीतरी पोले स्थान में अँधेरा रखने के लिए एक काला द्रव्य (Pigment) रहते हैं। पिछले बाजू से दृष्टिनाडीतन्तु भीतर प्रविष्ट होता है। अगला बाजू तहदार है जिसमें सिलिअरी स्नायु रहता है।

कृष्णमंडल (Iris)–पारदर्शक पर्दे के पीछे (Cornea) लटकनेवाला एक खड़ा पर्दा है। जिसमें पुतली (Pupil) का छेद है। लम्बे और वर्तुलाकृति, ऐसे दो प्रकार के स्नायुओं से वह बना हुआ है। इन स्नायुओं के सिकुडने से भीतर जानेवाले प्रकाश को कम-ज्यादा किया जा सकता है। उसे पिछली बाजू रंगीन द्रव्य (Pigment) रहता है।

(३) नाडीपटल (Retina)–दृष्टि-नाडीतन्तु की (Optic nerve) अनेक शाखाओं के योग से यह बना है। यह पिछले २/३ भाग में व्याप्त है। इसमें नाडीपेशी और नाडीतन्तुओं के अनेक स्तर हैं। सबसे नीचे की तह छडें और सूची (Rods और Cones) की है जो प्रकाश-किरणों से उद्दीपित होती है और उत्पन्न हुई प्रेरणा दृष्टि-नाडीतन्तु में से मस्तिष्क के दृष्टिकेन्द्र में जाती है।

पीतबिंदु (Yellow spot)–पिछले बाजू सूचियों (Cones) के अधिक होने के कारण वहाँ की दृष्टि तीव्र रहती है।

अँधबिंदु (Blind spot)–दृष्टि-नाडीतन्तु भीतर जाकर अनेक शाखाओं में विभाजित हो जाता है। यहाँ (Rods और Cones) नहीं रहते। इससे यहाँ प्रतिमा पडने पर कुछ भी दिखाई नहीं देता।

नेत्रमणि (Lens)–यह कृष्णमंडल (Iris) के पीछे रहती है। वह पारदर्शक और बहिर्गोल है तथा अनेक स्तरों की बनी हुई है। उसपर एक पारदर्शक थैली का आवरण है। वह लटकते हुए बँधनों से सिलिअरी प्रोसेसेस से बँधा हुआ है। सिलिअरी

स्नायु के आकुंचन से नेत्रमणि अधिक फूल जाती है। उसके इस गुणधर्म (विशेषता) के कारण हम पास और दूर के पदार्थ को देख सकते है। इससे नेत्र के दो पोले बनते हैं। आगे का पोला स्थान Anterior chamber है जिसमें Aqueous humour नामक द्रव (तरल पदार्थ) रहता है। पीछे का पोला भाग Vitreous chamber है उसमें Vitreous humour नामक द्रव रहता है।

दृष्टि—नेत्र और फोटो के कॅमेरा में बहुत कुछ समानता है। किसी पदार्थ से निकलनेवाली किरणें नेत्रों के पास आकर Cornea, acqueous humour, lens (नेत्रमणि) और Vitreous humour में से जाकर नाडीपटल (Retina) पर केन्द्रीभूत होती हैं। कृष्णमंडल (Iris) के कारण जितने प्रकाश की आवश्यकता होती है उतना ही प्रकाश पहुँच पाता है। मध्य-पटल (Choroid) के काले पदार्थ (Pigment) के कारण भीतर किरणों का परावर्तन नहीं होता। किरणों से बनी हुई प्रतिमा के कारण Rods और Cones उत्तेजित होते हैं और उत्पन्न हुई प्रेरणा दृष्टि-नाडीतन्तु में से मस्तिष्क के दृष्टिकेन्द्र (Visual area) में जाती है जहाँ दृष्टि की संवेदना उत्पन्न होती है। दृष्टि का मेल (Accommodation)–नेत्रमणि (Lens) के फुलाव के कम या ज्यादा होने की शक्ति। सिलिअरी स्नायु के आकुंचन से यह फुलाव बढता है। इस शक्ति के कारण हम पास या दूर की वस्तु को देख सकते हैं। दोनों नेत्रों में एक वस्तु की दो प्रतिमाओं के बनने पर भी चूंकि संवेदना का स्थान मस्तिष्क है हमें एक ही वस्तु का ज्ञान होता है। प्रतिमा के नाडीपटल पर गिरने और उस पदार्थ के दूर कर देनेपर भी उसका ज्ञान लगभग १/८ सेकण्ड तक रहता है। सिनेमा के फिल्म में चित्रों के जल्दी दिखने पर भी प्रत्यक्ष हलचल का भास इस दृष्टि-सातत्य गुणधर्म के कारण ही होता है।

दृष्टिदोष	कारण	पास के पदार्थ	दूर के पदार्थ	दोष सुधारने का उपाय
ह्रस्वदृष्टि Short sight or Myopia	नेत्रगोलक अधिक लम्बा	दिखाई देते हैं	दिखाई नहीं देते	अंतर्गोल काँच
दीर्घदृष्टि Long sight or Hyper-metropia	नेत्रगोलक का कम लम्बा रहना	दिखाई नहीं देते	दिखाई देते है (दृष्टिमेलसे)	बाह्यगोल काँच
वृद्धदृष्टि Presbyopia	नेत्रमणि के लचीलेपन का कम होना और सिलिअरी स्नायु का थकना	दिखाई नहीं देते	दिखाई देते हैं	पास की वस्तु देखने के लिए बाह्यगोल काँच
Astigmatism	खडे और आडे पारदर्शक पर्दे की भिन्न वक्रता	साफ दिखाई नही देते	साफ दिखाई नहीं देते	एक पृष्ठ में वक्र होनेवाला (Cylindrical) काँच

प्रश्न

१. मनुष्य के नेत्र का वर्णन कीजिये और समझा दीजिये कि भिन्न २ वस्तुएँ हमें किस तरह दिखाई देती हैं? (बम्बई वि. वि. १९२९, १९३०, १९३३, १९३६, १९३८, १९४४, एम्. एस्. सी. १९४९, १९५२, १९५३, १९५५, १९५६).

२. दृष्टिज्ञान हमें किसी प्रकार होता है? विस्तार के साथ लिखिये। (बम्बई वि. वि. १९३२).

३. अंधबिन्दु (Blind spot) के विषय में आप क्या जानते हैं? (बम्बई वि. वि. १९३३).

४. नाडीपटल के (Retina) विषय में आप जो कुछ जानते हों, लिखिये। (बम्बई वि. वि. १९३४, १९४०, १९४२, एस्. एस्. सी. १९५७।)

५. दृष्टि के मेल (Accommodation) के संबंध में आप क्या जानते है? (बम्बई वि. वि. १९३७, ४८, एस्. एस्. सी. १९५२).

६. सामान्य दृष्टि-दोष कौन २ हैं और उन्हें किस तरह दूर किया जा सकता है? (बम्बई वि. वि. १९४१).

७. कृष्णमंडल के विषय में आप क्या जानते हैं। (१९५४).

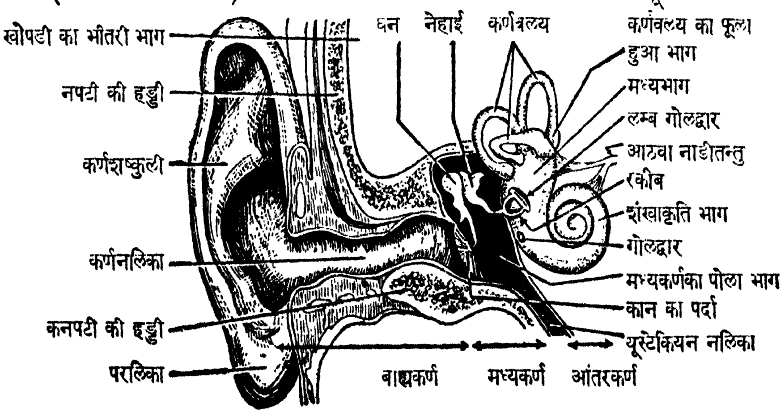
अध्याय बारहवाँ

कान और श्रवण

१३२. कान श्रवणेन्द्रिय है। उस के तीन भाग हैं :-(१) बाह्यकर्ण, (२) मध्यकर्ण, (३) आन्तरकर्ण।

बाह्यकर्ण (External ear)— इसके दो भाग हैं। एक कर्णशष्कुली (Pinna) और दूसरा कर्ण-नलिका (Auditory canal)। **कर्णशष्कुली** (Pinna) कान का बाहर से दिखनेवाला भाग है। वह एक आडी टेढी कूर्चा से बना है। यह कूर्चा त्वचा से आच्छादित है जो खोपडी के बाहरी बाजू के स्नायु और अस्थि-बंधन से बँधी हुई है। पशुओं में ये स्नायु ऐच्छिक (Voluntary) होने के कारण वे अपने कान जहाँ से आवाज आती है, उस दिशा में मोड लेते हैं। मनुष्य के ये स्नायु अनैच्छिक (Involuntary) होने के कारण कर्णशष्कुली का उपयोग आवाज़ की लहरों को एकत्रित कर उन्हें कर्णनलिका की ओर भेजने में ही होता है। **कर्णनलिका** लगभग सवा इंच लम्बी है। वह भीतरी, आगल और कुछ ऊपर की बाजू की ओर जाती है। भीतर की ओर उस पर त्वचा का आवरण रहता है। इस नलिका का बाहरी भाग कूर्चा का है और भीतरी भाग हड्डियों का है। इसके भीतरी बाजू एक लंब वर्तुलाकृति पतला **पर्दा** (Tympanic membrane or drum) ढोल के समान तन कर लगा हुआ है। कर्णनलिका के बाहरी छोर पर बारीक बाल और एक प्रकार के मोम सरीखे पदार्थ का स्रवण करनेवाली ग्रंथि रहती है। और उससे धूल आदि भीतर जानेवाले पदार्थों से कानों का बचाव होता है।

१३३. मध्यकर्ण (Middle ear)—कान के पर्दे (Drum or Tympanic Membrane) के भीतरी ओर मध्यकर्ण (Middle ear) रहता है। यह एक कनपटी की हड्डी में (Temporal bone) आडा टेढा और सँकरा पोला भाग ही है। इसमें से **यूस्टेकियन**

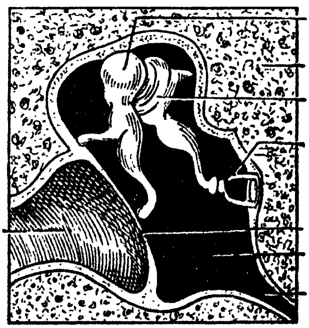


आकृति १०७—कान की रचना

बाह्यकर्ण (External ear), मध्यकर्ण (Middle ear) और आन्तरकर्ण (Internal ear)

नलिका (Eustachian tube) नामक लगभग एक इंच लम्बी नली निकलती है, जो भीतर तथा सामने की ओर जा कर गले में खुलती है। इसीलिए मध्यकर्ण का पोला भाग सदा हवा से भरा रहता है। इस योजना का उपयोग यह है कि इससे कान के पर्दे (Drum) के दोनों ओर पडनेवाला हवा का दबाव समान ही रहता है। किसी भयंकर धडाके के बाद आवाज़ की लहरें जोर से इस पर्दे पर जब पडती हैं तब इस नलिका के मार्ग से थोडी सी हवा बाहर निकल जाती है और पर्दे के भीतर और बाहर की ओर हवा का दबाव बराबर होने के कारण पर्दा फटता नहीं।

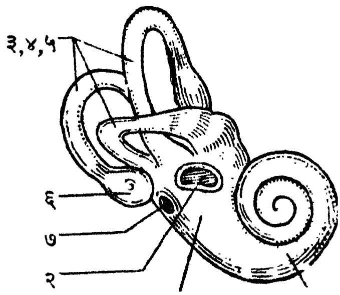
मध्यकर्ण के भीतरी ओर अंतस्त्वचा का आवरण रहता है और यही त्वचा यूस्टेकिअन नलिका के मार्ग से गले की अंतस्त्वचा से मिल जाती है। इस कान के बाहरी ओर कान का पर्दा (Drum) और भीतरी ओर आंतरकर्ण (Internal ear) रहता है। इस पोले भाग में कान के पर्दे के भीतरी बाजू से आंतरकर्ण के बाहरी बाजू तक तीन छोटी हड्डियों की जंजीरसी रहती है। इन हड्डियों को उन के आकार से **घन** (Malleus or hammer), **नेहाई** (Incus or Anvil) और **रकाब** (Stapes or Stirrup) नाम दिये गये हैं। घन की (Malleus) मुठ्ठी कान के पर्दे के भीतरी बाजू जुडी हुई है। और उसका चौडा भाग नेहाई (Incus) से जुडा हुआ है। स्वतः नेहाई की हड्डी रकाब (Stirrup) की हड्डी से जुडी रहती है। आन्तरकर्ण के बाहरी बाजू के छेद पर (Oval window) जो पर्दा रहता है उस पर रकाब (Stirrup) के तल का भाग बैठा हुआ रहता है। इसी रीती से कान के पर्दे पर आघात करनेवाली आवाज़ का प्रवाह इन तीन हड्डियों की जंजीर के द्वारा आन्तरकर्ण में पहुँचता है।



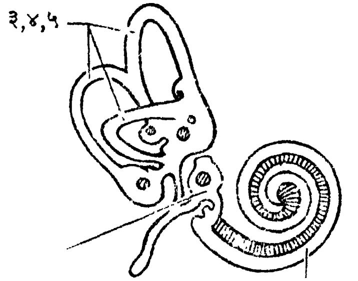
आकृति १०८ — **मध्यकर्ण** (Middle ear), **की तीन हड्डियाँ।**

१३४. आंतरकर्ण (Internal ear) — यह मध्यकर्ण (Middle ear) के भीतरी बाजू कनपटी की हड्डी (Temporal bone) के भीतरी त्रिकोणाकृति भाग में रहता है। इसकी रचना अतिशय उलझी हुई है। इसे **अस्थिकुहर** (Bony labyrinth) कहते हैं। इसके तीन भाग हैं – मध्यभाग (Vestibule), शंखाकृति भाग (Cochlea) और अर्धवर्तुलाकृति कर्णवलय (Semi-circular canals)। अस्थिकुहर

में (Bony labyrinth) ठीक उसी आकार की और अन्तस्त्वचा के समान पतले आवरण की बनी हुई एक थैली रहती है। उसे **त्वक्कुहर** (Membranous labyrinth) कहते हैं। यह थैली आन्तरकर्ण के तीनों भागों में रहती है; उसमें एक प्रकार का तरल



आकृति १०९ — **कनपटी की हड्डी (Temporal bone) में रहनेवाला अस्थिकुहर** (Bony labyrinth). १ मध्यभाग (Vestibule). २ लम्बगोल द्वार (Oval window). ३, ४, ५ अर्धवर्तुलाकृति कर्णवलय (Semicircular canals). ६ कर्णवलय का फूला हुआ भाग. ७ गोल द्वार (Round window). ८ शंखाकृति भाग (Cochlea).



आकृति ११० — **अस्थिकुहर** (Bony labyrinth) **से बाहर निकाला गया त्वक्कुहर** (Membranous labyrinth). १ मध्यभाग (Vestibule) का त्वक्कुहर, ३ ४, ५ अर्धवर्तुलाकृति कर्णवलयों का त्वक्-कुहर, ८ शंखाकृति भागों का (Cochlea) त्वक्कुहर, आठवें नाडीतन्तु (Auditory nerve) की शाखा जिस स्थान पर आती है वह भाग अधिक काला दिखाया गया है।

पदार्थ (Endolymph) भरा रहता है। उसके बाहर परंतु अस्थि-कुहर (Bony labyrinth) के भीतर एक और तरल पदार्थ (Perilymph) रहता है।

मध्यभाग (Vestibule)—यह अस्थिकुहर का बीच का पोला भाग है। इस के भीतरी ओर आठवें नाडीतन्तु की (Auditory nerve) शाखा फैली हुई है। उसके बाहरी बाजू पर लम्ब गोल द्वार (Oval window) है। उस पर एक पतला पर्दा चिपका हुआ है और उसपर ही रकाब की हड्डी के तल का भाग (Foot of stapes) बैठा हुआ है। ऊपर और पीछे की ओर कर्णवलय (Semicircular) के पाँच छेद इसमें खुलते हैं और इनके सामने की ओर शंखाकृति भाग (Cochlea) है। इनका कार्य वर्णवलय के कार्यों के समान है।

कर्णवलय (Semicircular canals)—ये तीन अर्धवर्तुलाकृति पोली नलियाँ हैं। ये मध्यभाग (Vestibule) के ऊपरी और पिछले भाग में रहती हैं। इनमें से एक खडी, एक आडी और एक तिरछी है और प्रत्येक में ठीक उसी के आकार की पतले आवरण की बनी हुई नली (membranous semicircular canal) रहती है। ये तीनों नलियाँ पाँच मुँह से मध्यभाग (Vestibule) में खुलती हैं। क्योंकि इनमें से

दो नलियाँ मध्यभाग में खुलने से पूर्व एक दूसरे से मिल जाती है। प्रत्येक नली के एक मुँह के भीतरी ओर आठवें नाडीतन्तु (Auditory nerve) की शाखा फैली रहती है। इसी से यह मुँह जरा फूला हुआ दिखता है।

कर्णवलयों के कार्य —

(१) इनका कार्य शरीर का तोल सँभालना है। इन भागों से निकलनेवाले आठवें नाडीतन्तु (Auditory nerve) की शाखाएँ छोटे मस्तिष्क (Cerebellum) की ओर जा कर उसका तोल सँभालने के काम में मदद करती हैं।

(२) इन की वजह से हमें अपने अवयवों की स्थिति (Position) और हलचल का ज्ञान होने में मदद मिलती है। भिन्न स्थितियों में इन नलियों में रहनेवाले तरल पदार्थ (Perilymph and endolymph) पर रहनेवाला दबाव बदलता है। और इसके कारण उत्पन्न होनेवाली प्रेरणा मस्तिष्क की ओर ले जाई जाती है, जिस से खास स्थिति का ज्ञान हमें होता है।

शंखाकृति भाग (Cochlea)—यह भाग मध्यभाग (Vestibule) का अगला बाजू है। इसका आकार शंख के समान है। इसके बाहरी बाजू एक छेद (Round window) है। उसपर एक पतला पर्दा है जिसके कारण यह भाग और मध्यकर्ण का पोला भाग एक दूसरे से पृथक रहते हैं।

आंतरकर्ण के अन्य भागों के समान शंखाकृति भाग (Cochlea) में भी एक प्रकार के तरल पदार्थ (Endolymph) के सहित पतली थैली रहती है। मस्तिष्क के आठवें नाडीतन्तु (Auditory nerve) की दो शाखाएँ फूट कर एक मध्यभाग (Vestibule) की ओर और दूसरी शाखा शंखाकृति भाग की ओर जाती हैं। नाडीतन्तु की दूसरी शाखा को घेरकर शंखाकृति भाग का वलय एक दूसरे पर लपेटा रहता है। शंखाकृति भाग की थैली के तरल पदार्थ में जो विशिष्ट ज्ञानेंद्रियाँ (Organs of Corti) हैं उनसे नाडीतन्तुओं के छोर बँधे हुए हैं। इन ज्ञानेंद्रियों (Organs of Corti) के कम्पन के कारण नाडीतन्तुओं के छोर उद्दीपित होते हैं, जिससे प्रेरणा (Impulse) उत्पन्न होती है। वह आठवें नाडीतन्तु (Cochlear branch of auditory nerve) द्वारा मस्तिष्क के **श्रुतिकेन्द्र** को (Area of hearing) ले जाई जाती है। वहाँ उसका सुनने की संवेदना में रूपान्तर हो जाता है। इस तरह शंखाकृति भाग (Cochlea) सुनने की क्रिया की बाह्य इंद्रिय (End organ) है।

१३५. हमें सुनाई कैसे पडता है?—पानी में पत्थर डालते ही लहरें उत्पन्न हो कर वे जिस प्रकार वर्तुलाकार लंबी फैलती जाती हैं उसी प्रकार किसी घंटे पर यदि चोट की जाय तो उसके कम्प से उत्पन्न होनेवाली हवा की लहरें सब दिशाओं में फैलती जाती हैं। इनमें से कुछ लहरें कर्णशष्कुली में जमा हो कर कर्ण-नलिका (Auditory canal) में प्रविष्ट होती हैं। ये लहरें कर्ण-नलिका के भीतरी पर्दे पर

(Drum) जमा हो कर हलचल मचाने लगती हैं। मध्यकर्ण (Middle ear) की तीन हड्डियों की जंजीर इस पर्दे से जुडी हुई होने के कारण ये लहरें रकाब की हड्डी (Stirrup) के द्वारा आंतर-कर्ण के बाहरी छेद (Oval window) के पर्दे पर पहुँच जाती हैं जिससे अस्थिकुहर (Bony labyrinth) की पतली थैली (त्वक्कुहर) और उसके बाहरी तरल पदार्थ (Perilymph) और भीतर के तरल पदार्थ (Endolymph) में भी लहरें उत्पन्न हो जाती हैं। मध्यकर्ण और आंतरकर्ण में से लहरों के जाते समय उसकी तीव्रता कई गुना बढती जाती है। कान की विशिष्ट ज्ञानेंद्रियें (Organs of Corti) त्वक्कुहर के भीतरी तरल पदार्थ में (Endolymph) ही होने के कारण इनमें भी हलचल शुरू होने लगती है और आठवें नाडीतन्तु के छोर इनसे जुडे हुए होने के कारण उनका उद्दीपन हो कर प्रेरणा उत्पन्न होती है। आठवें नाडीतन्तु (Auditory nerve) द्वारा यह प्रेरणा मस्तिष्क के श्रुति-केन्द्र में (Area of hearing) पहुँचती है और वहाँ उसका श्रवण की संवेदना में रूपान्तर होता है। इसेही हम आवाज को सुनना कहते हैं।

१३६. सारांश —

कान के तीन भाग होते हैं :—

१ बाह्यकर्ण (External)

(अ) कर्णशष्कुली। कार्य :—ध्वनि की लहरों को एकत्रित करना।

(आ) कर्णनलिका (Auditory Canal)। सवा इंच लम्बी। बाहर का भाग कूर्चा और भीतरी हड्डी का। भीतरी बाजू कान का पर्दा।

२ मध्यकर्ण (Middle ear)—कनपटी (Temporal) की हड्डी में आडा टेढा और सँकरा पोला भाग. बाहरी बाजू पर्दा (Drum), भीतरी बाजू आंतरकर्ण और सामने की तरफ कंठ की और जानेवाली यूस्टेकिअन नलिका; इसमें हवा के अतिरिक्त धन, नेहाई, रकाब नामक कान के पर्दे (Drum) से आंतरकर्ण तक रहनेवाली हड्डियों की जंजीर।

कार्य — पर्दे पर आनेवाली लहरों को बढाना और उन्हें आंतरकर्ण की और पहुँचाना।

३ आंतरकर्ण — आडा टेढा अस्थिकुहर (Bony labyrinth) और उसमें तरल पदार्थ (Endolymph) वाली त्वक्कुहर की उसी आकार की पतली थैली (Membranous labyrinth)।

(अ) व्हेस्टिब्यूल — बीच का भाग।

(आ) कर्णवलय — पीछे की ओर रहते हैं। ये तीन अर्धवर्तुलाकृति नलियाँ भिन्न २ पृष्ठ पर रहती हैं। नाडीतन्तु के कारण प्रत्येक नली का एक छोर फूला रहता है। ये सब पाँच छेदों में व्हेस्टिब्यूल में खुलती हैं।

कार्य—शरीर का तोल सँभालना और शरीरास्थिति का ज्ञान कराने में सहायता देना।

(इ) शंखाकृति भाग-भीतरी तरल पदार्थ (Endolymph) में विशिष्ट ज्ञानेंद्रियों से (Organs of Corti) आठवें नाडीतन्तु के छोर जुडे रहते हैं। [illegible] की लहरों के कारण उत्पन्न होनेवाली प्रेरणा आठवें नाडी तन्तु के द्वारा मस्तिष्क के श्रुतिकेन्द्र में ले जाई जाती है।

प्रश्न

१. कान की रचना कैसी है ? वर्णन कीजिये । साथ में वह भी बतलाइये कि आपको आवाज किस तरह सुनाई देती है ? (बम्बई विश्वविद्यालय १९३२, ३४, ३७, ३९, ४३, एस्. एस्. सी. १९५१, ५३, १९५४, १९५६).

२. आंतरकर्ण के कर्णवलय के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं ? (बम्बई वि. वि. १९३५, एस्. एस्. सी. १९५२, १९५४, १९५७).

३. आंतरकर्ण के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं ? (बं. वि. वि. १९४१, ४५, ४७).

४. शंखाकृति भाग (Cochlea) के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं ? (एस्. एस्. सी. १९५२).

उर

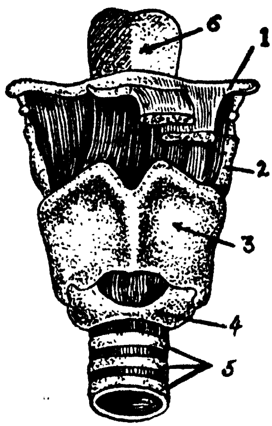
ए

में फैलती जाती

(A

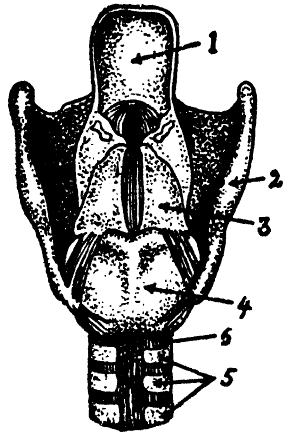
स्वरयंत्र (Larynx) और आवाज

१३७. स्वरयंत्र — इस इंद्रिय की रचना हममें बोलने की क्षमता पैदा करने के लिए हुई है। जिव्हामूल के निकट और श्वासनलिका (Trachea) के ऊपरी



आकृति १११ — **स्वरयंत्र** (Larynx)
(सामने से देखने पर)

1 जिव्हास्थि (Hyoid bone), 2 जिव्हास्थि और थायरॉइड कूर्चा (Cartilage) का स्नायु, 3 थायरॉइड कूर्चा, 4 क्रिकॉइड कूर्चा, 5 श्वासनलिका (Trachea) के कूर्चावलय।

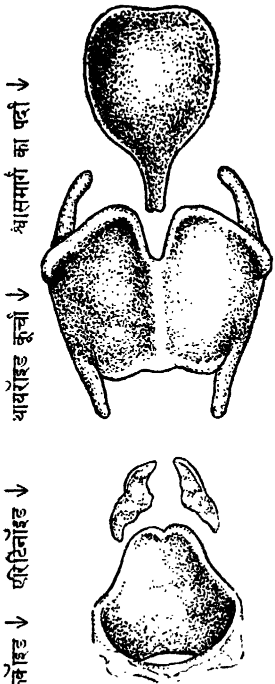


आकृति ११२ — **स्वरयंत्र** (Larynx)
(ऊपरी स्नायु निकाल कर पीछे से देखने पर)

1 श्वासमार्ग का पर्दा (Epiglottis), 2 थायरॉइड कूर्चा की पिछली कडी, 3 एरिटिनॉइड कूर्चा, 4 क्रिकॉइड कूर्चा, 5 श्वासनलिका के कूर्चावलय; येवलय 'C' आकार के होने के कारण पीछे के बाजू अपूर्ण दिखलाई देते हैं, 6 स्नायु और तन्तुमय पिछली बाजू।

बाजू यह है। यह एक त्रिकोणाकृति पेटी है जो कूर्चाओं से बनी हुई है। ये कूर्चाएँ एक दूसरे से अस्थिबन्धन (Ligaments) और स्नायु से बँधी हुई हैं। **थायरॉइड** अथवा **कंठकूर्चा, क्रिकॉइड** अथवा **मुद्राकार कूर्चा** और दो **एरिटिनॉइड** अथवा **त्रिकोणाकृति कूर्चा,** इसमें हैं। इनमें कंठकूर्चा (आ. ११३ देखिये) सब से बडी कूर्चा है। यह दो चपटे टुकडों की बनी हुई है। ये टुकडे आगे की ओर एक दूसरे से मिले हुए रहते हैं, जिससे गर्दन के सामने का भाग उठा हुआ रहता है। इस उठे हुए भाग को **कंठमणि** या **टेंटुआ** (Adm's apple) कहते हैं। स्वरयंत्र का केवल सामने और बाजू का भाग ही इस कूर्चा से बना हुआ रहता है। क्योंकि पीछे की ओर इसकी दोनों कडियाँ एक दूसरे से मिली हुई नहीं रहतीं। मुद्राकार कूर्चा (Cricoid) छोटी है और उसका आकार मुहर की अंगूठी के समान है। इसका पिछला भाग सामने

के भाग की अपेक्षा ज्यादा चौडा रहता है। इस चौडे भागपर पिरॅमिड के समान त्रिकोणाकार की दो एरिटिनॉइड कूर्चाएँ रहती हैं जो मुद्राकार कूर्चा से (Crocoid) अस्थिबन्धनों (Ligaments) द्वारा बँधी रहती हैं।



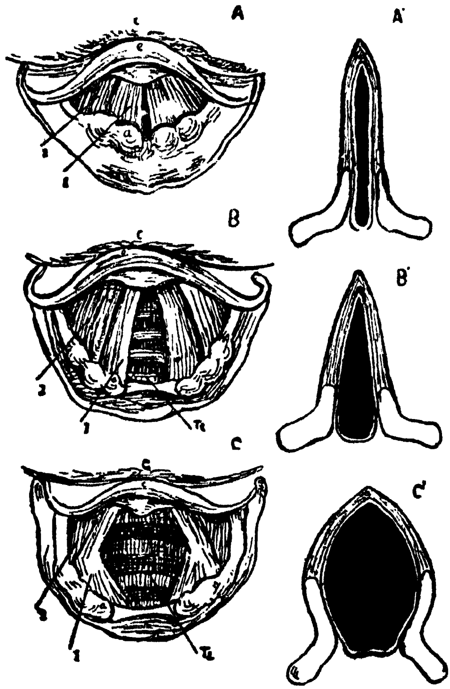
आकृति ११३—**स्वरयंत्र के कूर्चा** (सामने से)

स्वरयंत्र के भीतरी ओर अंतस्त्वचा (Mucous membrane) का आवरण है। यही आवरण नीचे के बाजू श्वासनलिका के आवरण से मिल जाता है। इस पर, सूक्ष्म बाल या रोएँ (Cilia) रहते हैं। एक स्थान पर इस अंतस्त्वचा के दोनों ओर दो तहें रहती हैं। प्रत्येक तह में लचीले तन्तु (Elastic fibres) रहते हैं। इन तहों को भी **सच्चे स्वरतंतु** (True vocal cords) नाम दिया गया है। ये स्वरतन्तु पीछे के बाजू प्रत्येक एरिटिनॉइड कूर्चा के एक छोर से बँधे रहते हैं। और सामने के बाजू कंठकूर्चा (Thyroid) के सामने के भीतरी पृष्ठभाग से मिलते हैं। दो स्वरतन्तु के बीच के चिरे भाग को **स्वरद्वार** (Glottis) कहते हैं। मामूली (स्वाभाविक रीति से) श्वास लेते समय ये तन्तु जरा भी नहीं कंपित होते और स्वरद्वार का आकार अंग्रेजी अक्षर V के समान रहता है। जोर से श्वास लेते समय ये तन्तु एक दूसरे से बहुत दूर हो जाते हैं। परन्तु शब्द का उच्चारण करते समय ये बिलकुल पास आ जाते हैं जिससे स्वरद्वार (Glottis) बहुत बारीक हो जाता है। इन स्वरतन्तु के ऊपरी बाजू इन्हीं से समान्तर दो अंतस्त्वचा की तहें रहती हैं। शब्द उच्चारण के काम में ये बिलकुल भाग नहीं लेतीं। इसीसे इन्हें **झूठे स्वरतन्तु** (False vocal cords) कहते हैं।

१३८. **श्वासमार्ग का पर्दा** (Epiglottis)— यह स्वरयंत्र की ओर (Larynx) के ऊपरी बाजू और जिव्हामूल की ओर कूर्चा का बना हुआ पर्दा है। इसका आकार पान के समान है। इसकी ऊपरी खुली किनार चौडी और गोल है और स्वरयंत्र के ऊपरी बाजू और कुछ आगे की ओर है। इसका निचला सँकरा बाजू कंठकूर्चा (Thyroid) के सामने के बाजू से जुडा हुआ है। अन्न निगलने के समय जब गलगुण्डी ऊपर उठाई जाती है तब श्वासनलिका ऊपर खींच जाती है। इसका ऊपरी मुख जिव्हा की जड के नीचे आ जाता है और श्वासमार्ग बंद होता है। उसी समय श्वासमार्ग का पर्दा भी नीचे आकर श्वासमार्ग को बंद करने में सहायक होता है (आकृति ४६ और ११३ देखिए)। यह प्रबंध इसलिए किया गया है कि अन्न

श्वासमार्ग में न जा सके। जल्दी २ भोजन करने में यदि अन्न भूल से श्वासमार्ग में जाता है तो ठसका लग कर वह शीघ्र ही बाहर फेंक दिया जाता है।

१३९. **आवाज़** (Voice) और **वाचा** (Speech)—स्वरयंत्र के कुछ स्नायुओं का आकुंचन होकर स्वरतन्तु (Vocal cords) एक दूसरे के पास आ जाते हैं और फेफड़ों की हवा का झोंका उनमें से जाते समय उनमें कंपन हो कर उनसे आवाज़ होती है।



आकृति ११४—**स्वरयंत्र की जाँच करने के यंत्र** (Laryngoscope) **द्वारा कंठ से नीचे देखते समय दिखलाई देनेवाला स्वरयंत्र** (Larynx) **का भीतरी बाजू.**

1 सच्चे स्वरतन्तु (True vocal cords), 2 झूठे स्वरतन्तु (False vocal cords), Tr श्वासनलिका (Trachea,) C जिव्हामूल, e श्वासमार्ग के पर्दे (Epiglottis) का ऊपरी बाजू, a एरिटिनॉइड कूर्चा।

A उच्च स्वर से गाते समय स्वरतन्तु में दिखाई देनेवाला अंतर (स्वरद्वार Glottis). B श्वासोच्छ्वास करते समय दिखलाई देनेवाला स्वरद्वार (Glottis), C खूब जोर से श्वास लेते समय दिखनेवाला स्वरद्वार (Glottis), A, B, C, के समय स्वरद्वार किस तरह दिखलाई देता है उसे A' B' और C' में क्रमशः दिखलाया गया है।

आवाज का गुणधर्म कई बातों पर अवलम्बित रहता है। स्वरतन्तु के प्रति सेकंड कम्पित होने के वेग पर आवाज की तीव्रता (Pitch of the sound) अवलम्बित रहती है। इनका वेग जितना अधिक होगा आवाज भी उतनी ही तीव्र या उँची होगी। स्वरतन्तु यदि कम बारीक होंगे या स्नायुओं के आकुंचन से उनपर तनाव बढेगा तो आवाज की उँचाई (Pitch) शीघ्र बढ जायगी। पंद्रह या सोलह वर्ष के लगभग लडकों की कंठकूर्चा (Thyroid) में एकदम वृद्धि होती है, जिससे स्वरतन्तुओं की लम्बाई बढती जाती है और इसीसे उनकी आवाज फूट कर मोटी और भारी हो जाती है। इस आयु के पूर्व लडके और लडकी के स्वरतन्तुओं की लम्बाई में फर्क नहीं रहता। स्त्रियों के स्वरतन्तु पुरुषों की अपेक्षा स्वभावतः कम लम्बे रहने के कारण उनकी आवाज अधिक उँची (of higher pitch) रहती है। ठंड लगने पर स्वरतन्तुओं के सूज जाने से उनकी मुटाई बढने के कारण आवाज जल्दी बैठ जाती है। कंपित होनेवाले स्वरतन्तु (Vocal cords) कंपन के समय जिस हिसाब से पीछे-आगे होंगे (Amplitude) उसी हिसाब पर आवाज का बडापन अवलंबित रहेगा। फेफडों की हवा के अधिक जोर से स्वरद्वार में से जाने के कारण आवाज बडी निकलती है।

वाचा—आवाज होते समय स्वरयंत्र के ऊपरी श्वासमार्ग के पोले भाग के आकार में तरह २ का फर्क होते रहने से वाचा उत्पन्न होती है। कंठ, नाक और मुँह के पोले भाग का आकार जीभ, तालू, गाल, होंट और अन्य कुछ स्नायुओं की विशिष्ट हलचल होने से बदलता रहता है और इसी कारण शब्द तैयार होता है। उदाहरण के तौर पर–जीभ दातों की तरफ लगाकर श्वास बाहर छोडते समय वह एकाएक पीछे खींच ली तो तालव्य वर्ग के याने त थ द ध न इन अक्षरों का उच्चारण होता है। धीमे स्वर में बोलते समय (While muttering) स्वरतन्तु में कम्पन नहीं पैदा होता है; केवल होंठ और जीभ की सहायता से शब्द उच्चारित होते हैं।

अधिक बोलने, चिल्लाने और गाने से स्वरतन्तुओं पर तनाव आता है। धूल, दूषित वायु, ठंड और मद्यपान आदि के कारण स्वरतन्तुओं में सूजन आती है इसलिए इनसे हमें बचते रहना चाहिये।

प्रश्न

१. हम किस विशिष्ट योजना के कारण बोलने में समर्थ होते हैं, वर्णन कीजिये। (बम्बई वि. वि. १९३२).

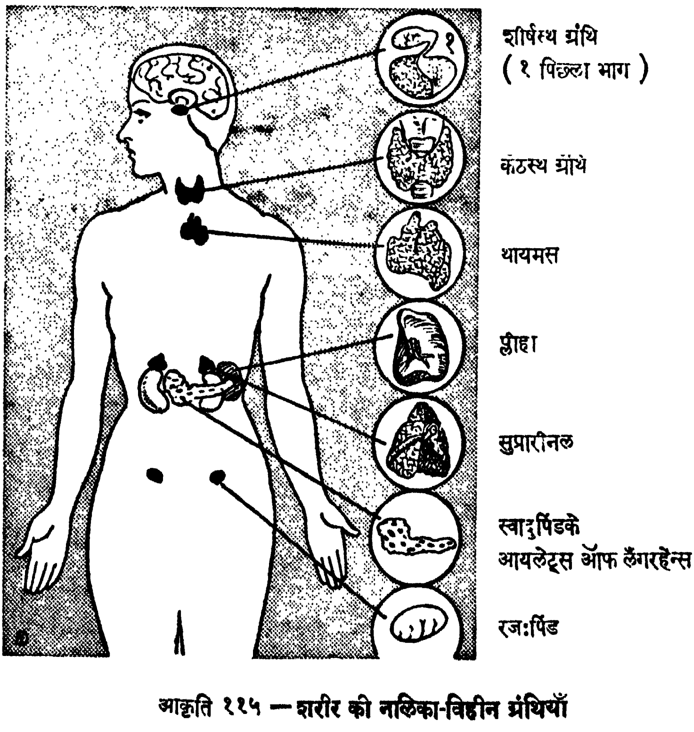
२. स्वरयंत्र और इसके कार्य के विषय में आप क्या जानते हैं? (बं. वि. वि. १९४२).

३. स्वरतन्तु के विषय में आप क्या जानते हैं? (बं. वि. वि. १९३७, १९४०, एस्. एस्. सी. १९५७).

अध्याय चौदहवाँ

नलिका-विहीन ग्रंथियाँ (Ductless glands)

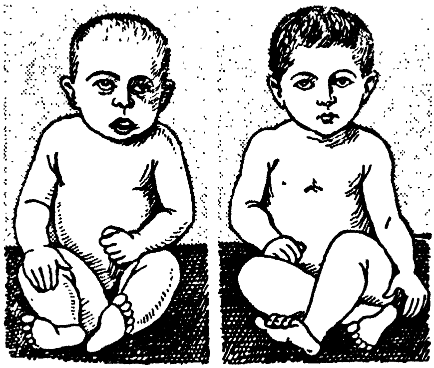
१४०. नलिका-विहीन ग्रंथियाँ — इस प्रकार की ग्रंथियों में शरीर की अन्य ग्रंथियों के समान उनमें से स्रवित होनेवाले द्रव पदार्थ को बहा ले जानेवाली नलिकाएँ (Ducts) नहीं रहतीं, इसी से उन्हें '**नलिका-विहीन ग्रंथियाँ**' कहते हैं। इन ग्रंथियों में तैयार होनेवाले तरल पदार्थ को **अंतःस्राव** (Internal secretion) कहते हैं जो अन्य बहिःस्राव के समान (External secretion) नलिकाओं के मार्ग से ग्रंथियों के बाहर नहीं ले जाया जाता। वह ग्रंथियों की रसवाहिनियों (Lymphatics) और सूक्ष्म शिराओं (Veins) द्वारा एकदम रक्त में शोषित होकर शरीर के सब अवयवों की ओर पहुँचा दिया जाता है। शरीर की कुछ ग्रंथियों में नलिका के रहते हुए भी बहिःस्राव के अतिरिक्त अंतःस्राव भी तैयार होता है। उदाहरणार्थ, स्वादुपिंड या क्लोम (Pancreas) में दोनों प्रकार का स्राव भी तैयार होता है। शरीर के योग्य पोषण और वृद्धि के लिए उन नलिका-विहीन ग्रंथियों का बहुत उपयोग होता है। बहुत बार उनके कार्य एक दूसरे पर अवलम्बित रहते हैं। उनके अंतःस्राव में जो विशिष्ट रासायनिक द्रव्य रहते हैं उन्हें



आकृति ११५ — शरीर की नलिका-विहीन ग्रंथियाँ

'**हॉरमोन्स**' (Hormones) कहते हैं। वे रक्त में प्रविष्ट होकर विशिष्ट अवयवों के कार्य में मदद पहुँचाते हैं।

१४१. कंठस्थपिंड अथवा थाइरॉइड ग्रन्थि (आकृति १ आर ११५ देखिये)– यह गर्दन के सामने और निचले भाग में तथा श्वासनलिका के दोनों बाजू रहती है। इसके दोनों बाजू दो भाग हैं। ये परस्पर टेंटुए के नीचे एक भाग द्वारा (Isthmus) जुडे हुअे रहते हैं। इसे भरपूर रक्त मिलता है। यह नलिकाविहीन ग्रन्थि (Ductless) है। इसमें उत्पन्न होनेवाले अंतःस्राव (Internal secretion) का शरीर की चयाप-



आकृति ११६ – **क्रेटिनिझम्**

बाईं ओरकी आकृति में बच्चे के 'क्रेटिनिझम्' की बीमारी हुई है।

दाहिनी आकृतिमें अंतःस्राव को कृत्रिम रीतिसे पहुँचाये जानेपर बच्चे में हुआ सुधार बताया गया है।



आकृति ११७ – **गॉयटर**

गर्दन के आगे के हिस्सेमें बढी हुई ग्रंथि साफ दिखाई देती है। आखों के पीछे चर्बी के जमनेसे आँखें चढी हुई दिखाई देती है।

चयक्रिया (Metabolism) में बहुत उपयोग होता है। जब यह स्राव तैयार नहीं होता तब छोटे बच्चों की शारीरिक और मानसिक वृद्धि रुक जाती है और इस रोग को '**क्रेटिनिझम्**' (Cretinism) कहते हैं। वयस्क व्यक्तियों के इस स्राव के अभाव में बाल झरने लगते हैं और शरीर में चर्बी बढ जाती है जिससे वे मोटे हो जाते हैं। जब इसका स्राव अधिक परिमाण में होने लगता है तो **गॉयटर** (Goitre) नामक रोग जड पकड लेता है।

१४२. मूत्रपिंड के ऊपर की ग्रंथियाँ (Supra-renal gland) (आकृति ४८, ५५, और ११५ देखिये)—प्रत्येक मूत्रपिण्ड पर एक २ ग्रंथि त्रिकोणाकृति में रहती है। इसके बाहरी भाग को '**कॉरटेक्स**' कहते हैं। और उसमें उत्पन्न होनेवाले अंतःस्राव का शरीर की वृद्धि पर परिणाम होता है। उसके भीतरी भाग को '**मेड्यूला** कहते हैं। उसमें **एड्रिनलिन** (Adrenalin) नामक जो अंतःस्राव तैयार होता है

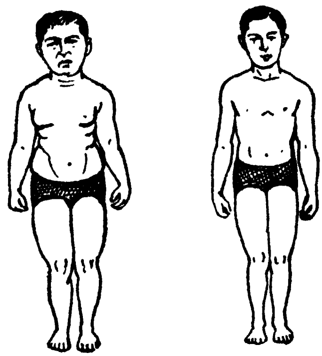
उसका परिणाम शरीर के अनिच्छावर्ती (Involuntary) स्नायुओं पर – जैसे रक्त-वाहिनियों की दीवाल के स्नायुपर होता है। रक्तवाहिनियों की दीवाल के अनिच्छावर्ती स्नायुओं में जो नाडीतन्तु पहुंचते हैं वे इसी अंतःस्राव से उद्दीपित होते हैं जिससे रक्तवाहिनियों के स्नायुओं का आकुंचन होकर रक्त का दबाव (Blood-pressure) कायम रहता है। यदि इन ग्रंथियों में कोई रोग हो जाय या इन्हें शरीरसे निकाल दिया जाय तो सब स्नायु शिथिल हो जायेंगे जिससे शरीर बेहद कमजोर हो जायगा।

१४३. शीर्षस्थ ग्रंथि (Pituitary gland or Hypophysis) (आकृति २९ और ११५ देखिये)-—यह ग्रन्थि सिर की खोपडी में मस्तिष्क के नीचे रहती है। यह आकार में बहुत छोटी और जरा लम्बी है। इसका रंग ललाई लिए जरा धूसर रहता है। इस ग्रन्थि के सामने के भाग में जो अंतःस्राव (Internal secretion) उत्पन्न होता



आकृति ११८

आवश्यक से अधिक स्राव उत्पन्न होने से हाड्डियों की बेसुमार वृद्धि होती है।



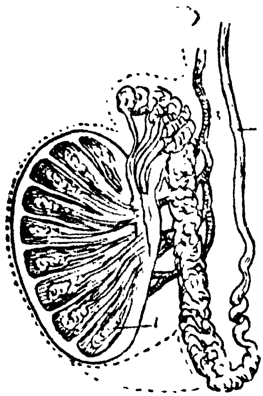
आकृति ११९

कम स्रावसे स्थूलता आती है। स्राव के योग्य रीतिसे पहुँचाये जानेपर हो गया सुधार दाहिनी आकृति में दर्शाया है।

है उससे हड्डियों की बाढ में मदद मिलती है। उसके पिछले भाग से उत्पन्न होनेवाले स्राव के कारण प्रजोत्पादन की ग्रन्थियों की वृद्धि और पोषण होता है; स्राव अगर ठीक परिमाणमें तैयार न हुआ तो यह वृद्धि और पोषण उचित रीतिसे नहीं होता और त्वचाके नीचे चरबी रुककर स्थूलपना आता है। इसके अतिरिक्त अँतडियाँ, मूत्राशय (Urinary bladder), गर्भाशय, हृदय, इत्यादि अनिच्छावर्ती स्नायुओं पर इसका परिणाम होता है, जिससे ये इंद्रियाँ अधिक कार्यक्षम बनती हैं। इस ग्रंथि के स्राव को **पिट्युइट्रिन** (Pituitrin) कहते हैं।

१४४. आयलेटस् ऑफ् लॅंगरहॅन्स्—यह सूक्ष्मग्रंथि स्वादुपिंड या क्लोम (Pancreas) में है, इसका वर्णन पहले किया जा चुका है (परिच्छेद ७२ देखिये)।

१४५. प्लीहा (Spleen)—प्लीहा ऊर्फ तिल्ली शरीर की सबसे बडी नलिका-विहीन ग्रंथि उदरगह्वरमें बाईं ओर और ऊपरकी तरफ है। इसमें उत्पन्न होनेवाले अन्तःस्राव के बारेमें अबतक कोई जानकारी प्राप्त नहीं। प्लीहा के अन्य कार्य के बारे में जानकारी परिच्छेद २६ में आ ही गई है।



आकृति १२० —**वीर्यपिंड** (Testes) **और वीर्यवाहक नलिका.** १ वीर्यपिण्ड नलिकाओं के वलय, २ वीर्यवाहकनालिका (Ductus deferens), ३ वीर्यपिण्ड की धमनी.

१४६. वीर्य-पिंड अथवा **वृषण** (Testes)—ये दो प्रजोत्पादन की ग्रंथियाँ पुरुषों में होती हैं। ये वीर्यवाहक नलिकाओं द्वारा दो जंघाओं में त्वचा की थैलियों (Scrotum) में लटकती हुई रखी गई है। प्रत्येक ग्रंथि लगभग एक इंच लंबी गोल रहती है; उसमें सूक्ष्म नलिकाओं के अनेक वलय (Coiled tubes) रहते हैं। ये सब वलय **वीर्यवाहक नलिका** (Ductus deferens) में खुलते हैं। सूक्ष्म नलिकाओं में उत्पन्न होनेवाले बहिःस्राव **रेतस्** या **शुक्र** (Semen) के विषय म जानकारी अगले अध्याय पुनरुत्पत्ति संस्था में दी है। उपर कही गई सूक्ष्म नलिकाओं के बीच में और एक प्रकार की पेशियों के समूह रहते हैं जिससे अन्तःस्राव (Internal secretion) उत्पन्न होता है। इस अंतःस्राव के कारण पुरुष के यौवनावस्था में प्रविष्ट होते समय उसमें द्वितीय श्रेणी के लिंग-विशिष्ट चिन्ह (Secondary sexual characteristics) जैसे मूछों के बालों का आना, आवाज का बदलना इत्यादि चिन्ह दिखाई देते हैं। तथा जननेन्द्रिय की वृद्धि होती हैं और मनुष्य प्रजोत्पत्ति करने में समर्थ होता है। साथ ही उसमें कर्तृत्वशक्ति, साहस, उत्साह इत्यादि गुण भी आ जाते हैं।

१४७. रजःपिंड (Ovaries)—स्त्रीमें प्रजोत्पादन की ये दो ग्रंथियाँ है जो कटिर-गह्वर में गर्भाशय (Utetus) के प्रत्येक ओर रहती हैं। प्रत्येक रजःपिंड (Ovary) अंडाकृति रहता है। वह एक इंच लंबा तथा आधा इंच चौडा रहता है। रजःपिंड में जो अंतःस्राव उत्पन्न होता है उससे स्त्रीको यौवनावस्था प्राप्त होती है। जननेन्द्रिय और स्तनों की वृद्धि, नितंब का अधिक चौडा होना आदि द्वितीय श्रेणी के लिंगविशिष्ट चिन्ह (Secondary sexual characteristics) दिखलाई देने लगते हैं। इन ग्रंथियोंके बारेमें अधिक जानकारी अगले अध्यायमें दी है।

प्रश्न

१. प्लीहा ग्रन्थि का विस्तार के साथ वर्णन कीजिये। (**बम्बई वि. वि. १९२८, १९३३, १९३४, १९४०, १९४१, १९४५, १९५८**).

२. कंठस्थपिण्ड (Thyroid gland) का वर्णन कीजिये । (बम्बई विश्वविद्यालय, १९३९, १९४४, १९४६, एस्. एस्. सी. १९५१, १९५२, १९५४, १९५५).

३. शीर्षस्थ ग्रन्थि (Pituitary gland) के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं ? (बम्बई वि. वि. १९४२, १९४६, एस्. एस्. सी. १९५४, १९५६, १९५८).

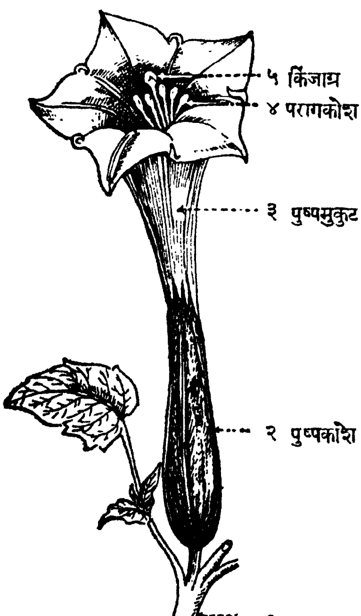
४. नलिकाविहीन ग्रन्थियों से मतलब क्या है ? शरीरमें रहनेवाली भिन्न २ ग्रन्थियों के नाम लिखिये । (१९४२).

५. मूत्रपिंड के उपर की ग्रंथियों के सम्बध में आप क्या जानते है ? (१९५३, १९५५, १९५७).

अध्याय पंद्रहवाँ

पुनरुत्पत्ति-प्रणाली

१४८. पृथ्वीपर तरह २ की वनस्पतियाँ और प्राणी हैं। ये वनस्पतियाँ और ये प्राणी सैंकडों साल पृथ्वीपर हैं। पुराने वृक्ष मुद्दत के बाद नष्ट होते हैं, पर उसी प्रकार के अनेक वृक्ष अस्तित्वमें आते हैं और उन्हें अनुकूल परिस्थिति मिल जाय तो फूलते फलते हैं। उसी तरह प्राणी बूढे होकर मृत्यु के कँवल बन जाते हैं; पर अनेक प्राणी पैदा होते हैं, बढते हैं, और प्राणियोंको पैदा करते हैं और मर जाते हैं। इस प्रकार जन्ममरण का चर्खा लगातार चालू है। प्रकृतिने यह चक्र जारी रखा है, इसीलिए दुनियाके व्यवहार बराबर चालू रहे हैं। एक पीढी धीरे २ नष्ट होती है तो उसकी जगह नवीन पीढी तैयार होती है। नवीन पीढी को अस्तित्वमें लानेकी जिम्मेदारी अधिकांशमें प्राणियोंमें मादेपर और मनुष्य प्राणियोंमें स्त्रीपर रहती है। हम अपने गाय भैंसोंको बछड़ोंको जनते देखते हैं। मुर्गियाँ अण्डे डालती हैं, उन्हें सेंकती हैं और उनमेंसे छोटे छोटे बच्चे बाहर पडते हैं। वे उसके पीछे २ घूमकर उससे सब कुछ सीख लेते हैं। उसी तरह अपनी माँ, मौसी, बहन के संतान हुई कि हमें आनंद होता है। प्रकृतिमें यह क्रिया कैसे होती है यह समझने के लिए पहले हम वनस्पतियोंमें और बादमें प्राणियोंमें यह क्रिया कैसे घटती है वह देखें।



आकृति १२१

धतुरेका फूल और उसके अंग।

१४९. वनस्पतियोंकी पुनरुत्पत्ति— वनस्पतिमें पुनरुत्पत्ति अनेक प्रकारोंसे होती है और उनमेंसे बीजसे पुनरुत्पत्तिकी पद्धति बडी मनोरंजक है। इस पद्धतिको समझ लेने के लिए पहले जान लेना चाहिये कि फूलकी रचना कैसे रहती है, क्यों कि फूल वनस्पतिका पुनरुत्पादन का स्वतंत्र अंग है। इसलिए पहले हम धतुरेका एक फूल लेकर उसके अंग जाँच देखें।

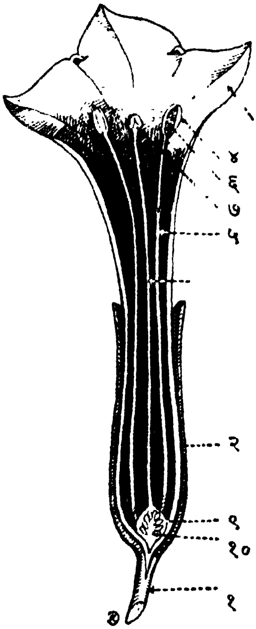
इस फूलके एक छोटासा डंठल और उस डंठलपर फूलके विभिन्न अंग निम्नानुसार हैं:—

(१) पुष्पकोश। (२) पुष्पमुकुट, (३) पुंकेसर व (४) स्त्रीकेसर, ये चार प्रकारके अंग मंडलाकार पद्धतिसे एक के ऊपर एक ऐसे क्रमसे रहते है। कुछ फूलोंमें इन मंडलों के अवयव अलग २ रहते हैं तो कुछमें वे एक दूसरे से संलग्न रहते हैं।

१. पुष्पकोश — यह सबसे बाहरी भाग है। उसका रंग हरा है, यह पाँच दलोंका बना हुआ है और दल जुडकर उसको प्यालेका आकार प्राप्त हुआ है। इसका कार्य है फूलकी कलिकावस्थामें अंदरके नाजुक अंगोंकी रक्षा करना।

२. पुष्पमुकुट — यह पाँच पंखडियोंका बना है। पँखडियोंके एक दूसरेसे जुड जानेसे उसका आकार चोंगेके जैसा हुआ है। कीटकोंको लुभाना और भीतरी कोमल अवस्थामें होनेवाले नाजुक हिस्सोंकी रक्षा करना इसका काम है।

३. पुं-केसर—इसमें पाँच पुं-केसर हैं। वे जडकी तरफवाले हिस्सेसे पंखडियोंसे चिपके हुए हैं। पुंकेसरके प्रमुख दो भाग हैं; (अ) **नाल,** (आ) नालके ऊपरी सिरेपर थैली जैसा भाग। यह **परागकोश** कहलाता है। इस कोशमें परागकण पैदा होते हैं। पुंकेसरका कार्य **परागकण** पैदा करना है।



आकृति १२२ – **धतुरेके फूलका खडा छेद।**

४. स्त्री-केसर — इस के निम्नानुसार भाग पडते हैं—(अ) जडकी तरफवाला फुला हुआ गोटीके आकार का हिस्सा। इसको **बीजाण्डकोश** कहते हैं। (ब) बीजाण्डकोशके सिरपर लम्बे डण्डेके जैसा भाग है, उसको **परागवाहिनी** कहते हैं। (क) परागवाहिनीके सिरपर चौडी गुठली जैसा भाग है उसको **किंजाग्र** या **कला** कहते हैं।

स्त्रीकेसरके विभागोंके कार्य — (अ) **बीजाण्डकोश** बीजाण्ड पैदा करता है। फलधारणा होनेपर इनके बीज बनते हैं।

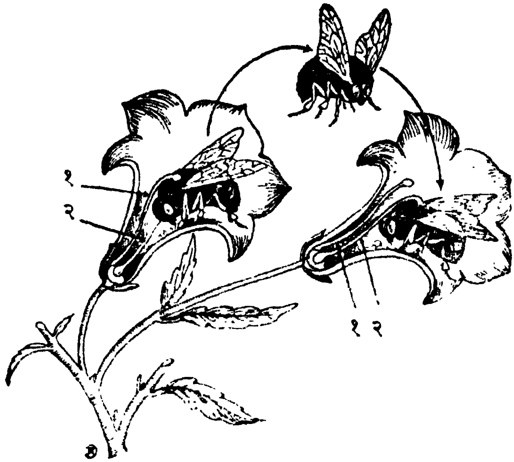
(ब) **परागवाहिनी** — कलियों पर पडे हुए परागकण जमकर परागनलिका बढती है और उस नलिका को बीजाण्ड की ओर ले जाना इसका काम है।

(क) **किंजाग्र** या **कला** — यह गुठली जैसा भाग चिकना होता है।

उसपर पडे हुए परागकणोंको बाहर गिरने न देकर उनकी जम जाने में सहायता करना इनका कार्य है।

पुंकेसरोंके पक जानेपर परागकोश फूटता है और अंदर के परागकण नीचे गिरने लगते हैं। परागकण वायुसे बह जाकर अथवा मधुके लोभ में एक फूलसे

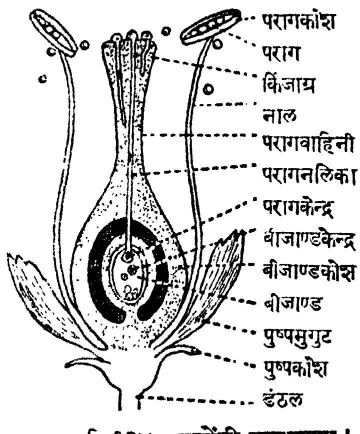
दूसरे फूल पर उडनेवाली तितली के अंगसे चिपक कर स्त्रीकेसर के चिकने किंजाग्र पर पडते हैं। उससे बढी हुई परागनलिका परागवाहिनी में से नीचे बढती जाकर बीजाण्ड कोशों के पास जाती है और वहाँ उसका अलग सिरा फूटकर पराग-केंद्र का बीजाण्डकेंद्र से संयोग होता है। इस संयोग से बीज तैयार होता है और बीजाण्डकोश का फल तैयार होता है। हमें फूल उनके रंगों तथा गंधके कारण पसंद आते हैं। पर ऊपर की जानकारी से आप जान जायेंगे कि फूल पेड के



आकृति १२३ – **कीटकों के द्वारा परागीभवन**

१ पुंकेसर (परागकोश और परागकण रहनेवाला)। २ स्त्रीकेसर की परागवाहिनी और उसके सिरका कल्ला। एक फूल के परागकण दूसरे फूल के कलोंपर भौंरें के द्वारा कैसे जाते हैं वह दिखानेवाली आकृति। भौंरें की गति बाणसे दिखाई है।

वंशविस्तारके लिए कितने उपयोगी हैं। उसी प्रकार फल और बीज ये स्त्रीकेसर के बीजाण्डकेंद्र और पुंकेसर के परागकेंद्र के संयोग होनेपर ही उत्पन्न होते हैं यह भी समझमें आया ही होगा।

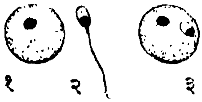


आकृति १२४ – **फूलोंकी फलधारणा। स्त्रीकेसरका खडा छेद।**

१५०. प्राणियों की पुनरुत्पत्ति—वनस्पतियों की तरह ही प्राणियोंमें भी अमीबा जैसे बिलकुल प्राथमिक अवस्था के एक पेशीवाले प्राणीसे लेकर उच्च से उच्च श्रेणी के मनुष्य प्राणियों तक अनेक श्रेणियों के प्राणी रहते हैं।

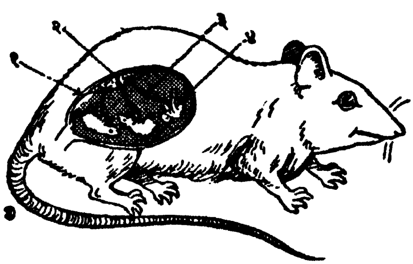
१. एक पेशीय रोग के जन्तुओं और अमीबा जैसे प्राणियों की पुनरुत्पत्ति पेशियों के विभजनसे होती है (आकृति ६ और ७ देखिए) याने एक प्राणी के दो, दो के चार इस रीति से होती है।

२. अधिक उच्च श्रेणी के प्राणियों में सलिंग पुनरुत्पत्ति होती है। पुनरुत्पत्तिका कार्य करने के लिए स्वतंत्र अंगका आयोजन रहता है। प्राणियों में नर और मादा जैसे दो भेद होकर नर की पुनरुत्पादनकी इंद्रियमें **पुंबीज** या **शुक्रजन्तु** निर्माण होते हैं। मादा की पुनरुत्पादनेंद्रियमें **स्त्रीबीज** या **अण्डे** उत्पन्न होते हैं और उसमें प्रत्येकमें एक केंद्र रहता है। अण्डों के केंद्रका शुक्रजंतुके केंद्रसे संयोग होकर उनके मिलनसे गर्भ बढता है।



आकृति १२५—**गर्भीभवन**
१ अण्डा, २ शुक्रजन्तु, ३ अण्डे और शुक्रजन्तु का मीलन.

अधिक उच्च श्रेणीके प्राणी सस्तन प्राणी हैं। बिल्ली, कुत्ता, गाय, भैंस, बंदर, खरगोश, चूहा, आदि प्राणी इस वर्ग में आता है। कीटक अथवा पक्षियोंकी तरह ये अण्डे नहीं डालते हैं। मादा के शरीर में बहुत सूक्ष्म अण्डा तैयार होता है। मादा के अण्डकेंद्रका नर के शुक्रजंतुसे संयोग मादा की पुनरुत्पादनेंद्रिय में होता है और वह अण्डा गर्भाशयमें ही रहकर गर्भकी वृद्धि हुआ करती हैं। गर्भकी वृद्धि के लिए लगनेवाले सारे पोषक द्रव्य मादा के शरीर के गर्भाशय को पहुँचाये जाते हैं। गर्भाशयके आँवलसे (Placenta) एक नाल (Umbilical cord) निकलकर गर्भ की नाभी से जुडी होती है। मा की रक्त की ऑक्सिजन और गर्भ की कार्बन-डायॉक्साइड इत्यादि अशुद्ध द्रव्यों का परस्पर आदानप्रदान आँवल में सेही होता है। गर्भ की पूर्ण वृद्धि हो चुकने पर * मादा व्याती है। हालही में पैदा हुए पिल्ले की नाभीपर यह नाल दिखाई देती है और उसके कारोबार के समाप्त हो चुकने के कारण वह सूखकर गल जाती है। आगे चलकर पिल्ले का पोषण माँके दूध से ही होता है।



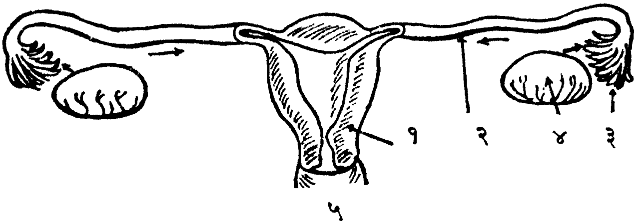
आकृति १२६ — **चूहे के पेट में बच्चे**
१ गर्भाशय, २ आँवल, ३ नाल, ४ चूहेका बच्चा.

१५१. मनुष्यप्राणियों की पुनरुत्पत्ति — ऊपर वर्णन किये अनुसार प्राणियों में नर और मादा जैसे दो भेद होते हैं वैसेही मनुष्यों में स्त्री और पुरुष ये भेद होते हैं और उनकी उत्पत्तिसंस्था में तरहतरह की इंद्रियाँ रहती हैं। स्त्रीमें योनिमाग, गर्भाशय, रजोवाहक नलिका, रजःपिंड आदि उत्पादन की इंद्रियाँ होती हैं। कटिबंध के गह्वर में मूत्राशय और गुदाशय के बीच **गर्भाशय** (Uterus) नाम की स्नायुओं से बनी पोली इंद्रिय है। उसके भीतरी ओर अन्तःस्त्वचा का आवरण रहता है और यही आवरण नीचे की ओर रहनेवाले (आकृति १२७ देखिए) और बाहर खुलनेवाले योनिमार्ग की (Vagina) अन्तस्त्वचा से सटा हुआ होता है। गर्भाशय

---

* भिन्न २ प्राणियों की गर्भ में पूर्ण वृद्धि होने के लिए निम्नानुसार समय लगता है। मुर्गीका बच्चा २१ दिन, बिल्ली, कुत्ता ६३ दिन, बकरी ५ महीने, गाय ९ महीने, मनुष्य ९ महीने ९ दिन।

में दोनों ओर **रजोवाहक नलिका** (Fallopian tude) नामकी एक २ पोली नली गयी होती है और नलिकाओं के खुले मुँहों के पास एक रजःपिण्ड रहता है। रजःपिण्ड लम्बा गोल होकर अंदाजन एक इंच लम्बा और आधा इंच चौडा रहता है। रजःपिण्ड एक नलिकाविरहित ग्रंथि है और इससे उत्पन्न होनेवाले अन्तःस्राव से स्त्रीके शरीर पर क्या परिणाम होते हैं उसका वर्णन पिछले अध्याय में किया ही है।



आकृति १२७ – **स्त्रीकी जननेंद्रियाँ**
१ गर्भाशय, २ रजोवाहकनलिका, ३ उसके खुले छोर, ४ रजःपिंड, ५ योनिमार्ग,

लडकी साधारणतया १३/१४ साल की हुई कि हर महीने रजःपिण्डों से एकेक छोटा **अण्डा** अथवा **स्त्रीबीज** (Ovum) पक्क होकर निकलता है और रजोवाहक नलिका के खुले मुँहों से रजोवाहक नलिका में आकर वहाँसे वह गर्भाशय में पहुँचता है। इस जननेंद्रिय में होनेवाली हलचल का पता लडकी को कुछ भी नहीं होता। पर इसके बाद ही दूसरा एक परिवर्तन जननेंद्रिय में होता है। वह यह है कि गर्भाशय के भीतरी ओर का पतला आवरण छूटता है; उसके छूटने से रक्तस्राव शुरू होता है। वह जननेंद्रिय से धीरे २ तीन चार दिन बाहर आता रहता है। उसीको **रजोदर्शन** कहते हैं। रजःपिण्ड में स्त्रीबीज हर महीने तैयार होकर गर्भाशयमें आकर पहुँचता है और वहाँ स्त्रीबीज और पुंबीज का मीलन होकर गर्भ न रहा तो जननेंद्रिय से हर महीने रक्तस्राव होता रहता है। इसी रक्तस्राव को **रजस्वला की मासिक बारी** या **मासिक छुवाव** कहते हैं। यह मासिक रक्तस्राव शुरू हुआ कि हम मानते हैं लडकी उम्रलायक हो गई। फिर भी इन इंद्रियों के पूर्णतया कार्यक्षम बनने के लिए ३/४ साल तो लागते ही हैं। मासिक रक्तस्राव इसकी निशानी है कि स्त्रीबीज अच्छी तरह से तैयार होने लगा। रजःपिण्ड में अन्तःस्राव उत्पन्न होता है उससे इस समय लडकी में दूसरे कुच्छ मोटे फर्क होने लगते हैं। उसके स्तन बडे होने लगते हैं और कटिर के पास का भाग ज्यादा चौडा होने लगता है। अपने स्त्रीत्वका उसे भान होने लगता है।

लडका और लडकी के बोलचाल, आचरण और दर्शन में कुच्छ भेद रहता है; पर उनमें मुख्य अंतर उनकी जननेंद्रिय के कारण आता है। स्त्रीमें जैसी पुनरुत्पत्ति-संस्थाकी खास इंद्रियाँ होती हैं उसी प्रकार से पुरुष में भी होती हैं। पुरुषों में बाहर की तरफ स्नायुओं से बनी हुई **शिश्न** (Penis) नाम की इंद्रिय है। उसमें से शरीर के बाहर मूत्र ले जानेवाली

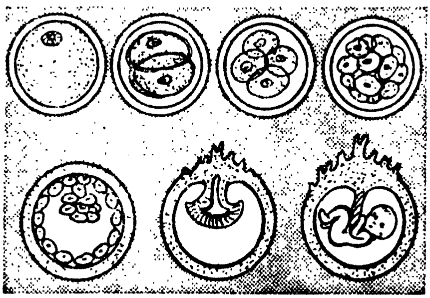
मूत्रनलिका (Urethra) गई हुई होती है और शिश्न के अगले भाग पर की त्वचा अथवा **शिश्नावरण** (Prepuce) थोडीसी आगे-पीछे सरक सकती है। **वीर्यपिण्ड** अथवा **वृषण** (Testes) पुरुषकी पुनरुत्पादनकी ग्रंथियाँ हैं (आकृति १२० देखिये)। प्रत्येक ग्रंथि लम्बीसी, गोल और अंदाजन १ इंच लम्बी रहती है। उसमें सूक्ष्म नलिकाओं के अनेक वलय रहकर ये सारीं नलिकाएँ **वीर्यवाहक नलिका में** (Ductus deference) खुलती हैं। इन सूक्ष्म नलिकाओं में पैदा होनेवाला बहिःस्राव **वीर्य** (Semen) वीर्यवाहक नलिका में से मूत्रनलिकामें (Urethra) ले जाया जाता है और वहाँसे वह शरीर के बाहर निकलता है। इस स्रावमें असंख्य **पुंबीज** अथवा **शुक्रजन्तु** (Sperms) रहते हैं। लडकी की तरह लडका भी उम्र लायक हो गया कि उसके वीर्यपिण्ड के पुंबीज बढने लगते हैं और वह प्रजोत्पत्ति करने के लिए सक्षम होता है। वीयपिण्ड के अन्तःस्राव से उसकी जननेंद्रिय की वृद्धि होती है और दाढी मूछें निकलना आदि फर्क उसमें आ जाते हैं।

फूलों के बारे में हमने देखा कि जब पुंकेसरके परागकणों और स्त्रीकेसर के बीजाण्डों का संयोग होता है तभी बीजकोश में फलधारणा होती है। प्राणियों में नर में ही सिर्फ पुंबीज पैदा होते हैं और मादे में स्त्रीबीज पैदा होते हैं और फूल की तरह प्राणियों में भी उसी तरह के प्राणियों के निर्माण के लिए स्त्रीबीज और पुंबीज के संयोग होने की आवश्यकता होती है। सस्तन प्राणियों में यह संयोग मादे की जननेंद्रिय में होता है और गर्भ मादे के गर्भाशय में बडा बनता है। निश्चित अवधि के बाद वह गर्भाशय से गर्भाशयके आकुंचन से ढकेला जाता है। मनुष्यप्राणियों में भी स्त्रीबीज आर पुंबीज का मीलन स्त्रीके पुनरुत्पादनेंद्रिय में होता है। यह मीलन हुआ तो गर्भधारणा होती है। अन्य समय हर अट्ठाईस दिनों पर शुरू होनेवाला मासिक रक्तस्राव गर्भधारणा से लेकर बच्चेके जन्मतक याने अंदाजन नौ महीने और उसके बाद भी कई महीने तक बन्द रहता है।

१५२. मनुष्य का जीवन इतिहास (Life history of Man)—अन्य प्राणियों के समान मनुष्य की आयु एक पेशी (Cell) से आरम्भ होती है। स्त्रीबीज और पुरुषबीज के संयोग से ही पेशी तैयार होती है जिसे **फलित स्त्रीबीज** (Fertilised ovum) कहते हैं। इस पेशी के पहिले दो भाग होते हैं, फिर दो के चार, आठ सोलह, इस तरह, अनेक पेशियाँ बनती जाती हैं और अन्त में उन सब का पुंज (गुच्छ) तैयार होता है (आकृति १२८–४ देखिये)। इस पुंज (गुच्छ) में शीघ्र ही एक खोखला भाग तैयार होता है (आकृति १२८–५ देखिये)। कुछ पेशियों से खोखले भाग का आवरण तैयार होता है, शेष पेशियोंका समूह एक स्थान पर एकत्रित होता है और इस समूह से गर्भ की उत्पत्ति होती है। उसकी तीन झिल्लियाँ तैयार होती हैं। बाहर की झिल्लीसे शरीर के ऊपर की त्वचा और नाडी-संस्था तैयार होती है और भीतर की दो झिल्लियों से शरीर के अन्य समस्त अवयवों का निर्माण होता है। गर्भ जब पाँच महीने का हो जाता है तब हृदय की क्रिया शुरू हो जाती है। परन्तु उसे आवश्यक भोजन नाभि-नाल के (Umbilical cord) मार्ग से माँके रक्त द्वारा प्राप्त होता है।

गर्भाशय में नौ माह के वास के पश्चात् बच्चे का जन्म होता है। माँसे पृथक होने के बाद उससे मिलनेवाला पोषक द्रव्य और ऑक्सिजन उसे नहीं मिलता और श्वासोच्छ्वास की क्रिया प्रारम्भ हो जाने के कारण उस बच्चे का रक्त शुद्ध होने लगता है। दूध आदि भोजन के कारण अवयव बढने लगते हैं; जिससे कुछ ही दिनों में बच्चा बडा हो जाता है और उसकी भिन्न २ शक्तियों का विकास होने पर वह तारुण्य को प्राप्त होता है। जैसे २ उसकी वृद्धि होती जाती है पुरानी पेशियों (Cells) का नाश होता जाता है और नवीन पेशियों का निर्माण होता जाता है। नाश और निर्माण की ये दोनों क्रियाएँ लगातार जारी रहती हैं। कुछ वर्षों के कार्य के पश्चात् शरीर के अवयव थक

१ २ ३ ४



५ ६ ७

आकृति १२८ — **फलित स्त्रीबीज** (Fertilised ovum) **की प्रथमावस्था में बाढ की भिन्न २ स्थितियाँ और उससे तैयार होनेवाला गर्भ।**

१ फलित स्त्रीबीज। २ उसकी दो पेशियाँ। ३ चार पेशियों का समूह। ४ अनेक पेशियों का गुच्छा। ५ गुच्छे में खोखला भाग बन रहा है। भीतरी और पेशियों का समूह बन गया रहे है। से गर्भ की उत्पत्ति होती है। ६ गर्भ तैयार हो रहा है। ७ गर्भ के भिन्न २ अवयव बढ रहे हैं।

जाते हैं। शरीर को भिन्न २ रोगों से झगडना पडता है। उससे यदि उसका अन्त न हुआ तो उसे बुढापा प्राप्त होता है। यौवन काल में जो जोश रहता है वह बुढापे में घट जाता है और समस्त अवयव शिथिल हो जाते हैं और तब उसकी अवस्था "अंगं गलितं पलितं मुण्डं, दशनविहीनं जातं तुण्डम्" जैसी हो जाती है और एक समय आता है, जब उसके अंगों की सारी क्रियाएँ बन्द हो जाता है और तब उसका अंत हो जाता है।

प्रश्न

१. वनस्पति में फल किस प्रकार तैयार होता है?

२. स्त्रीकी जननेंद्रियाँ कौनसी हैं और उसका क्या कार्य है?

गर्भधारणा किस तरह होती है यह फूलों के द्वारा बतलाइये।

४. रजोदर्शन के बारे में आप क्या जानते हैं?

परिशिष्ट अ

पारिभाषिक शब्दकोश

A

Abdomen – उदर
Absorption – शोषण
Accommodation of eye — दृष्टि का मेल
Acetabulum — कटिबंध के ऊपर का गढा
Adipose tissue – वसामय पेशीजाल
Afferent nerve — संवेदनावाहक नाडीतन्तु
Air-sac – वायुकोश
Alimentary canal – अन्नमा
Alveoli of air – वायुकोश
Amœba – अमीबा
Anabolism – चय
Anther – परागकोश
Animal evolution – प्राणी-विकास
Anti-substances – रोगप्रतिबंधक द्रव्य
Aorta – महाधमनी
Appendix – आंत्रपुच्छ
Arch of vertebra – कशेरुके की कमान
Areolar tissue – तंतुपेशीजाल
Artery – धमनी
Assimilation of food – भोजन का सात्मीकरण
Atlas vertebra – शिरोधरास्थि
Auditory canal – कर्णनलिका
Auricle – ग्राहक कोष्ठ
Autonomic nervous system – अनैच्छिक नाडी-संस्था
Axis vertebra – कीलकास्थि

B

Ball-and-socket joint – ऊखल संधि
Beating of heart – हृदय का स्पंदन
Biceps muscle – द्विशिरस्क स्नायु
Bicuspid tooth – छोटी डाढ
,, valve – द्विदल पर्दा
Bile – पित्त
Bile-duct – पित्तनलिका
Blind spot – अंधबिंदु
Blood – रक्त
Body of vertebra – कशेरुके का अंग
Bone – हड्डी, अस्थि
Bony system – अस्थि-संस्था
Brain – मस्तिष्क
Breathing – श्वासोच्छ्वास
Bronchi – श्वासवाहिनियां
Bronchioles – सूक्ष्मवाहिनियां

C

Cæcum – स्थूल आंत्राशय
Calyx – पुष्पकोश
Canine tooth – कीलियों के दांत
Capillaries – केशवाहिनियां
Cupsule of lens – नेत्रमणि की थैली
Carbohydrates – कर्बोज
Carotid artery – ग्रीवाधमनी
Carpal bones – कलाई की हड्डियां
Carpel – स्त्रीकेशर
Cartilage – कूर्चा
Cell — पेशी, कोश
Cell-wall — पेशी का आवरण
Central or cerebro-spinal nervous system — मध्यवर्ती नाडी-संस्था
Centre – केन्द्र
of hearing — श्रुतिकेन्द्र
of heat regulation – उष्णतानियामक केन्द्र
of smell — गंध या वास का केन्द्र
of speech — वाचा या वाणी का केन्द्र
of taste — रुचिकेन्द्र
Cerebrum — बडा मस्तिष्क
Chambers of heart — हृदय के भाग

Cheek bone — कपोलास्थि
Choroid — मध्यपटल
Circulation — अभिसरण
Circulatory centre — अभिसरण केन्द्र
Clavicle — जत्रु, हँसली की हड्डी
Clotting of blood — रक्त का जमा होना
Coccyx — गुदास्थि
Cochlea — शंखाकृति भाग (कान का)
Colon — बडी अँतडी
Composition of body — शरीर की रासायनिक रचना
Compounds — संयुक्त पदार्थ
Conchæ — शंखाकृति हड्डियां
Conjunctiva — नेत्रावरण
Connective tissue — संयोगी पेशीजाल
Contraction — आकुंचन
Cornea — पारदर्शीपटल
Coronary artery — हृदयधमनी
Corpuscles, red — लाल रक्तकण
White — श्वेत रक्तकण
Corolla — पुष्पमुकुट
Cranial nerves — मस्तिष्क से निकलने-वाले नाडीतन्तु
Cranium — खोपडी के हड्डियां
Crown of tooth — दांत की चोटी
Crystalline lens — नेत्रमणि
Cytoplasm, protoplasm — पेशीद्रव

D

Defibrinated blood — फाइब्रिनविरहित रक्त
Deltoid muscle — कंधे का त्रिकोणी स्नायु
Dendron — शिखातंतु
Dentine — दंतिन
Dermis — आंतरत्वचा
Diabetes — मधुमेह
Diaphragm — श्वासपटल
Diastole — हृदय की फैलने की क्रिया या प्रसरण
Differentiation of man — मनुष्य का वैशिष्ट्य
Diffusion — व्यतिकरण
Digestion — पाचन
Division of cell — पेशी का विभाजन
Dorsal cavity — पीठ की ओर का खोखला भाग
Duct — नलिका
Ductless gland — नलिकाविरहित ग्रंथि
Duodenum — पक्वाशय

E

Ear — कान
Ear drum — कान का पर्दा
Efferent nerve — आज्ञावाहक नाडीतन्तु
Elastic tissue — पीततन्तु पेशीजाल
Elements — मूलतत्त्व
Emulsion — दुग्धीकरण
Environment — आसपास की परिस्थिति
Enzyme — पाचकद्रव्य
Epidermis — बाह्यत्वचा
Epiglottis — श्वासमार्ग का पर्दा
Epithelial tissue — पृष्ठाच्छादक पेशीजाल
Ethmoid bone — सच्छिद्रास्थि
Evolution — विकास, उत्क्रांतिवाद
Excretion — उत्सर्गरस
Excretory system — उत्सर्जकसंस्था
Expiration — उच्छ्वास
Extensor muscle — प्रतानक स्नायु
External ear — बाह्यकर्ण
Eye — नेत्र
Eyebrows — भौहें

F

Face, bones of — चेहरे (कपोल) की हड्डियाँ
Fæces — मल
Fats — स्निग्ध पदार्थ
Femur — जाँघ की हड्डी
Ferment — पाचकद्रव्य, खमीर
Fertilised ovum — फलित स्त्रीबीज
Fibrous tissue — श्वेततन्तु पेशीजाल

Filament — नाल
Flexor muscles — आकुंचन स्नायु
Fœtus — गर्भ
Frontal bone — कपाल की हड्डी
Fulcrum – स्थिरबिंदु
Function — कार्य

G

Gall-bladder — पित्ताशय
Gastric juice — जठररस
Gland — ग्रंथि, पिंड
Gliding joint — फिसलनेवाली संधि
Glottis — स्वरद्वार
Gullet — अन्न-नलिका

H

Hair — केश
Head — सिर
Heart — हृदय
Heat regulating centre — उष्णता-नियामक केंद्र
Hepatic artery – यकृत् धमनी
Hinge joint – चूलदार संधि
Hip bone – कटिबंध की हड्डी
Humerus – बाहू की हड्डी
Hygiene – आरोग्यशास्त्र
Hypermetropia – दीर्घदृष्टि

I

Impulse – प्रेरणा
Incisor tooth – टुकडे करनेवाले दाँत
Incus – ऐरण की हड्डी
Inferior maxilla – निचला जबडा
,, vena cava – अधोमहा शिरा
Insertion of muscle – स्नायु का बद्धस्थान
Inspiration – श्वास
Internal ear – आंतरकर्ण
,, secretion — अंतःस्राव
Intestinal juice – आंत्ररस
Involuntary muscle – अनैच्छिक स्नायु

Iris – कृष्णमंडल

J

Joint – संधि

K

Katabolism — अपचय
Kidneys – मूत्रपिंड

L

Labyrinth, bony – अस्थिकुहर
,, membranous – त्वक्कुहर
Lacrymal gland – अश्रुपिंड
Lacteals – दुग्धवाहिनियाँ
Large intestine – बडी अँतडी
Larynx — स्वरयंत्र
Lens – नेत्रमणि
Leucocytes – श्वेतपेशी
Lever – हत्था
Life-history of man – मनुष्य का जीवनेतिहास
Ligament — अस्थिबंधन
Liver — यकृत
Living things – सजीव पदार्थ
Long sight – दीर्घदृष्टि
Lumbar vertebra – कमर के कशेरुके
Lung – फुप्फुस, फेफडे
Lymph – रस (लस)
Lymphatic capillaries – रसकेश-वाहिनियां
Lymphatic gland – रसग्रंथि
,,vessels – रसवाहिनियां
Lymphatic tissue – रसग्रंथि पेशीजाल

M

Malar bone – कपोलास्थि
Malleus – घन की हड्डी
Mandible – निचला जबडा
Maxillary bone – जबडे की हड्डी
,, superior – ऊपरी जबडा
,, inferior – निचला जबडा
Mechanism of respiration – श्वासोच्छ्वासकी क्रिया
Medulla oblongata – लंब नाडी

Medullary cavity – हड्डी का खोखला भाग
Menstruation — मासिक धर्म
Matabolism – चयापचय
Matacarpal bones — हथेली की हड्डियां
Metatarsal bones — पैर की तलुओंकी हड्डियां
Middle ear — मध्यकर्ण
Milk teeth — दूध के दांत
Mitral valve – द्विदल पर्दा
Mixed nerve — मिश्र नाडीतंतु
Molar tooth — बडी डाढ
Motor area — आज्ञा केंद्र
Motor nerve — आज्ञावाहक नाडीततु
Mouth — मुख-गह्वर
Mucous membrane — अंतस्त्वचा
Muscles — स्नायु
  involuntary — अनैच्छिक
  voluntary — इच्छावर्ती
Myopia – ऱ्हस्वदृष्टि

N

Nail — नाखून
Nasal bone — नासिकास्थि
Naso-lacrymal duct — अश्रुनलिका
Neck of tooth — दांत की ग्रीवा
Nerve cell — नाडीपेशी
  ,, fibre — नाडीतंतु
Nervous system — नाडी-संस्था
Neuron — नाडीघटक
Non-living things — निर्जीव पदार्थ
Nose — नासिका
Nucleus – केंद्रभाग

O

Œsophagus — अन्ननलिका
Old sight — वृद्धदृष्टि
Olfactory nerve — गंध का नाडीतंतु
Optic nerve — दृष्टि नाडीतंतु
Orbit — नेत्रों का खोखला भाग (जिसमें नेत्रों की स्थिति है ।)
Organ — इंद्रिय
Origin of muscle — स्नायु का मूल
Ovaries — रजःपिंड, बीजाण्डकोश
Ovum, ovule — स्त्रीबीज, बीजाण्ड
Oxygen — प्राणवायु

P

Palate bone — तालू की हड्डी
Pancreas — स्वादुपिंड, क्लोम
Pancreatic juice — स्वादुपिंडरस, क्लोमरस
Parietal bones — बाजू की हड्डी (कनपटी के ऊपर)
Pectoralis muscles — उरोज स्नायु
Pelvis of ureter — मूत्रवाहक का कटिर
Pericardium — हृदयावरण
Peristalsis — आकुचनलहरी
Permanent teeth — स्थायी दांत
Persistence of vision — दृष्टिसातत्य
Perspiration — स्वेद, पसीना
Phalanges – अंगुलियाँ
Pharynx — गला
Physiology — शरीरविज्ञान
Pituitary gland — शिरस्थपिंड
Pivot joint — घूमनेवाली संधि
Plasma — रक्तद्रव
Pleura – फुप्फुसावरण
Pons — नाडीसेतु
Portal circulation — यकृत का अभिसरण
Portal vein – कोष्ठशिरा
Premolars – छोटी डाढें
Proteins – नैट्रोजनयुक्त पदार्थ
Protoplasm — पेशीद्रव
Pulmonary artery — फुप्फुस की धमनी
Pulmonary circulation — फुप्फुस का अभिसरण
Pulse – नाडी, नब्ज
Pulse pressure — नाडी का दाब
Pupil — पुतली

Purification of blood — रक्त का शुद्धीकरण
Pus – पीव

Q

Quadriceps muscle — चतुःशिरस्क स्नायु

R

Rectum — गुदा
Red blood corpuscles — लाल रक्तकण
Reflex action – प्रतिक्षिप्त क्रिया
Regulation of temperature – उष्णतानियमन
Renal artery – मूत्रपिंडकी धमनी
Residual air – अवशिष्ट हवा
Respiration – श्वासोच्छ्वास
Respiratory centre – श्वसनकेंद्र
Retina – नाडीपटल
Rib – पसली
Right lymphatic duct – दक्षिण रसवाहक
Rods and cones – छडें ओर सूचियाँ।

S

Sacrum – त्रिकास्थि
Saliva – लार, लाल
Salivary gland – लारोत्पादक पिंड
Salts – क्षार
Scapula – स्कंधास्थि
Sclerotic – शुभ्रपटल
Sebaceous glands – स्नेहपिंड
Secretion स्राव, Internal अंतःस्राव
Secretory nerve – स्रावोत्पादक नाडी-तंतु
Semen – वीर्य, रेतस्
Semicircluar canals – अर्धवर्तुलाकृति कर्णवलय
Semilunar valves – अर्धचंद्राकृति पर्दे
Sensation – संवेदना
Sensory area – ज्ञानकेंद्र, संवेदना केंद्र
Short sight – ह्रस्व दृष्टि
Skin – त्वचा
Skull bones – खोपडी की हड्डियाँ
Small intestine – छोटी अँतडी
Speech – वाचा, वाणी
Spermatic cord – वीर्यवाहक नलिका
Sperms – पुरुषबीज
Sphenoid bone – चमगीदडाकृति हड्डी
Sphincter – समाकुंचक स्नायु
Spinal column — पीठ का कशेरुका
Spinal cord – पृष्ठवंशरज्जु
Spleen – प्लीहा
Stamen – पुंकेसर
Stapes रकाब की हड्डी
Stationary—स्थिर हवा
Sternum – वक्षस्थल की हड्डी
Stigma – किंजाग्र
Stomach – जठर
Striated muscle – धारियों के स्नायु
Style – परागवाहिनी
Subclavian artery – अधोजत्रु धमनी
Sublingual gland – जीभ के नीचे की लारोत्पादक ग्रंथि
Submaxillary gland – जबडे के नीचे की लारोत्पादक ग्रंथि
Succus, Intestinal juice – आंत्ररस
Superior vena cava – ऊर्ध्वमहाशिरा
Supplemental air – दीर्घोच्छ्वसित हवा
Supra-renal gland or body – मूत्रपिंड के ऊपर की ग्रंथि
Suspensary ligament – लटकते बंधन
Sweat – पसीना, स्वेद
Sweat gland – स्वेदपिंड
Sympathetic nervous system – अनैच्छिक नाडी-संस्था
System — संस्था
Systemic circulation — शारीरिक अभिसरण
Systole – हृदय का आकुंचन

Taste bud — रुचिकलिका
Teeth — दाँत
Temporal bone — कनपटी की हड्डी
Tendon of muscle — स्नायुबंधन, कंडरा
Testes — वीर्यपिंड
Thoracic duct — वक्षरसवाहक
„ vertebra — पृष्ठभाग (पीठ) का कशेरुका
Thorax — वक्षस्थल
Tidal air — नित्यश्वसित हवा
Tissue respiration — पेशीजाल का श्वसन (वायु का परिवर्तन)
Tissues — पेशीजाल
Tongue — जीभ, जिव्हा
Touch corpuscle — स्पर्शगोलक
Trachea — श्वासनलिका
Triceps muscle — त्रिशिरस्क स्नायु
Tricuspid valve — त्रिदल पर्दा
Trunk — धड़
Turbinate bones — शंखाकृति हड्डियाँ
Tympanic membrane — कान का पर्दा

U

Umbilical cord — नाभिनाल
Unstriated muscle — बिनाधारियों के स्नायु
Ureter — मूत्रवाहक
Urethra — मूत्रनलिका
Urinary bladder — मूत्राशय
Urine — मूत्र
Uterus — गर्भाशय

Valve — पर्दा
Vasomotor nerve — रक्तवाहिनी का नाडीतन्तु
Vein — शिरा
Ventral cavity — अगला खोखला भाग
Ventricle of heart — क्षेपक कोष्ठ
Vertebra — कशेरुका
Vertebral column — मेरुदण्ड के कशेरुकों की माला
Vestibule — आंतरकर्ण का मध्यभाग
Villus — शोषणेंद्रिय
Vision — दृष्टि
Vitamins — जीवनसत्त्व
Vocal cords — स्वरतन्तु
Voice — आवाज, स्वर
Voluntary muscle — ऐच्छक या इच्छानुवर्ती स्नायु

W

White blood corpuscles — श्वेत रक्तकण
Wind-pipe — श्वासनलिका
Womb — गर्भाशय
Wrist bones — कलाई की हड्डियाँ

Y

Yellow spot — पीतबिंदु

Z

Zygomatic bone — कपोलास्थि

परिशिष्ट ब

सूची

ख

ग

फ

ब

ल

व

श

सेकंडरी स्कूल सर्टिफिकेट परीक्षा, मुंबई १९५७.

शारीरविज्ञानशास्त्र और आरोग्यशास्त्र

(दाईं ओर दिये हुए अंक पूर्णांक हैं)

(१) जहाँ आवश्यक हो वहाँ आकृतियाँ बनाकर अपने उत्तरोंको स्पष्ट करो।

मार्च १९५७

विभाग १

सूचना :—किन्हीं **चार** प्रश्नोंके उत्तर लिखो।

१. (अ) यकृत के बाह्य स्वरूप और उसकी अंतर्रचनाका वर्णन करो। ९

(ब) यकृत (Liver) के कार्य लिखो। ६

२. (अ) वक्षस्थल (Thorax) की रचना का कर्णन करो। ७

(ब) श्वासोच्छ्वास की क्रियामें वक्षस्थल का खोखला भाग बड़ा और छोटा कैसे होता है इसका वर्णन करो। ८

३. निम्नलिखितमेंसे किन्हीं **तीन** पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखो। १५

(१) लम्ब नाड़ी (Medulla oblongata), (२) आयलेट्स आफ् लैंगरहैन्स्, (३) नाड़ीपटल (Retina), (४) मध्यकर्ण (Middle ear), (५) अनैच्छिक स्नायु (Involuntary muscle)।

४. (अ) त्वचा की रचना का वर्णन करो। ८

(ब) त्वचा के कार्य लिखो। ७

५. (अ) धमनी (Artery), शिरा (Vein), और केशवाहिनी की रचना का वर्णन करो। ९

(ब) स्पष्ट करो कि रक्त जमा होने की क्रिया कैसे होती है ? ६

६. निम्नलिखितमेंसे किन्हीं **पांच** के संबंधमें लिखो कि वे सत्य हैं या असत्य, कारण दो :— १५

(अ) दायें ग्राहक कोष्ट (Auricle) में शुद्ध रक्त होता है।

(आ) ऐच्छिक क्रियाओंकी अपेक्षा प्रतिक्षिप्त क्रियाएँ अधिक शीघ्रतासे होती हैं।

(इ) पेप्सिन (Pepsin) चर्बी पचाता है।

(ई) रस-ग्रंथियों (Lymphatic glands) में लाल रक्त कण (Red blood corpuscles) बनते हैं।

(उ) उदुब्ज तालों (Convex glasses) से दीर्घ दृष्टि (Longsight) सुधरती है।

(ऊ) घुटनेका जोड़ ओखली के (Ball & socket type) जोड़के प्रकार का एक उदाहरण है।

(ए) बड़ी आंत्र (Large intestine) छोटी आंत्र की अपेक्षा अधिक लम्बी होती है।

विभाग २

सूचना :—किन्हीं **चार** प्रश्नों के उत्तर लिखो :—

७. निम्नलिखितमेंसे किन्हीं पाँच की सत्यता सिद्ध करने के लिये कारण लिखो। १०

(अ) घावोंको खुला नहीं रखना चाहिये।

(ब) तंग कपड़े स्वास्थ्यके लिये अपायकारक होते हैं।

(क) भोजन करनेके पश्यात् तैरना योग्य नहीं।

(ड) सूखे (Rickets) का रोग शरीरमें हलकी धूप लगनेसे अच्छा होता है।

(इ) ऊँची भूमियोंपर घर बनवाने चाहियें।

(फ) नख और बाल स्वच्छ रखने चाहियें।

(ग) दूधमेंका पानी जांचने का यंत्र (Lactometer) बहुत विश्वसनीय नहीं होता।

८. (अ) क्षय रोग (Tuberculosis) कैसे होता है ओर कैसे फैलता है ? ३

(ब) क्षय रोग के चिन्ह, लक्षण और प्रतिबंधक उपाय लिखो। ७

९. निम्नलिखित के हमारे स्वास्थ्य पर क्या परिणाम होते हैं ? :—

(१) चाय, ४

(२) मद्यार्क (Alcohol)। ६

१०. (अ) घरेलू मक्खीका जीवन वृत्तान्त लिखो। ६

(ब) उन सब रोगों के नाम लिखो जो घरेलू मक्खी के कारण होते हैं। ४

११. (अ) प्रथमोपचारसे (By first aid) क्या तात्पर्य है ? २

(ब) तुम उस व्यक्ति को क्या प्रथमोपचार करोगे जिसके वस्त्रों में आग लग गई है और जिसकी देह पर जलने से घाव पड गये हैं। ८

१२. (अ) खुली हवा में व्यायाम करने से क्या लाभ होते हैं ? ४

(ब) उन विभिन्न कारणों का वणन करो जिनसे पानी अशुद्ध होता है। ६

अक्तूबर १९५७

विभाग १

सूचना :— किन्हीं **चार** प्रश्नों के उत्तर लिखो।

१. (अ) फेफड़ों की रचना (Structure) का वर्णन करो। ९

(आ) जब रक्त फेफड़ों में से होकर बहता है तब उसमें क्या परिवर्तन हो जाते हैं। ६

२. (अ) जठर (Stomach) की सूक्ष्म (Minute) रचना का वर्णन करो। ९
(आ) खाए हुए पदार्थ (Food) पर जाठर रस (Gastric juice) के कारण जो क्रिया होती है उसका वर्णन करो। ६

३. निम्नलिखितमेंसे किन्हीं **तीन** पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखो :—
(अ) नसों का बेरंग रस (Lymph), (आ) अर्धवृत्ताकार नहरें (Semi-circular canals), (इ) स्वर तन्तु (Vocal cords), (ई) मूत्राशय (Urinary bladder), (उ) मूत्रपिंडके ऊपर की ग्रंथियाँ (Suprarenal glands).

४. बड़े दिमाग (Cerebrum) का वर्णन करो और उसके कार्यों की जानकारी लिखो। १५

५. (अ) मनुष्य के शरीर की हड्डियों के वर्गीकरण के प्रकारों के नाम लिखो। हड्डी की सूक्ष्म रचना (Minute structure) का वर्णन करो। ९
(आ) हड्डियों के कार्यों का वर्णन करो। ६

६. निम्नलिखितमें से किन्हीं **पाँच** के संम्बध में लिखो कि वे सत्य हैं या असत्य। कारण दो। १५
(अ) फेफड़ों की धमनियाँ (Pulmonary arteries) अशुद्ध रक्त बहाकर ले जाती हैं।
(आ) कलाई का जोड ओखली का जोड़ (Ball-and-socket joint) है।
(इ) श्वासोच्छ्वासका वेग (Rate of respiration) और नाडी का वेग (Rate of pulse) बराबर होता है।
(ई) हृदय का स्नायु एक अनैच्छिक स्नायु (Involuntary muscle) होता है।
(उ) ऐरण (Incus) का स्थान आंतरिक कर्ण (Internal ear) में है।
(ऊ) द्विदल झड़प (Bicuspid valve) का स्थान दाईं कर्णिका (Right auricle) और दाईं जवनिका (Right ventricle) के बीच में है।
(ए) डर से बाल सीधे खड़े हो जाते हैं।

विभाग २

सूचना :— किन्हीं **चार** प्रश्नों के उत्तर लिखो।

७. निम्नलिखितमें से किन्हीं **पाँच** की सत्यता सिद्ध करने के लिये कारण लिखो :— १०
(अ) कम प्रकाश में पढ़ना आँखोंको अपायकारक होता है।
(आ) ऐसे कमरे में सोना जिसकी खिड़कियाँ बन्द हों अच्छा नहीं।
(इ) प्रत्येक दिन प्रातःकाल और रात को दांतों को साफ करना चाहिए।
(ई) गर्मी की ऋतु में ऊनी कपड़े पहिनना इष्ट नहीं हैं।
(उ) जो मिठाइयाँ खुली हुई रखी हों उन्हें नहीं खाना चाहिए।

(ऊ) कोको (Cocoa) एक पौष्टिक पेय है।

(ए) बहुत अधिक स्वच्छ किया हुआ चावल (Highly polished rice) चावल खाना श्रेयस्कर नहीं है।

८. चेचक (Small-pox) का रोग कैसे होता और फैलता है? उसके चिन्ह, लक्षण और प्रतिबंधक उपाय लिखो। १०

९. (अ) पानी के भिन्न भिन्न उत्पत्तिस्थान (Sources) कौन-से हैं? ५

(आ) श्वास के साथ भीतर खींची हुई (Inspired) और उच्छ्वास के साथ बाहर निकाली हुई (Expired) हवा में क्या अंतर होता है। ५

१०. (अ) तुम उस व्यक्ति का क्या प्रथमोपचार करोगे जिसकी नाक से रक्तस्राव हो रहा है। ५

(आ) कृत्रिम श्वासोच्छ्वास देने की पद्धतियोंमें से किसी **एक** का वर्णन करो। ५

११. निम्नलिखित पदार्थों का आहार में क्या महत्त्व है? :— १०

(अ) दूध, (आ) अंडे, (इ) गेहूँ।

१२. आरोग्य की दृष्टी से घर बनाने में किन बातों को ध्यान में रखना चाहिए? १०

मार्च १९५८

विभाग १

सूचना :— किन्हीं **चार** प्रश्नो के उत्तर लिखो।

१. (अ) छोटी आँत के बाह्य स्वरूप और अंतर्-रचना का वर्णन करो। ८

(ब) छोटी आँत (Small intestine) में विभिन्न पाचक द्रव्यों (Enzymes) की खाए हुए अन्न पर जो क्रिया होती है उसे स्पष्ट करो। ७

२. (अ) आकृति की सहायतासे एक नमूनेदार कीकस (Typical vertebra) की रचना का वर्णन करो। ५

(ब) पृष्ठवंश (Vertebral column) की बनावट का वर्णन करो और उसके कार्य लिखो। १०

३. निम्नलिखितमें से किन्हीं **तीन** पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखो :— १५

(१) श्वासनलिका (Trachea)

(२) प्लीहा (Spleen) के कार्य

(३) शीर्षस्थ ग्रंथि (Pituitary gland) का स्थान और उसके साधारण कार्य।

(४) शरीर के तापमान (Temperature) का नियमन (Regulation

(५) यकृत में अभिसरण (Portal circulation)

४. (अ) मूत्रपिंड (Kidney) के बाह्य स्वरूप और अंतर्रचना का वर्णन करो। १०

(ब) मूत्र कैसे बनता है? मूत्रपिंडमें से चलकर बाहर निकलने तक का मूत्र का मार्ग लिखो। ५

५. (अ) मज्जारज्जु (Spinal cord) की रचना का वर्णन करो। ८
(ब) मज्जारज्जु के विभिन्न कार्यों को विस्तार से समझाओ। ७

६. निम्नलिखितमें से किन्हीं **पाँच** के संबंध में लिखो कि वे सत्य हैं अथवा असत्य। कारण लिखो — १५

(१) धमनियाँ (Arteries) सदैव शुद्ध रक्त ले जाती हैं और शिराएँ (Veins) अशुद्ध रक्त ले जाती हैं।

(२) जिह्वामेंसे राळ (Saliva) उत्पन्न होती है।

(३) कन्धे का जोड़ कूल्हे के जोड़ (Hip-joint) की अपेक्षा अधिक स्वतंत्रतासे हिल सकता है।

(४) लघु-दृष्टि (Short sight) अंतर्गोल कांचवाले चश्मों (Concave glasses) के उपयोग से सुधारी जाती है।

(५) पसलियों की अन्तिम तीन जोडियों को सहयुत पसलियाँ (False ribs) कहते हैं।

(६) मध्य-कर्ण (Middle ear) के खोखले भाग (Cavity) में आधार कला की इंद्रिय (Organ of corti) होती है जो ध्वनि की लहरों को अंतर कान तक पहुँचाती है।

(७) हृदय के सीधे वेश्म (Right ventricle) की पैशिक (Muscular) दीवार बाएं वेश्म की पैशिक दीवार से अधिक मोटी होती है।

(८) शुक्रजंतु (Sperms) गर्भाशय (Uterus) में उत्पन्न होते हैं।

विभाग २

सूचना:— किन्हीं **चार** प्रश्नों के उत्तर लिखो।

७. निम्नलिखितमें से किन्हीं **पांच** की सत्यता सिद्ध करने का कारण लिखो:-- १०

(१) बालकों को थोड़े थोड़े समय के पश्चात् आहार देना चाहिए।

(२) मुँह ढँके बिना छींकना हानिकारक है।

(३) धूम्रपान (Smoking) हानिकारक है।

(४) सार्वजनिक उद्यानों को "नगरों के फेफड़े" समझा जाता है।

(५) अच्छे स्वास्थ्य के लिए पर्याप्त आराम आवश्यक है।

(६) चूहे हानिकारक प्राणी हैं।

(७) कूडा-कर्कट गलियों में नहीं फेंकना चाहिए। 125769

८. मलेरिया किन कारणों से होता और फैलता है? उसके प्रतिबंधक उपाय लिखो। १०

दिनांक Date	उधारकर्त्ता की संख्या Borrower's No.	दिनांक Date	उधारकर्त्ता की संख्या Borrower's No.